



तारतम के निर्झर

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड रोड, सरसावा, जिला-सहारनपुर, उ.प्र.

फोन नं. ०१३३१-२४६०००, ८६५०८५१०१०

Email :- shriprannathgyanpeeth@gmail.com.

web : spjin.org

तारतम के निर्झर

प्रवक्ता

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित

© २०१६, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण – २०१९

भूमिका

प्राणाधार सुन्दरसाथ जी!

यह पुस्तक "तारतम के निर्झर" श्री राजन स्वामी जी की सन् २०११ में जयपुर के सुन्दरसाथ नवीन जी के घर में हुई चर्चा का लिखित रूप है। श्री राजन स्वामी जी ने उस कार्यक्रम में वाणी के प्रत्येक ग्रन्थ में से एक-एक प्रकरण के विषय पर चर्चा की थी, जिसको लिखित रूप में प्रकाशित करने की माँग की गई थी। उसको ध्यान में रखते हुए यह पुस्तक प्रकाशित की गई है।

चूँकि बोलने और लिखने की शैली में कुछ भिन्नता होती है, और यह पुस्तक एक चर्चा का लिखित रूप है, इसलिए इसकी शैली प्रवचन की है। इस पुस्तक को पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होगा, जैसे हम चर्चा ही सुन रहे हों।

इस चर्चा को लिखने की महान सेवा दिल्ली के सुन्दरसाथ श्री अरूण मिड्डा जी के सुपुत्र श्री हितेश मिड्डा ने की है। संगणक पर टंकण करने की सेवा ज्ञानपीठ के विद्यार्थी सर्वश्री सच्चिदानन्द, गणेश, नीरज, राजकुमार, अविनाश, एवं अशोक जी ने की है, तथा संशोधन की सेवा बबली जी, किरण जी ने की है। धाम धनी से प्रार्थना है कि इन सब पर अपनी कृपा बनाये रखें और हमेशा सेवा कार्य में आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करें।

आशा है यह पुस्तक आपको रुचिकर और हितकर लगेगी।

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

सरसावा (उ. प्र.)

अनुक्रमणिका

1	रास	6
2	प्रकाश	72
3	षट्क्रतु	138
4	कलश	184
5	सनन्ध	255
6	किरन्तन	312
7	खुलासा	381
8	खिल्वत	437
9	परिक्रमा	503
10	श्रृंगार	558
11	कयामतनामा	622

रास

माया गई पोताने घेर, हवे आतम तूं जाग्यानी केर।
तो मायानो थयो नास, जो धणिए कीधो प्रकास॥

रास २/१

अक्षरातीत धाम के धनी ने यह जो रास ग्रन्थ अवतरित किया है, हमारी आत्मा को जाग्रत करने के लिये किया है। सामान्य रूप से रास ग्रन्थ को देखकर यह अहसास हो सकता है कि जागनी के ब्रह्माण्ड में रास ग्रन्थ की आवश्यकता क्या है?

रास का तात्पर्य केवल योगमाया के ब्रह्माण्ड में होने वाली रास से नहीं है। यद्यपि इस ग्रन्थ में योगमाया में होने वाली रास का ही वर्णन है, किन्तु रास का तात्पर्य है— प्रेम और आनन्द का सागर जब अपनी लहरों के

साथ क्रीड़ा करने लगता है, तो उसको कहते हैं रास। सामान्य रूप से देखिये— किसी छोटे बच्चे को उसकी मनपसन्द चीज मिल जाये, तो खुशी में वह थिरकने लगता है। इस दुनिया में ब्रह्मानन्द को कैसे व्यक्त किया जाये, इसलिए रामतों का एक आधार लिया गया है। अक्षर की आत्मा ने प्रेम लीला को देखना चाहा था। प्रेम का तात्पर्य आकर्षण नहीं, प्रेम शब्दों से परे है। जहाँ शरीर का आभास है, वहाँ प्रेम नहीं। जहाँ इन्द्रियों का आभास है, जहाँ संसार के अस्तित्व का आभास है, वहाँ प्रेम नहीं।

प्रेम तो शब्दातीत कहया, जो हुआ ब्रह्म के घर।

सो तो निराकार के पार के पार, इत दुनी पावे क्यों कर॥

दुनिया में जो कुछ ज्ञान है, आदिनारायण द्वारा

ऋषियों के अन्दर वेद के रूप में प्रकट हुआ है, और वेदों का ज्ञान अक्षर के मन अव्याकृत में स्थित है। मूल अक्षर ब्रह्म जिस प्रेम को जानना चाहते हैं, स्पष्ट है कि वह आदिनारायण को मालूम नहीं, क्योंकि जो अक्षर को मालूम नहीं, तो उनके सपने के मन के स्वरूप को कहाँ से मालूम होगा? फिर आदिनारायण को जो चीज नहीं मालूम, वह ऋषियों एवं संसारी लोगों को क्या मालूम हो सकता है? होता यह है कि हमारा जो सांसारिक आकर्षण है, माता से, पिता से, भाई से, बहनों से, मित्रों से, पति से, पत्नी से, उसी को हम प्रेम समझ लेते हैं।

प्रेम नाम दुनियां मिने, ब्रह्मसृष्टि ल्याई इत।

ए प्रेम इनों जाहेर किया, ना तो प्रेम दुनी में कित॥

प्रेम क्या है? धनी ने कहा है—

जब चढ़े प्रेम के रस, तब हुए धाम धनी बस।

जिस अक्षरातीत के बारे में संसार में कोई जान नहीं सका, उस अक्षरातीत को अपने बस में करने का साधन प्रेम बताया गया है, तो प्रेम है क्या? रास ग्रन्थ में यही दर्शाया गया है कि प्रेम के सागर ने अपने अन्दर आनन्द का सागर समाया हुआ है। प्रेम का सागर अपने अन्दर आनन्द की लहरों से क्रीड़ा कर रहा है, इसको कहते हैं रास।

संसार में आजकल रास की बहुत सी मण्डलियाँ हैं। वृन्दावन में बहुत सी मण्डलियाँ मिल जायेंगी। वे नृत्य कला में पारंगत होती हैं, गायन-वादन में पारंगत होती हैं, अंगों से तरह-तरह की लीलाओं का प्रदर्शन कर लेती हैं, संसार के लोग तो समझते हैं कि बस यही रास है। हमें यह भी ध्यान देना होगा कि यह तो योगमाया के

रास की मात्र एक झलक है। ग्यारह दिन की जो लीला दिखाई गई थी, उसकी झलक मात्र ही संसार वाले जानते हैं। यह तो जागनी रास का ब्रह्माण्ड है और जागनी रास में जो आनन्द है, वह योगमाया की रास में नहीं मिल पाया, क्योंकि योगमाया के अन्दर होने वाली रास में आधी नींद थी, आधी जाग्रति। ब्रज की जो लीला हुई-

पूरी नींद को जो सुपन, काल माया नाम धराया तिन।

और योगमाया में आत्माओं को इतना पता था कि ये हमारे धाम धनी हैं, लेकिन हमारा घर कहाँ है, यह पता नहीं था। उसका अस्तित्व तो उस स्वप्न की तरह है, जैसे स्वप्न में यदि कोई व्यक्ति देखता है कि मैं राजा बन गया हूँ, तो जैसे ही नींद टूटती है, सपना टूटता है। फिर अपने को कंगाल पाता है। वैसा ही रास लीला का

अन्त है। जागनी रास कुछ और महत्वपूर्ण है।

योगमाया के अन्दर होने वाली रास में अक्षरातीत अति सुन्दर स्वरूप धारण करके सामने हैं। वे अपने हृदय के प्रेम को, आनन्द को, अंगों के स्पन्दन के माध्यम से, अपनी आत्माओं के साथ लीला रूप में बाँट रहे हैं जिसको पढ़ने से, सुनने से, देखने से एक आनन्द की अनुभूति होती है। वह स्वरूप मनमोहक है और इसलिये वहाँ आनन्द की लीला हो रही है, किन्तु जागनी रास कुछ और विचित्र है।

जागनी रास के अन्दर आत्मा अपने धाम-हृदय में साक्षात् युगल स्वरूप को पा रही है। उस युगल स्वरूप को, जो परमधाम में मूल मिलावा में विराजमान है। योगमाया के ब्रह्माण्ड में योगमाया का श्रृंगार है। योगमाया के अन्दर बालों की चोटी भी गुँथी हुई है। परमधाम के

श्रृंगार में घुँघराले बाल हैं। ऐसे-ऐसे थोड़ा श्रृंगार की भी भिन्नता है। लेकिन परमधाम में भी जो अक्षरातीत अपनी आत्माओं को नहीं दे सके थे, वह इस समय जागनी में हमें प्राप्त हो रहा है। निजधाम में उन्होंने हमें हकीकत में डुबो दिया, तो मारिफत का पता ही नहीं चल पाया।

जैसे नमक का ढेला सागर में घुलने के बाद अपने अस्तित्व को भुला बैठता है कि मैं नमक हूँ, उसी तरह से परमधाम की लीला हकीकत में प्रकट होती है। श्यामा जी हैं, सखियाँ हैं, पच्चीस पक्ष हैं, सब कुछ हकीकत है। लेकिन उसकी मारिफत का स्वरूप क्या है, यह बताया नहीं जा सकता था।

वहदत क्या है? वहदत में श्यामा जी हैं, सखियाँ हैं, महालक्ष्मी हैं, खूब-खुसालियाँ हैं, पच्चीस पक्ष हैं, सभी वहदत की हकीकत में हैं, लेकिन वहदत की मारिफत

क्या है, यह परमधाम में राज जी भी बता नहीं सकते। यदि वहदत नहीं होती, तो परमधाम में ही निर्णय हो जाता कि किसका इश्क बड़ा है। सबकी मारिफत के स्वरूप स्वयं अपनी पहचान देना चाहते हैं कि जो तुम्हारे स्वरूप दिख रहे हैं, ये अलग नहीं हैं, तुमने अपने को अलग क्यों समझा है?

मैं हक अर्स में जुदा जानती, ल्यावती सब्द में वरनन।

रब्द क्यों हो रहा है? सखियों का कहना है कि हमारा इश्क बड़ा है। श्यामा जी कहती हैं कि मेरा इश्क बड़ा है। राज जी का कहना है कि मेरा इश्क बड़ा है। प्रश्न यह होता है कि क्या सब लोग अटकल से कह रहे हैं या अज्ञानता से कह रहे हैं? परमधाम में न अटकल है, न अज्ञानता है। परमधाम में सब सच बोल रहे हैं क्योंकि सभी वहदत में हैं। श्यामा जी के अन्दर जितना इश्क है,

उतना ही राज जी के अन्दर है, उतना ही खूब-खुसालियों के अन्दर है, और तो और हर पशु-पक्षी भी बराबर का इश्क रखता है।

यदि परमधाम में घट-बढ़ हो जाये, तो वहदत का सिद्धान्त झूठा हो जायेगा। इसलिये जिन चीजों का निपटारा परमधाम में नहीं हो सका था, उसको जागनी रास के अन्दर अनुभूत करना है। पहले तो विशेषता यह थी कि योगमाया के ब्रह्माण्ड में सब सखियों को इकट्ठा किया गया, बारह हजार ब्रह्मसृष्टि और चौबीस हजार ईश्वरी सृष्टि, लेकिन जागनी ब्रह्माण्ड के अन्दर हर आत्मा का दिल अर्श बनना है।

आत्मा के अर्श-दिल में परमधाम के पच्चीस पक्षों सहित युगल स्वरूप को विहार करना है। मूल मिलावा में जो भी सुन्दरसाथ बैठे हैं, सबका दृश्य भी अपनी आत्मा

के धाम-हृदय में देखें। इससे बड़ी आश्चर्यजनक घटना क्या होगी? जैसे एक मक्खी के ऊपर हिमालय पर्वत रख दिया जाये, एक सरसों के दाने के अन्दर असंख्य ब्रह्माण्डों को समा दिया जाये, जैसे यह बात असम्भव लगती है, वैसे ही एक सपने के अन्दर आत्मा के धाम-हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत जागनी रास लीला करा रहे हैं। जागनी रास की लीला में प्रवेश करने से पहले जागनी का प्रकरण शुरू होगा। कलश के अन्दर जागनी का प्रकरण है। अभी रास की अनुभूति कराई जा रही है। श्री इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं—

मनना मनोरथ पूरण कीधां, मारा अनेक वार।

वारणे जाये श्री इन्द्रावती, मारा आतमना आधार॥

मेरे धाम धनी! आप मेरी आत्मा के जीवन के

आधार हैं। मैं आप पर बार-बार बलिहारी जाती हूँ क्योंकि आपने मेरे मन की इच्छाओं को अनेक बार पूर्ण किया है। अब प्रश्न यह होता है कि कौन-सी इच्छा है? आत्मा के जीवन का आधार क्या है? आत्मा को अक्षरातीत प्रियतम चाहिये या यह संसार, अन्धकार चाहिए या प्रेम का प्रकाश? आत्मा इन्द्रावती अपने धाम धनी से केवल धनी का प्रेम चाहती है, धनी का आनन्द चाहती है, संसार की कोई इच्छा नहीं।

ना चाहूँ मैं बुजरकी, न चाहूँ खिताब खुदाए।

इस्क दीजे मोहे आपना, मेरा याही सो मुद्दाए॥

जब हृदय में विज्ञान (मारिफत) प्रकाशित होता है, तो आत्मा सारे ब्रह्माण्ड के सुखों की तरफ कुछ भी नहीं देखती। वह कभी भी राज जी से गिड़गिड़ायेगी नहीं कि

मेरी संसार की यह कामना पूरी कर दीजिये। आखिर वह दरवाजे-दरवाजे घूमने वाली कोई भिखारी थोड़े ही है, जो राज जी से हाथ जोड़कर मांगेगी। वह मांगेगी तो अपना अधिकार मांगेगी और उसके जीवन का सर्वस्व है उसका प्रियतम।

उसके प्रियतम की सान्निध्यता उसके जीवन का सर्वस्व है। सीता ने राम से कभी दौलत नहीं मांगी। सीता ने यही कहा था कि जहाँ मेरे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, वहीं मेरे लिए वैकुण्ठ का राज्य है, चाहे वन में रहना पड़े या कहीं रहना पड़े। राम से अलग होकर अयोध्या भी मेरे लिये श्मशान है। उसी तरह, परमधाम की आत्मा अपने धाम धनी को दिल में बसाना चाहती है। इन्द्रावती जी का कथन उस तत्व की तरफ है कि मेरे धाम धनी! जब-जब मैंने आपको पुकारा है, जब-जब मैंने आपको

आत्मिक-दृष्टि से देखना चाहा है, आपने मेरी सारी इच्छाओं को पूर्ण किया है। अब कह रहे हैं—

माया गई पोताने घर।

रास कब होगी? जब माया हमारे सामने से हट जायेगी। हमारे और धनी के बीच में क्या परदा है, माया का। प्रश्न यह है माया किसको कहते हैं? माया के बारे में श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा है—

मायाम् तू प्रकृतिम् विद्धि मायिनम् तू महेश्वरम्।

प्रकृति को माया जानो और इसके स्वामी को परमात्मा जानो। रास ग्रन्थ के पहले प्रकरण में कहा है—

ए माया छे अति बलवन्ती, उपनी छे मूल धणी थकी।

सुन्दरसाथ के मन में यह भावना भी आ जाती है कि जब राज जी ने माया को उत्पन्न किया है, तो

परमधाम में भी माया है? पहली बात तो यह है कि परमधाम में न कोई चीज उत्पन्न की जा सकती है और न नष्ट की जा सकती है। राज जी से माया उत्पन्न नहीं हुई है, राज जी के आदेश से माया उत्पन्न हुई है। राज जी से माया के उत्पन्न होने का तात्पर्य यह है कि राज जी के अन्दर माया है।

योगमाया तो माया कही, पर नेक न माया इत।

योगमाया को तो माया कह सकते हैं, लेकिन परमधाम में नाम मात्र को भी माया नहीं है। अब प्रश्न यह है कि माया का तात्पर्य क्या है? जिस तरह से चन्द्रमा का अस्तित्व उसकी चाँदनी से है, सूर्य का अस्तित्व उसके तेज से है, फूल का अस्तित्व सुगन्धि और कोमलता से है, शक्तिमान का अस्तित्व उसकी शक्ति से है, उसी तरह से शक्ति, चाँदनी, तेज से सब कुछ माया

का स्वरूप कहलायेगा। शक्ति से ही शक्तिमान है और शक्तिमान का अस्तित्व ही शक्ति से है, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। परब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति उसकी आनन्द शक्ति है। अक्षर ब्रह्म की जो शक्ति है—

कुदरत को माया कही, गफलत मोह अन्धेर।

कुदरत का तात्पर्य क्या है? वह कादर की कुदरत यानि अक्षर ब्रह्म के अन्दर की वह शक्ति, जो असंख्य ब्रह्माण्डों का सृजन करती है, कहलायेगी माया। लेकिन माया के कई भेद हैं। एक है कालमाया, जो स्वप्नवत् है, और इस कालमाया का जो प्रियतम है, वह भी स्वप्नवत् है। अक्षर के मन का जो स्वरूप है, सपने में वही आदिनारायण के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। अव्याकृत की भी माया है, उसको कहते हैं सत् माया। सबलिक ब्रह्म की जो शक्ति है, उसको कहते हैं चित् माया। केवल

ब्रह्म की जो शक्ति है, उसको कहते हैं आनन्द योगमाया। उसी तरह से सतस्वरूप की जो शक्ति है, उसके अन्दर सत्, चित, व आनन्द तीनों का समावेश है, इसलिये उसको कहते हैं मूल माया। ये हो गईं चारों माया। अब कहा जा रहा है—

ए माया छे अति बलवन्ती, उपनी छे मूल धणी थकी।

अब प्रश्न यह है कि राज जी ने इस माया को कहाँ से पैदा कर दिया? परमधाम में तो एक कण भी नहीं बना सकते। अक्षरातीत ने अपने आदेश द्वारा अपने अंगरूप अक्षर ब्रह्म के मन के स्वरूप अव्याकृत को सपने में डलवाकर इस कालमाया को प्रगट किया है। अक्षर के मन को अव्याकृत कहते हैं।

अव्याकृत का तात्पर्य क्या है? जो अव्यक्त हो। मन,

वाणी की जहाँ गति न हो, उसको कहते हैं अव्याकृत। अव्याकृत के महाकारण में सुमंगला पुरुष है, और उसी सुमंगला पुरुष की कलारूप है रोधिनी शक्ति, और उसी रोधिनी शक्ति का ही रूप है महामाया, मोह का सागर, जिसको कहते हैं कालमाया।

"उपनी छे मूल धणी थकी" का तात्पर्य यह न समझ लें कि राज जी ने माया पैदा कर दी। जो प्रेम और आनन्द का सागर है, वह इस दुखदायिनी माया को पैदा नहीं करेगा। गुलाब के फूलों से हमेशा सुगन्धि ही आयेगी। गुलाब के फूलों ने कभी भी दुर्गन्ध नहीं दी। उसी तरह से सत्-चित्-आनन्द अक्षरातीत की लीला हमेशा प्रेम और आनन्द की होगी। उन्होंने अपनी आत्माओं को माया दिखाने के लिये खेल बनाया। उनके आदेश से अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप अव्याकृत के स्वप्न

से इस कालमाया का विस्तार हुआ।

यदि हमें उस प्रियतम का दीदार करना है, तो माया को अपने सामने से हटाना होगा। अब प्रश्न यह हो सकता है कि क्या हम चौदह लोक की इस दुनिया को हटा सकते हैं, क्योंकि रहना तो हमें दुनिया में है? पाँच तत्व के पुतले से सारा काम धाम होना है, तो क्या यदि जहर खा लें तो माया हट जायेगी, घर छोड़ दे तो माया हट जायेगी? नहीं! कमल का फूल पानी में खिलता है, लेकिन उसे हमेशा जल से निरासक्त माना जाता है। कमल को पानी में कभी भी आसक्ति के बन्धन में नहीं रखा जा सकता। हमारा पाँच तत्व का पुतला अन्न-जल से पोषित होता है, उसे रहने के लिये झोंपड़ी या पेड़ की छाया तो चाहिए। तात्पर्य क्या है—

लगी वाली कछु और न देखे, पिण्ड ब्रह्माण्ड वाको है री नहीं।

ओ खेले प्रेमे पार पिया सों, देखन को तन सागर माहीं॥

आप देखते हैं कि जब बच्चे टी.वी. के पर्दे पर अपने पसन्द की कोई चीज देखते हैं, चाहे कार्टून देख रहे हों, चाहे कोई मैच देख रहे हों, तो उनको जब दस बार कहा जायेगा कि भोजन कर लो, तब वो भोजन करेंगे, क्योंकि उनकी लगन उसमें लग गयी होती है, उनका ध्यान कहीं और नहीं जा सकता। उसी तरह, आत्मा अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की अनन्त शोभा को इस प्रकार देखने लगे, इतना डूब जाये कि चौदह लोक की दुनिया उसके लिये अस्तित्वविहीन हो जाये, उसको कहते हैं लग जाना।

एक कवि ने कहा है—

कोई काहू में मगन, कोई काहू में मगन,
हम वाही में मगन, जासों लागी है लगन।

लगन सबको होती है। किसी को धन कमाने की लगन है, किसी की लगन अध्ययन करने में है, किसी की लगन सेवा करने में है। आत्मा की लगन लग जाये कि पल-पल हम प्रियतम का दीदार करें। ऐसी अवस्था में क्या होता है कि अन्दर की शक्ति जो माया में लगी होती है, वह हटकर प्रियतम में लग जाती है, अर्थात् संसार में रहने पर भी संसार के अस्तित्व का बोध नहीं होता। इसको कहते हैं— "माया गई पोताने घेर"।

शरीर तो माया का है, हमारे मन, चित् बुद्धि, अहंकार भी माया के हैं, जीव भी माया के अन्दर नारायण से प्रगट होता है। प्रश्न यह होता है कि माया को

भगायें कैसे? यहाँ माया को भगाने का तात्पर्य है, जन्म-जन्मान्तरों की तृष्णा जो माया के सुखों से ही शान्ति की कल्पना करती आ रही है, उसको समाप्त करना। यह तृष्णा ही है, जिसने इस जीव को लाखों योनियों में भटकाया है। मनुष्य न जाने कितनी बार शराब पीता है, माँस खाता है, विषयों का सेवन करता है कि मुझे शान्ति मिल जाये। चेतन को तीन ही चीज चाहिये- प्रेम, शान्ति, और आनन्द। इन तीनों को पाने के लिये ही वह सारे पाप करता है।

यदि मनुष्य के हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाये कि जिस तरह से कोल्हू में बालू को पेरने से तेल नहीं निकल सकता, कीकड़ के वृक्ष से कभी कल्पवृक्ष के फूल की सुगन्धि नहीं आ सकती, उसी तरह से इस पंचभूतात्मक ब्रह्माण्ड से न प्रेम पाया जा सकता है और

न शान्ति पायी जा सकती है और न ही आनन्द पाया जा सकता है, तो उसका हृदय उस अखण्ड अक्षरातीत की तरफ मुड़ जाता है, और जब हृदय में प्रेम के सागर, आनन्द के सागर, शान्ति के सागर अक्षरातीत युगल स्वरूप वास करने लगते हैं, तो शरीर वही रहता है, वही मन, चित्, बुद्धि, और अहंकार रहते हैं, लेकिन दृष्टि बदल जाती है।

ऐसा इलम हकें दिया, हुआ इस्क चौदे भवन।

मूल डार पात पसरया, नजरोँ आया सबन॥

यह ब्रह्मवाणी के ज्ञान की महत्ता है। यदि हमारे हृदय हमें ब्रह्मज्ञान का प्रकाश हो जाये, यदि हमारे हृदय में अक्षरातीत के प्रेम की ओजस्वी धारा प्रवाहित हो जाये, तो हमें अपना यह संसार नहीं दिखेगा।

अब यह देखिये संसार में क्या हो रहा है? मानव मानव का खून करने को राजी है। अपनी जिह्वा की तृप्ति के लिये कितने जानवरों की क्रूरतापूर्वक हत्या करता है। अपने शरीर को सजाने के लिए, सौन्दर्य प्रसाधनों के लिए, कितने जानवरों का निर्ममतापूर्वक गला घोटता है। मानव का दिल इतना क्रूर है, फिर वाणी क्यों कह रही है— **"हुआ इस्क चौदह तबक।"** जहाँ भाई-भाई में द्वेष, घर-घर में लड़ाइयाँ, नगर-नगर में लड़ाइयाँ हैं, फिर चौदह तबक में इश्क होने का तात्पर्य क्या है?

एक राजा था। उसकी इच्छा थी कि मैं हर चीज को हरे रंग का देखूँ। उसने अपने मन्त्रियों से कहा कि मेरे राज्य की हर वस्तु को हरे रंग से रंग दो। सब कुछ हरे रंग से रंगा जाने लगे। एक चालाक मन्त्री था। मन्त्री ने कहा कि राजा साहब! सबको हरे रंग से रंगने का खर्चा

तो बहुत ज्यादा आयेगा। जब आपकी इच्छा यह है कि हर चीज हरे रंग की दिखाई दे, तो आप हरे रंग का चश्मा ही पहन लीजिये। सफेद दूध भी आपको हरे रंग का नजर आयेगा। राजा ने ऐसा किया और सारा काम हो गया।

तात्पर्य है कि यदि हमारी आत्मा के धाम-हृदय में प्रियतम बस जाते हैं, तो हमारी दृष्टि बदल जाएगी और माया से भी मुक्त हो जायेंगे। प्रियतम को बसाने के लिये पहले इल्म चाहिये, खुदाई इल्म, ब्रह्मवाणी का ज्ञान। यदि ज्ञान ने हमारे हृदय की अज्ञानता के अंधकार को दूर कर दिया, हृदय में प्रेम का रस प्रवाहित हो गया, तो क्या होगा? ज्ञान और प्रेम के संगम से ऐसी स्थिति बन जायेगी कि माया समाप्त हो जायेगी। इसी को कहा जाता है- "माया गई पोताने घेर।" यानि माया हमारे हृदय से

हट गई है और वह अपने घर चली गयी है। माया का कोई घर नहीं है। हम संसार में रहते हुए वैसे ही माया से किनारे रहेंगे, जैसे कमल का फूल पानी में रहते हुए भी पानी से अलग रहता है। अन्यथा माया का संसार तो ऐसा है कि—

काजल की कोठरी में, कैसो ही स्यानो जाय।

एक लीक काजल की, लागहीं पर लागहीं॥

सुक सनकादिक ने नव टली, लक्ष्मी नारायण ने फरी वली।

विष्णु वैकुण्ठ लीधा माहें, सागर शिखर न मूक्या क्यांहे।

ऐ ऊपर हवे सूं कहुँ, बीजा नाम ते केहेना लऊँ।

एणे बचने सरवालो थयो, ब्रह्माण्डनों धन सर्वे आवयो॥

स्वयं अक्षरातीत कह रहे हैं कि शुकदेव जी जिनको जन्मते ही न तो पिता का मोह था, न माता का मोह,

उनको इतना भी पता नहीं था कि स्त्री क्या होती है और पुरुष क्या होता है, उनको भी कमण्डल का मोह हो गया। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार— ये चारों ब्रह्मा जी के मानसी पुत्र, जो पाँच साल की उम्र में ही घर से निकल पड़ते हैं कि हमें परमात्मा का दर्शन चाहिए, हमें संसार के सुखों से लेना-देना नहीं। उन पाँच साल के ऋषि-कुमारों को भी माया लग जाती है। वैकुण्ठ में जाते हैं, तो वहाँ जय-विजय द्वारपाल रोकते हैं। नहीं मानने पर ऋषि-कुमार उन्हें श्राप दे देते हैं।

शुकदेव हो, सनकादिक हों, ब्रह्मा जी हों, भगवान शिव हों, माया ने इन महान विभूतियों को कहीं न कहीं पछाड़ा है। जब उनका यह हाल है, तो उन सांसारिक प्राणियों का क्या हाल होगा, जो शरीर से पैदा हुए हैं, जिनका जीव कितने जन्मों में काम, क्रोध, मद, लोभ,

अहंकार के विकारों में सना हुआ है? ऐसी माया को पैरों से ठोकर मारना कितनी बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है और वह धाम धनी की कृपा से ही प्राप्त होती है।

हवे आत्म तूं जागयानि केर।

आत्मा कब जाग्रत होगी? ब्रज की लीला सबने देखी, रास की देखी। जागनी के ब्रह्माण्ड में भी लगभग चार सौ साल हो गये हैं। जागनी का ब्रह्माण्ड बना ही इसलिये है कि हम जाग्रत होकर खुद को देखें, अपने प्रियतम को देखें, अपने प्रियतम की लीला को देखें, और खिलवत, वहदत, निसबत, इश्क की मारिफत को देखें, जो परमधाम में नहीं देख सके थे।

जागनी का तात्पर्य केवल तारतम लेना नहीं है। तारतम तो कोई भी ले लेगा। कल्पना कीजिए एक-डेढ़

मीटर कैसेट में तारतम की चौपाइयाँ रिकॉर्ड करा दीजिए, टेप बजा दीजिए, तो वह तो चौबीस घण्टे बजता रहेगा। तो क्या वह टेप जाग्रत हो जायेगा? वह तो जड़ पदार्थ है। यदि हमारे सूने हृदय में केवल तारतम की छह चौपाइयाँ याद हो गईं, तो इसे आत्मा की जाग्रति नहीं कहा जायेगा।

ऐसा आवत दिल हुकमें, यों इस्कें आतम खड़ी होए।

हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए॥

जब आत्मा के धाम-हृदय में युगल स्वरूप बस जायें, आत्मा को यह अहसास होने लगे कि जैसे मैं परमधाम में युगल स्वरूप को देख रही हूँ और परात्म से देख रही हूँ वैसे मेरी आत्मा भी युगल स्वरूप को देख रही है, पच्चीस पक्षों को देख रही है, तब समझिए कि

हमारी आत्मा जाग्रत हो गई है, और जागनी के ब्रह्माण्ड में यही करना है।

माया गई पोताने घेर, हवे आतम तूं जागयानि केर।

माया को भगा देना है। यह एक आलंकारिक भाषा है। माया तो अपने घर गई, यानि जो माया मुझे तंग कर रही थी, जिस माया ने परदे के रूप में मुझे अपने धनी के दीदार से वंचित कर रखा था, जब मेरी आत्मा जाग्रत हो गई, तो माया घर भाग गई। प्रकाश हिन्दुस्तानी में एक चौपाई आती है—

मायायें कीधा चोर।

इसका तात्पर्य क्या है? जिस तरह से चोर हमारी कीमती वस्तुओं को हमारे घर में घुसकर चोरी कर ले जाता है, उसी तरह से माया ने चोरनी की तरह हमारे

प्राणवल्लभ को हमसे जुदा कर रखा है। पाने का तरीका क्या है? उस अक्षरातीत को पाने के लिये बड़े-बड़े मनीषी, बड़े-बड़े विद्वान, ऋषि-मुनि, योगी, यति, पैगम्बर, अवतार, तीर्थंकर रात-दिन प्रयास करते रहे, लेकिन वह किसी को नजर क्यों नहीं आ पाता?

एक सूफी फकीर हुए हैं बुल्लेशाह। वे प्याज बो रहे थे। एक व्यक्ति उधर से गुजरा, पूछता है- **"रब दा की पाणा"** अर्थात् परमात्मा को कैसे पाया जाये? बुल्लेशाह ने कहा- **"इदरुं पुट्टो उत्थे लाओ"** अर्थात् जैसे मैं नर्सरी में से प्याज के पौधे उखाड़ कर वहाँ लगा रहा हूँ, उसी तरह से अपना सारा ध्यान इधर से हटाकर प्रियतम की तरफ कर दो। लेकिन संसार से यह हो नहीं पाता, क्योंकि संसार को तो यह मालूम ही नहीं है कि परमात्मा कहाँ है और कैसा है? अज्ञानता के अन्धकार में सारा

संसार भटक रहा है।

रास ग्रन्थ की वाणी यही दर्शाती है कि जिस तरह से सखियाँ बाँसुरी की आवाज सुनते ही योगमाया में प्रवेश करती हैं, अपने प्रियतम के पास जाकर प्रेम और आनन्द का रस लेती हैं, उसी तरह से हमारी आत्मा इस जागनी ब्रह्माण्ड में इस ब्रह्मवाणी को सुनकर अपने धाम-हृदय में युगल स्वरूप की अनुभूति करे। रास ग्रन्थ के प्रारम्भिक प्रकरणों में यही बात बताई गई है कि जागनी ब्रह्माण्ड में माया और हमारे बीच में सम्बन्ध क्या है? इसलिये पहली चौपाई में कहा—

हवे पेहेलां मोहजल नी कहूं बात, ते ता दुखरूपी दिन रात।

दावानल वले कई भांत, तेणी केटली कहूं विख्यात॥

और सब सुन्दरसाथ अच्छी तरह से जानते हैं—

ए माया बहुत जोरावर हती, दूर करी मेरे प्राणपति।

माया से कोई अपने बल से निकल नहीं सकेगा।
इन्द्रावती जी ने स्वयं कहा है—

बाहें ग्रही लई निसरी, मैं त्रण जुध कीधां फरी फरी।

पछे गत मत मारी हरी, लई बस पोताने करी॥

और तो और, जिस तन में श्यामा जी की लीला हो रही है, पहले जामे में, उस तन को भी माया में चालीस साल तक की उम्र तक न जाने कहाँ-कहाँ भटकना पड़ा। जब धाम धनी उस दिल में बस गये, तो भी हाँसी करा दी गई। किसने कराई? इस माया ने कराई कि मेरे तन से जागनी कराओ। और सबसे बड़ी बात कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमें कुछ दुख होता है तो क्या कहते हैं, राज जी ने हमें बहुत दुख दे रखा है। जो प्रेम का

स्वरूप है, वह आपको दुख क्यों देगा? धनी ने तो कहा है—

अब दुख न देऊं फूल पाँखड़ी, देखूँ सीतल नैन।

उपजाऊँ सुख सबों अंगों, बुलाऊँ मीठे बैन॥

कदाचित् आपको फूल की पाँखड़ी मारने से कष्ट होता है, तो मैं उतना भी कष्ट आपको नहीं दे सकता। लेकिन क्या कहा—

धनी न देवे दुख तिल जेता, जो देखिए वचन विचारी जी।

दुख आपन को जो होत है, जो माया करत है भारी जी॥

राज जी तिल मात्र भी दुख नहीं दे सकते। हमें यह कहने का क्या अधिकार है कि राज जी ने हमें दुख दे दिया? यह तो हम कीचड़ उछाल रहे हैं। राज जी तो आनन्द के सागर हैं, जिनके आनन्द की एक झलक मिल

जाये तो हमारा जीव इस शरीर को रखने में अपने को असमर्थ महसूस करेगा। धनी ने क्या कहा है—

हुकम जो प्याला देवहीं, सो संजमे-संजमे पिलाए।

नहीं तो परिणाम क्या होगा, शरीर शीशे के समान टूटकर समाप्त हो जायेगा। कदाचित कोई औषधि गुणकारी होती है और औषधि की दस गुणा मात्रा दे दी जाये, तो क्या होगा? वह प्राणघातक बन जायेगी। उसी तरह, जो अक्षरातीत केवल प्रेम और आनन्द के सिवाय कुछ जानते ही नहीं, जिनके हृदय में प्रेम के सिवाय कुछ है ही नहीं, यदि उनके पास घृणा होगी तो घृणा देंगे, उनके पास दुख होगा तो दुख देंगे। जो प्रेम और आनन्द का अनन्त सागर है, हमें क्या नैतिक अधिकार है, यह कहने का कि राज जी ने हमें दुख दे दिया?

दुख आपन को तो जो होत है, जो माया करत है भारी जी।

जब हम जान-बूझकर खुद माया को गले लगाते हैं, तो माया अपना असर दिखायेगी ही। यदि हम अपने सिर पर नागफनी के बोझ को रखेंगे, तो उसके कांटे तो चुभेंगे ही। हम जन्म-जन्मान्तरों की संचित वासनाओं को अपने सिर पर ढो रहे हैं। हम अपने हृदय में प्रियतम के लिये कितना समय देते हैं? सब सुन्दरसाथ को मालूम है। धन कमाने के लिये आठ घण्टे निकाल सकते हैं, दस घण्टे निकाल सकते हैं, निकालना पड़ता है, क्योंकि इस संसार में रहने पर शरीर को भोजन, वस्त्र, आवास चाहिए। लेकिन यह अन्तिम लक्ष्य नहीं होना चाहिए।

धनी कहते हैं— इस माया के संसार में रहकर कुछ पल तो निकालो, जिससे तुमसे माया छूट जाए, न कोई रिश्ता रहे, न घर-द्वार रहे।

हमारी जो बन्दगी होती है, वह राज जी को रिझाने के लिए नहीं होती, अपनी सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए होती है। जैसे हमारी फैक्टरी या दुकान में कोई नौकर काम करता है, हमारे दिल में उसके लिये कोई लगाव नहीं होता। हमारा सम्बन्ध इतना होता है कि वह समय पर आया कि नहीं, महीने भर सही ड्यूटी दिया कि नहीं, फिर उसके बाद उसको वेतन दे देते हैं। हमारे घर का कोई सदस्य जब बाहर जाता है, तो उससे पूछते हैं ठीक-ठाक पहुँच गये, या हम कहीं जाते हैं तो घर वालों को सूचित करते हैं कि चिन्ता नहीं करना हम पहुँच गये हैं। हमारा लगाव अपने नौकर से नहीं होता। उसी तरह, हम राज जी के चरणों में क्यों प्रणाम करते हैं, क्यों पाठ रखते हैं, क्यों मन्त्रत माँगते हैं? अपनी खुशी के लिये। अपने सांसारिक सम्बन्धियों की अपेक्षा, राज जी

से हमको व्यक्तिगत लगाव बहुत कम होता है। राज जी यही कहना चाह रहे हैं।

कुरआन के अन्दर बारह हरुफे मुक्तेआत हैं— ऐन, गैन, साद, कैफ, अलिफ, लाम, मीम आदि। इसमें एक होता है साद, जिसका मतलब होता है— रिझाना। रिझाने का अर्थ क्या होता है? इस चौपाई के पूर्व के प्रकरण की अन्तिम चौपाई में कहा है—

वारणे जाये श्री इन्द्रावती, मारा आतमना आधार।

"वारणे" का अर्थ क्या होता है? बलिहारी होना। बलिहारी होने का तात्पर्य, केवल तू ही है। मुझे तेरी सम्पदा नहीं चाहिये, तुम्हारी बख्शीश नहीं चाहिये, मुझे केवल तू चाहिये। यह होता है बलिहारी होना, यह होता है रिझाना, जिसमें कोई कामना न मांगी जाये। यदि कोई

कामना का बन्धन बाँधकर हम अक्षरातीत के चरणों में शीश झुकाते हैं, तो उसका तात्पर्य यह है कि हम व्यापार कर रहे हैं।

प्रेम निस्वार्थ होता है। प्रेम की मन्जिल वहाँ से शुरू होती है, जहाँ स्वयं का अस्तित्व मिटा दिया जाये। इसलिये खिलवत के प्रारम्भिक चार प्रकरणों में केवल "मैं खुदी" त्याग का वर्णन है। जब स्वयं का अस्तित्व मिटेगा, तब हृदय में प्रेम की ज्वाला धधकेगी और तब खिलवत में प्रवेश होगा। **"माया गई पोताने घर, हवे आतम तूं जागयानि केर"** की स्थिति तब होगी। यदि प्रियतम को हमने अपने दिल में नहीं बसाया और वासनायें संचित होती रहीं, तो माया हमारे हृदय से कभी भी निकल नहीं पायेगी। यही धनी के कहने का आशय है।

तो माया नो थयो नाश।

तो माया का नाश हो गया। माया का एक तात्पर्य है, अज्ञानता। अज्ञानता में भ्रान्ति छिपी होती है।

मोह अग्यान भरमना, करम काल और सुंन।

ए नाम सारे नींद के, निराकार निरगुन।।

मोह का प्रकटन किससे होता है? अज्ञान से। जो मोह है, वही अज्ञान है, और अज्ञान में भ्रम है। भ्रम के अन्दर जो बीज रूप से है, वही है भ्रान्ति। जैसे अहंकार में बीज रूप से अस्मिता होती है, उसी तरह भ्रम में बीज रूप से भ्रान्ति होती है। यश में बीज रूप से कीर्ति छुपी होती है। सौन्दर्य में कान्ति छिपी होती है। उसी तरह, माया के नाश होने का तात्पर्य है, हमारे हृदय में जन्म-जन्मान्तरों से प्रकृति के सुखों की जो कामना है, वह

समाप्त हो जाये।

प्रकृति के सुखों की कामना का तात्पर्य क्या है? आँख जब सुन्दर रूप को देखती है, तो सोचती है कि मैं धन्य-धन्य हो गई। यदि सुन्दरसाथ मेले-भण्डारे करते हैं या घर पर कोई त्योहार होता है, खूब अच्छे-अच्छे व्यञ्जन बनाते हैं। खाकर क्या कहते हैं? आज तो बहुत आनन्द आ गया। आनन्द नहीं आया है, आनन्द की कल्पना भी आपके पास नहीं पहुँची। यह तो इन्द्रियों का क्षणिक आनन्द आ गया कि आपकी जिह्वा षटरस वाले छप्पन प्रकार के व्यञ्जनों का रसास्वादन करके खुश हो रही है और इसका सम्बन्ध मन, अन्तःकरण से है। आपके जीव को वास्तविक आनन्द नहीं मिला।

आपके जीव ने अन्तःकरण और इन्द्रियों के माध्यम से माया का आनन्द लिया। आपकी त्वचा ने कोमल

स्पर्श पा लिया, तो अन्तःकरण को लगता है कि मैंने बहुत सुख पा लिया। नासिका ने सुगन्धि ले ली, कान ने मधुर ध्वनि सुन ली, तो अन्तःकरण को लगता है कि मैं बहुत सुखी हो रहा हूँ। लेकिन यह सुख कितने समय के लिये है?

कल्पना कीजिए, यदि कोल्हू के अन्दर सरसों का बीज डालेंगे, तो तेल किसका निकलेगा? तिल का तेल तो निकलेगा नहीं। उसी तरह से जो पदार्थ जैसा है, उसका गुण वैसा ही है। संसार का हर पदार्थ परिवर्तनशील है। पल-पल हर अणु कम्पन कर रहा है। जिस क्षण कम्पन बन्द हो जायेगा, उसी क्षण सृष्टि का विनाश हो जायेगा। लेकिन जब तक कम्पन चल रहा है, हर पदार्थ बदल रहा है।

हम पत्थर की चट्टान को देखते हुए कहते हैं कि

चट्टान तो कितनी मजबूत है, कितनी ठोस है, लेकिन नहीं। चट्टान के हर कण तेजी से कम्पन कर रहे हैं, गति कर रहे हैं। और सौ साल के बाद, दो सौ साल के बाद, पाँच सौ साल के बाद, उसमें दरारें पड़ जाती हैं। जो स्टील के बड़े-बड़े गार्डर होते हैं, उनमें भी जंग लगना शुरू हो जाता है।

हमारा शरीर जो बचपन में कोमल दिखता था, बुढ़ापे में चलकर हड्डियों का ढाँचा बन जाता है। तात्पर्य क्या है? पल-पल परिवर्तन हो रहा है, लेकिन उस परिवर्तन को हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ भाँप नहीं पाती हैं। इसी तरह, हर क्षण परिवर्तन होने के कारण, इस संसार के आनन्द को, इस संसार के रूप को, क्षणिक कहा जाता है। संसार क्षणिक नहीं है, संसार के पदार्थों का स्वरूप क्षणिक और परिवर्तनशील है। इसलिये इनका आनन्द

भी वैसे ही होगा।

जैसे स्वादिष्ट से स्वादिष्ट पदार्थ को आप जिह्वा पर रखिये, तो क्षण भर के लिये वह स्वादिष्ट लगेगा। एक-दो मिनट के बाद उसका स्वाद समाप्त हो जायेगा और गले से नीचे उतर जाने पर तो कुछ भी स्वाद नहीं रहेगा। फिर देखिए, थोड़ी देर के लिये स्वाद आयेगा, फिर समाप्त। प्रतिदिन उसी को खाया कीजिये, तो मन हट जायेगा। संसार की यही कहानी है।

तृष्णा के वन में जैसे हिरण भाग रहा हो, उसकी तृष्णा कभी पूरी नहीं हो रही। उसी तरह से जीव जब माँस खाने की तृष्णा पालता है, तो उसको शेर या गीदड़ आदि की योनि में जन्म मिल जाता है। क्रोधी होता है, तो सर्प योनि में चला जाता है। वैसे ही कोई शराब के नशे में होता है, तो शराब की तृष्णा पाले होता है। उस

तृष्णा की पूर्ति के लिये किसी ऐसी योनि में जन्म मिल जाता है। लेकिन वह तृष्णा सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती ही जाती है। इसलिए भर्तृहरि ने कहा है—

तृष्णा न जीर्णा, वयमेव जीर्णा।

तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती है, हम ही बूढ़े हो जाते हैं। लेकिन यह विवेक किसी-किसी को होता है। हर व्यक्ति देखता है कि हम कभी बालक थे, जवान हुए, अब वृद्धावस्था की तरफ मुड़ रहे हैं। किन्तु जिसको शराब का चस्का है, वह शराब नहीं छोड़ पाता, जिसको तम्बाकू खाने का चस्का है, तम्बाकू की तृष्णा उसको नहीं छोड़ पाती।

बचपन में मैंने सन्यास जीवन के प्रारम्भिक समय में एक ऐसे व्यक्ति को देखा, जब वह मरने लगा तो उससे

पूछा गया कि तुम्हारी क्या इच्छा है, तो उसने उत्तर दिया कि अब तो मैं मर ही रहा हूँ, एक बार और माँस खिला दो। मौत सिर पर खड़ी है, सारी जिन्दगी गुजर गई हड्डियाँ नोचते-नोचते, लेकिन उस व्यक्ति की माँस की तृष्णा पूरी नहीं हुई। और मरते वक्त भी माँस खायेगा, तो किस योनि में जायेगा? उस योनि में जायेगा, जिसमें उसकी तृष्णा का साधन मिल सके। किन्तु यदि उसे प्रायश्चित करने का अवसर नहीं मिला, तो चौरासी लाख योनियों का चक्र उसको घुमाता रहेगा। इसको कहेंगे माया का बन्धन बढ़ता जाना।

माया के दृश्य बाहर हैं, किन्तु वास्तविक माया तो हृदय में है। लोग कहते हैं कि जब मुस्लिम लोग नमाज़ पढ़ते हैं, तो तलवार रखते हैं कि दज्जाल आयेगा और मैं उसका कत्ल कर दूँगा। दज्जाल कहीं बाहर नहीं बैठा है

कि उसे तलवार से काट देंगे।

दज्जाल नजरों न आवहीं, सब में किया दखल।

जाने दोस्त को दुश्मन, कोई ऐसी फिराई अकल॥

दज्जाल का तात्पर्य क्या है? माया का वह रूप जो हमारे हृदय में अज्ञानता का प्रवेश करा दे। अज्ञान ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और ज्ञान ही हृदय के अन्धकार को दूर करता है। यदि हमारे हृदय में ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश हो गया। यदि हमारी अन्तरात्मा प्रियतम के प्रेम में अवगाहन (स्नान) करके धनी की तरफ कदम बढ़ा चुकी है, तो निश्चित है कि हमारे हृदय में युगल स्वरूप की छवि बसेगी, और तब स्थिति आयेगी—

तो माया नो थयूं नास।

तो माया का नाश हो गया।

जो धनिएं कीधो प्रकाश।

जो धनी ने प्रकाश किया। चौथे चरण का सम्बन्ध पहले से है। मेरे धाम-हृदय में अक्षरातीत ने विराजमान होकर ज्ञान का प्रकाश किया है और इस ज्ञान के प्रकाश के कारण मेरी आत्मा जाग्रत हो गयी। ज्ञान का प्रकाश उभरा, विरह और प्रेम की अग्नि और प्रज्वलित हुई। मेरे धाम-हृदय में मूल स्वरूप विराजमान हो गये। अब माया का नाश हो गया, यानि माया अपने घर भाग गई है। यह पहली चौपाई का आशय है। इस ग्रन्थ का मूल आशय है, सुन्दरसाथ को सिखापन देना कि रास के दृष्टान्त से हमें जागनी ब्रह्माण्ड में क्या करना है।

प्रेम पिया सो ना करे अन्तर, तो ए दुख देखे क्योंकर।

तामसी सखियाँ उनको कहते हैं, जो अपने और

धनी के बीच में किसी तरह का अन्तर नहीं रखतीं, जिनका तन-मन धनी के लिये है, जिनकी नजर में संसार नहीं आता। जब उन्होंने बाँसुरी की आवाज सुनी, तो सोचा कि अब प्रियतम के पास चलना है और तुरन्त शरीर छोड़ दिया। यानि अपने पति को नहला रही हो, तो चिन्ता भी नहीं कि मेरा पाँव कहाँ पड़ रहा है? बच्चे को दूध पिला रही है, तो बच्चे को फेंक दिया, कोई चिन्ता नहीं। इसका मतलब मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि जागनी के ब्रह्माण्ड में भी आप अपने बच्चों को भुलाकर फेंक दिया कीजिये। जागनी के ब्रह्माण्ड में यदि आपको अपनी आत्मा को जाग्रत करना है, तो—

रेहेवे निरगुन होए के, और आहार भी निरगुन।

साफ दिल सोहागनी, कबहूँ न दुखावे किन॥

यदि आपका हृदय निर्मल नहीं हुआ, मन, वाणी और कर्म से आप किसी का दिल दुखाते हैं, तो आपकी आत्मा कभी जाग्रत नहीं हो पायेगी। आत्मा को जाग्रत करने के लिये आपका हृदय फूल की तरह कोमल होना चाहिए। यह तो एक दृष्टान्त है कि विरह की अग्नि ऐसी उपजी कि उन्होंने न तो पति का परवाह की, न बच्चों की परवाह की, और खुद अपने शरीर की भी परवाह नहीं की, घर से निकलते ही शरीर छोड़ दिया। लेकिन जागनी के ब्रह्माण्ड में राज जी हँसी कर रहे हैं कि मैंने योगमाया की केवल प्रेम वाली बाँसुरी बजा दी, तो तुम पल भर की देर किये बिना योगमाया में चली आयी, और जागनी के ब्रह्माण्ड में लगभग तीन सौ साल से ज्यादा समय से वाणी की बाँसुरी बजा रहा हूँ, किन्तु—

हादी मीठे सुकन हक के, कहेगा तुमें रोए रोए।

तुम भी सुन सुन रोएसी, पर होस में न आवे कोए।।

नींद ऐसी है, जैसे सवेरे आप अपने बच्चे को उठाते हैं। बच्चा नींद में होता है। आप बोलकर चले जाते हैं, उठो! उठने का समय हो गया है। वह लेटे-लेटे पहली बार बोलता है कि हाँ, उठ गया हूँ। आप देखते हैं कि अभी नहीं उठा। फिर दुबारा तेज आवाज में बोलते हैं, सुना नहीं तुमने। उठने को कहा गया, वह लेटना छोड़कर उठकर बैठ जाता है, तो कहेगा उठा तो हूँ। फिर आप तीसरी बार आते हैं, तो उसको डर होता है कि कहीं मार न पड़ जाये। तब कहीं वह उठकर बैठता है। जागनी ब्रह्माण्ड में यही चल रहा है।

सूता होए सो जागियो, जागया बैठा होए।

बैठा ठाढ़ा होइयो, ठाढ़ा पांव भरे आगे सोए।।

आत्मा जीव के ऊपर बैठकर खेल को देख रही है। जीव के अन्दर कुछ भी पता नहीं कि अक्षरातीत कौन सी बला है? परमधाम क्या है, कैसा है? कोई लेना-देना नहीं, क्योंकि इस जीव ने निराकार-साकार से आगे का कुछ भी नहीं सुना है। आत्मा के सम्बन्ध से उस जीव को परमधाम की वाणी मिली। जीव अपने हृदय में उस वाणी को बसाता है, लेकिन नींद इतनी है कि वह जाग नहीं पाता। दुर्योधन ने कहा था—

जानामि धर्म न चमे प्रवृत्तिः, जानामि अधर्म न चमे निवृत्तिः।

मैं जानता हूँ कि धर्म किसको कहते हैं, लेकिन उसमें मेरा मन नहीं लगता, और यह भी जानता हूँ कि

अधर्म किसको कहते हैं, किन्तु उसको छोड़ने के लिये मेरा जी नहीं करता।

जीव के अन्दर जन्म-जन्मान्तरों की वासनायें भरी हैं, और वे खत्म होंगी केवल प्रियतम के प्रेम की अग्नि से, ज्ञान की अग्नि से। और अक्षरातीत ने वह कर दिया।

यदि हमारे हृदय में प्रेम की अग्नि जला दी गयी, विरह की अग्नि जला दी गयी, ज्ञान की अग्नि जला दी गयी, तो परिणाम क्या होगा? हृदय का अन्धकार दूर हो जायेगा और आत्मा जाग्रत होकर अपने हृदय से माया को निकाल देगी। अपने और धनी के बीच में जो माया का पर्दा है, वह भी समाप्त हो जायेगा।

अभी दो दिन पहले दीपावली का त्यौहार मनाया गया। दीपावली के त्यौहार में बाह्य दीपक तो हर कोई

जलाता है। हृदय में ज्ञान के दीपक को जलाना पड़ेगा, जो कभी बुझता नहीं है।

तन दीपक मन ज्योति करूँ, प्रेम घृत लौ लाए।

जब तक प्रेम का घृत नहीं लगाया जायेगा, तब तक जो दीपक जलेगा वह कभी भी बुझ सकता है। प्रेम ही जीवन का सार है, प्रेम ही अध्यात्म का आभूषण है, सर्वोच्च आभूषण है, और प्रेम ही अक्षरातीत का स्वरूप है। लेकिन उस प्रेम की मन्जिल तक हमारी आत्मा तब पहुँचेगी, जब हृदय में ज्ञान का प्रकाश होगा। इसलिये पहले के प्रकरणों में माया से कैसे निकलना है, यह बात बताई जा रही है। जब आत्मायें बाँसुरी की आवाज सुनकर योगमाया में पहुँची, तो अपने प्रियतम को पाकर प्रेम और आनन्द की लीलायें की। उसी तरह, इस जागनी के ब्रह्माण्ड में ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश से हम

अपने हृदय में स्थित माया के अन्धकार को दूर करें,
अपने धाम-हृदय में प्रियतम को बसायें, और जागनी
रास का आनन्द लें।

केम जाने माया गई।

कैसे जानें कि हमारे अन्दर से माया समाप्त हो गई
है? स्थूल माया हर कोई छोड़ सकता है। जैसे कोई गृह
त्याग कर कहीं विरक्त हो जाये, सन्यास की वेश-भूषा
धारण कर ले, तो बाह्य रूप से देखने में यही लगता है
कि ये बिल्कुल माया को छोड़े बैठे हैं।

मोटी माया सब तजें, झीनी तजी न जाय।

झीनी माया क्या है? पतली माया, जो दिखाई नहीं
देती। गृहस्थी लोहे की सांकल है, तो विरक्ति रेशम की
रस्सी। लोहे की सांकल भारी होती है, काली कलूटी

होती है और बोझ ढोना भी मुश्किल लगता है, जैसे गृहस्थी के जंजाल होते हैं। लेकिन रेशम की रस्सी इतनी पतली और कोमल है कि उसके बन्धे रहने पर भी उसको छोड़ने को जी नहीं करता। तात्पर्य क्या है? जैसे चिन्तामणि जी गृहस्थ की सांकल को तोड़कर गादीपति बने थे। श्री जी ने कहा—

एक डारी त्यों दूजी भी डारो, जलाए देओ चतुराई।

तुमने माया के एक बन्धन को तो तोड़ा, लेकिन दूसरे को पकड़ लिया, उसको भी तोड़ दो।

वैराग्य कई तरह से होता है— भेष का वैराग्य अलग है, ज्ञान का वैराग्य अलग है, प्रेम का वैराग्य अलग है, और सबसे निकृष्ट होता है मजबूरी का वैराग्य। जैसे घर में झगड़ा हो गया, तो क्या होगा? लोग विरक्त हो जाते

हैं।

कोई-कोई होता है, जो ज्ञान का प्रकाश लेकर विरक्त होता है। जब प्रियतम के प्रेम में डूबते-डूबते संसार की सारी तृष्णायें समाप्त हो जाती हैं, तो संसार के सुखों से आसक्ति समाप्त हो जाती है, इसको कहते हैं वास्तविक वैराग्य। जब तक हमारे हृदय में ज्ञान और प्रेम का अद्भुत समन्वय न हो, हमारी आत्मा वास्तविक रूप से जागनी की राह नहीं पकड़ पाती। इसलिये कहा है—

केम जानिये माया गई।

कैसे जानें हमारे अन्दर से माया का अस्तित्व समाप्त हो गया है?

अन्तर ज्योति प्रगट थी।

अन्तर की ज्योति क्या है? जब हमारी अन्तरात्मा

के अन्दर ज्ञान का प्रकाश होता है, तो हमारी अन्तरात्मा यह बताती है कि हमारे अन्दर से माया गई है या नहीं। "अन्तर ज्योति प्रकट थी" के शब्दों का अर्थ क्या करेंगे, कि अन्दर की ज्योति से प्रकट हुई है। माया कभी अन्दर की ज्योति से प्रकट नहीं होती, माया तो अन्धकार का स्वरूप है।

हमारी अन्तरात्मा के अन्दर से यह आवाज आती है कि रे आत्मा! तूने तो अपने प्रियतम को पा लिया है। आत्मा स्वयं बोलेगी। कोई व्यक्ति यदि अपराध करता है, तो समाज के सामने यह स्वीकारे या न स्वीकारे, उसकी आत्मा अन्दर से यह कहती रहती है कि तूने गुनाह किया है। जैसे कोई व्यक्ति यदि कत्ल कर दे, तो कोर्ट में झूठ बोलेगा, हर जगह झूठ बोलेगा, कि मैंने नहीं किया है, लेकिन जब अकेले रहेगा, तो बड़बड़ा ही देगा कि मैंने

इतने कत्ल किये हैं, क्योंकि अन्दर बैठी हुई चेतना सब कुछ देख रही होती है कि ये मन, चित्, बुद्धि, अहंकार के बन्धन में बन्धा हुआ जीव कैसे-कैसे गुनाह कर रहा है।

महामति जी की आत्मा उसी तथ्य को दर्शा रही है, कि यदि हमारे हृदय में, अन्तरात्मा में, ज्ञान और प्रेम की ज्योति प्रगट हो जाये, तो यह बात प्रगट हो जाती है कि माया का हमारे अन्दर से विनाश हो गया है।

औरंगज़ेब के अन्दर परमधाम की वही आत्मा है, शाकुण्डल की भी वही आत्मा है, बिहारी जी के अन्दर रतनबाई की वही आत्मा है, इन्द्रावती की वही आत्मा है, लालदास जी की भी वही आत्मा है। सबकी आत्मा तो एक जैसी है। वहदत के अंगरूप सभी आत्माओं में किसी तरह का भेदभाव नहीं है। प्रश्न यह होता है कि किसी

आत्मा ने ज्यादा कुर्बानी की, किसी ने कम की, किसी ने अपने सिर पर गुनाहों का बोझ ले लिया, ऐसा क्यों हो गया? क्या इसमें आत्मायें दोषी हैं?

आत्मायें भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले जीवों पर बैठी हैं। जीवों का स्वभाव अलग-अलग है। जो जीव अपने हृदय को जितना निर्मल करेगा, जितनी कुर्बानी करेगा, उसके अनुसार ही उस आत्मा को शोभा मिलनी है। लेकिन ये काव्य की भाषा कुछ ऐसी घुमाकर कही जाती है कि सीधे-सीधे शब्दों में पूरे भाव स्पष्ट नहीं हो पाते। महामति जी कहते हैं—

हवे आतम करे कई बल।

अब मेरी आत्मा कुछ बल करे। तात्पर्य क्या है? आत्मा बल कैसे करेगी? पहली आवश्यकता क्या है?

धनी की कृपा का होना।

जो हुई इनायत मुझ पर।

राज जी की मेहर (कृपा) हो और जीव माया के विकारों को दूर कर अपने हृदय को निर्मल बनाने की राह पर चले। दोनों का मेल आवश्यक है। अक्षरातीत की मेहर नहीं होगी, तो जीव भी बल नहीं करेगा।

जैसा कि मैंने कई बार चर्चा के दृष्टान्त में कहा है कि आत्मा और जीव में वही सम्बन्ध है, जो अन्धे और लंगड़े में है। दोनों को एक-दूसरे का साथ चाहिये। आत्मा द्रष्टा है, लेकिन वह लँगड़ी है, और जीव अन्धा है। दोनों को अपनी मन्जिल कैसे मिलेगी? अन्धा चलता जाये और लँगड़ा रास्ता बताता जाये, क्योंकि अन्धे के पाँव तो मजबूत हैं किन्तु देखने की दृष्टि नहीं है, और

लंगड़े के पास दिव्य दृष्टि है लेकिन उसमें चलने की शक्ति नहीं है। यानि आत्मा देख सकती है, निस्वत के सम्बन्ध से परमधाम का ज्ञान पा सकती है, लेकिन कुर्बानी तो जीव को ही करनी पड़ेगी।

जितने सुन्दरसाथ यहाँ बैठे हैं, कोई भी परमहंस आपसे ज्यादा पढ़े हुए तो नहीं थे, किन्तु परमहंसों से ज्यादा आप सुन्दरसाथ ने न चितवनि की, न त्याग किया, न समर्पण किया, इसलिये परमहंसों को ब्राह्मी अवस्था प्राप्त हो गई। उनके धाम-हृदय में युगल स्वरूप बस गये। तात्पर्य क्या है? उन परमहंसों के जीवों ने अपने को कसौटी पर कसा। अपने मन (अन्तःकरण) को विषयों की परिधि से अलग रखा। परिणाम यह हुआ कि उनके दिल में धनी की शोभा विराजमान हो गई। वही कह रहे हैं—

हवे आतम करे कांई बल।

अब मेरी आत्मा कुछ बल करे, यानि धाम धनी की मेहर हो और मेरी आत्मा बल करे, जैसा कि मैंने दृष्टान्त दिया कि लंगड़ा अन्धे के कन्धे पर बैठ जाये और बताता चले, इधर चल इधर चल, और आँख मूँदकर अन्धा चलता जाये। यदि दोनों को एक-दूसरे पर विश्वास है, तो दोनों अपनी मन्जिल तक पहुँच जायेंगे। यानि जीव को भी राज जी मिल जायेंगे और आत्मा के तो प्रियतम हैं ही। इस संसार में निसबत के सम्बन्ध से ही आत्मा के अन्दर वह ज्ञान आता है, अब जीव के ऊपर है कि माया के सुखों को कितना छोड़ता है। अपनी जन्म-जन्मान्तरों की वासना को छोड़कर अपने हृदय को कितना कोमल, निर्मल, और प्रेम से भरपूर कर पाता है।

जिस दिन जीव ऐसा कर लेगा, निश्चित है कि

उसको परमधाम के आनन्द की अनुभूति हो जायेगी। अन्दर से प्रेरणा आती है कि उठो! प्रियतम की चितवनि करनी है। मन कहता है इतनी ठण्डक में करने की क्या जरूरत है? एक घण्टा और सो लेते हैं। जिस जीव ने विषय सुख को छोड़ दिया, जिह्वा के चस्के को छोड़ दिया, माया की तृष्णाओं से पीठ मोड़कर अपने प्रियतम को दिल में बसाने का प्रयास किया, निश्चित है कि धनी की शोभा बसेगी। वही बात कह रहे हैं—

तो वाणी गाऊँ नेहेचल।

कह रहे हैं कि अब मेरी आत्मा कुछ बल करे, तो मैं अखण्ड की वाणी गाऊँ। श्री मिहिरराज (श्री इन्द्रावती की आत्मा) आगे कहेंगे—

ए तुम नेहेचे करो सोए, ए वचन महामती से प्रगट न होए।

प्रकास गुजराती

मेरी बुधें लुगा न निकसे मुख, धनी जाहेर करें अखंड घर सुख।

प्रकास गुजराती

मैंने तो इस वाणी का एक अक्षर भी नहीं कहा है। यहाँ जो कहा जा रहा है कि "वाणी गाऊँ नेहेचल" अर्थात् मैं धनी की अखण्ड वाणी गाऊँ, इसका क्या तात्पर्य है?

यदि धाम धनी की मेहेर हो और मेरी आत्मा को वे बल दें, तो धनी मेरी आत्मा से अखण्ड वाणी कहलवायेंगे। यह कहने का भाव है। यह भाव नहीं लेना चाहिये कि अब मेरी आत्मा बल करे तो मैं वाणी गा दूँ। आत्मा बल कब करेगी? जब धनी की प्रेरणा होगी। और बिना धनी की मेहेर के, प्रेरणा के, किसी भी तन से कोई

वाणी नहीं गवाई जा सकती। इसलिये महामति जी ने कहा है कि सुन्दरसाथ जी! वाणी में कुछ भी लिखा है, तो यह न समझ लेना कि महामति जी ने अपनी तरफ से लिख दिया है—

अन्दर बैठ केहेलाया साक्षात्।

मेरे अन्दर बैठकर साक्षात् युगल स्वरूप ने इस ब्रह्मवाणी को कहा है। यह रास की वाणी आपको परमधाम के लिये प्रेरित कर रही है कि जिस तरह से योगमाया की बाँसुरी बजने के पश्चात् सबने संसार को पीठ दे दी थी, उसी तरह से ब्रह्मवाणी की बाँसुरी को सुनकर हम चौबीस घण्टे में एक-दो घण्टे ऐसे निकालें, जिसमें हर रिश्ते को भुला दें, केवल तू ही तू रह जाये। हमारी आत्मा के धाम-हृदय में युगल स्वरूप की छवि बस जाये, तो संसार को पता भी नहीं रहेगा कि हमारा

हृदय ही वह धाम बन जायेगा, और उस धाम में प्रेम का सागर प्रवाहित हो जायेगा, आनन्द का सागर प्रवाहित हो जायेगा, जिसके सामने योगमाया की होने वाली रास का आनन्द कुछ भी नहीं रहेगा। इस वाणी के अन्दर रास ग्रन्थ को अवतरित करने का यही आशय है।

केम जानिये माया गई, अन्तर ज्योति प्रगट थई।

हवे आतम करे कांई बल, तो वाणी गाऊँ नेहेचल॥



प्रकाश

भट परो तिन नींद को, जिन सोहागनियां दैयां भुलाए।
तो भी नींद निगोड़ी ना उड़ी, जो धनी थके बुलाए बुलाए॥

प्रकाश हिंदुस्तानी २५/१

प्राणेश्वर अक्षरातीत इस प्रकाश वाणी के अन्दर कातनी के दृष्टान्त से समझा रहे हैं। प्रातःकाल आपने रास ग्रन्थ के बारे में सुना। कतेब परम्परा में चार किताबें आती हैं— तौरेत, इंजील, जंबूर, और कुरआन। श्री जी ने तौरेत की जगह कलश वाणी दी, इंजील की जगह रास ग्रन्थ दिया।

इंजील का मुख्य भाव है प्रेम। इस ग्रन्थ को बाईबिल कहते हैं। बाईबिल के दो भाग हैं— Old Testament और New Testament. New

Testament में तो आप जानते ही हैं, ईसा मसीह का एक ही कथन है— प्रेम ही परमात्मा है, लेकिन Old Testament में भी एक अध्याय है— सोलोमन के गीत (Song of Solomon)। इसमें आत्मा को वधु के रूप में और परमात्मा को उसके प्रियतम के रूप में चित्रित किया है। यही भाव रास ग्रन्थ में दर्शाया गया है कि आत्मा उस प्रियतम की अर्धांगिनी है।

आत्मा और प्रियतम के बीच होने वाली अनन्य प्रेम की लीला रास की रामतों के रूप में वर्णित की गई है। तारतम ज्ञान का प्रकाश अवतरित होने के पश्चात् इसमें इंजील की जगह ले ली है रास ग्रन्थ ने, जंबूर की जगह ले ली है प्रकाश ग्रन्थ ने। सनन्ध का तात्पर्य ही है वास्तविकता या हकीकत। कुरआन में क्या कहा गया था और आज संसार कुरआन के बाह्य अर्थों को लेकर कहाँ

भटक रहा है, यह सनन्ध ग्रन्थ में दर्शाया गया है।

अब इस प्रकरण के पूर्व की अंतिम चौपाई में महामति जी की आत्मा कहती हैं—

कहे श्री इन्द्रावती सुन्दरबाई चरणे, सेवा पिउ की प्यार अति घने।

सेवा क्या है? सेवा के चार चरण होते हैं। तन की सेवा, मन की सेवा, जीव की सेवा, और आत्मा की सेवा। सबके अलग-अलग रूप हैं। चारों की अपनी अलग-अलग उपयोगिता है। आत्मा की सेवा मारिफत के धरातल पर होगी। जीव की सेवा हकीकत के धरातल पर होगी। मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, यानि किसी तरह से मन से मनन करना, चित्त से चिन्तन करना, बुद्धि से विवेचना करना, और अहं भाव में अपने को अक्षरातीत की अर्धांगिनी मानना, यह है मानसिक सेवा। शरीर से

सेवा का तात्पर्य यह है कि हमारा शरीर धनी की हर सेवा में तत्पर रहे। सबके अपने अलग-अलग उपयोग हैं।

नींव की ईंटों पर ही कोई महल खड़ा होता है। यदि नींव की ईंटें निकाल दी जायें, तो महल के ऊपर लगा हुआ कँगूरा भी गिर जायेगा। उसी तरह, समाज में हर चीज की उपयोगिता होती है। तन की सेवा का अलग महत्व है, मन की सेवा का अलग महत्व है, जीव की सेवा का अलग महत्व है। जीव जब अपने शुद्ध स्वरूप में आता है, तो समझता है कि मेरा धनी के सिवाय और कोई नहीं है। इसलिये इसी प्रकाश वाणी में एक प्रकरण ही उतरा है—

मेरे साथ सुहागी रे, तूं पिउ सों क्यों न करे पेहेचान।

अब जब सुन्दरसाथ की संख्या बढ़ती है, तो

सुन्दरसाथ में गणित भी शुरू हो जाती है कि जब परमधाम में बारह हजार ही सुन्दरसाथ हैं तो इतने सुन्दरसाथ परमधाम में कैसे जायेंगे? पहली बात तो यह है कि परमधाम में कोई भी गणना नहीं चल सकती।

अर्स बका वर्णन किया, ले मसाला इत का।

परमधाम में बारह हजार सखियाँ नहीं हैं। हमारी बुद्धि परमधाम की अनन्त लीला को, अनन्त सखियों को समझ सके इसलिये केवल दृष्टान्त के लिये कहा गया है कि वहाँ बारह हजार सखियाँ हैं। यदि आप किसी प्रवाही से कहेंगे— हमारे परमधाम में अक्षरातीत अपनी बारह हजार आत्माओं के साथ लीला करते हैं, तो क्या कहेगा— आपके अक्षरातीत तो किसी बड़े गाँव के एक जमींदार जैसे हैं।

अक्षरातीत तो अनन्त ब्रह्माण्डों का स्वामी है। हृद से परे बेहृद है। हृद के अन्दर कितने ब्रह्माण्ड हैं, बुद्धि इसकी गणना नहीं कर सकती। जो बेहृद है, उसका ओर-छोर कौन नापेगा? और जिस परमधाम के बारे में वाणी कहती है—

इंतहाए नहीं अर्स भोम का, सब चीजों नहीं सुमार।

उस परमधाम को हम सीमित दायरे में बाँध दें कि हमारे परमधाम का परिमाण बस इतना है, बस सिर्फ बारह हजार ही सखियाँ हैं, ऐसा सम्भव नहीं। यह ध्यान रखिये कि जब रास के समय एक राज जी का स्वरूप बारह हजार रूपों में परिवर्तित हो जाता है और माणिक पहाड़ के एक-एक हिण्डोले पर बारह-बारह हजार सखियाँ बैठती हैं, तो एक करोड़ चवालीस लाख संख्या तो ये भी हो गयी। और यह भी कहा है कि परमधाम में

कोई भी हवेली खाली नहीं है। पुखराज पहाड़ में कितनी हवेलियाँ हैं? पूरा माणिक पहाड़ ही हवेलियों का है? बड़ी रांग में कितनी हवेलियाँ हैं? छोटी रांग में कितनी हवेलियाँ हैं? ये सारी संख्या अनन्त मानी जायेगी। जैसे चावल के एक दाने को बटलोई में पकाते समय दबा करके पता कर लिया जाता है कि चावल पक गया है या नहीं, उसी तरह अनन्त परमधाम की संख्या को बारह हजार में सीमाबद्ध कर दिया गया है।

और कछू न इन सेवा समान, जो दिल सनकूल करे पेहेचान।

सेवा धर्म बहुत कठिन है। कहीं सेवा की महत्ता दर्शायी गयी है, कहीं प्रेम की महत्ता दर्शायी गयी है, कहीं ज्ञान की महत्ता दर्शायी गई है। इसका कारण है— जो विषय चल रहा है, उसकी महिमा को प्रतिपादित करना ही श्रेयस्कर होता है। जैसे— राज जी के पाँच हारों का

वर्णन चलता है। जब एक हार का वर्णन चल रहा है, तो फिर दूसरे हार में कहा जायेगा कि यह सबसे ज्यादा सुन्दर है। तीसरे का और, चौथे का और। परमधाम में कोई किसी से ज्यादा सुन्दर है ही नहीं, बल्कि सबकी सुन्दरता, लीला, और शोभा एकसमान है।

हर चीज अनन्त में आयेगी और उस अनन्त परमधाम के अन्दर हमारी सुरता कैसे लगे, इसको दर्शाने के लिये कहीं प्रेम की महिमा वर्णित करी गई, कहीं सेवा की महिमा, और कहीं ज्ञान की महिमा। कहीं न कहीं सभी एक दूसरे के पूरक हैं। इल्म का प्राण है इश्क और इश्क का प्राण है इल्म। लेकिन इल्म को पाने के लिये सेवा और समर्पण की आवश्यकता है। इल्म ईमान देगा, ईमान से विरह आयेगा, और विरह का परिपक्व रूप इस दुनिया में प्रेम कहलायेगा। जब तक हृदय में प्रेम की

रसधारा नहीं बहती, दिल कभी भी अर्श नहीं हो सकता।

जिसने तन से सेवा नहीं की, वह अहं की ग्रन्थि को काट नहीं सकता। आप अमृतसर जाकर देखिए। देश का राष्ट्रपति हो या प्रधानमन्त्री, वहाँ जायेगा तो झाड़ू लगायेगा ही। वहाँ यह भेद नहीं है कि कौन प्रधानमन्त्री है और कौन साधारण सा सिख। शरीर की सेवा ने मनुष्य को इतना तो कर ही दिया कि पता चल जाये कि रे बन्दे! तुम्हारी सारी सांसारिक हैसियत इस मन्दिर के प्रांगण के बाहर ही है, इसके अन्दर नहीं। यह शरीर की सेवा का महत्व है।

जब मनुष्य की बौद्धिक विचारधारा में यह बात घर कर जाती है कि सब कुछ नश्वर है, केवल प्रियतम को पाने का लक्ष्य ही सर्वोपरि है, तो यह है बौद्धिक सेवा का फल। हम वाणी पढ़ते हैं, तो यह है बुद्धि द्वारा की जाने

वाली सेवा। यदि हम ईमान पर खड़े होकर अपने और धनी के बीच में संसार को नहीं आने देते, जीव को विकारों से मुक्त कर लेते हैं, जीव को धनी के प्रेम में डुबाते रहते हैं, तो यह जीव की सेवा कही जायेगी।

जैसा कि अभी मैं प्रसंग चला रहा था। सुन्दरसाथ के मन में यह संशय होता है कि इतनी संख्या बढ़ती जा रही है कि परमधाम में क्या होगा? यह चिन्ता करने की बात नहीं है। यदि ब्रज की लीला में भाग लेने वाले जीव पाँचवी बहिश्त में जा सकते हैं। रास लीला में भाग लेने वाले जीव चौथी में जा सकते हैं। मुहम्मद साहब पर फना होने वाले जीव तीसरी में जा सकते हैं। तो श्री प्राणनाथ जी के ऊपर जो कोरे से कोरा जीव ईमान लाएगा और चितवनि करेगा, वह जीव भी वहीं जायेगा जहाँ ब्रह्मसृष्टियों के जीव होंगे।

खुलासा ग्रन्थ में भिस्त सिफायत का बेवरा है। उसमें इस विषय पर काफी प्रकाश डाला गया है कि जो हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी के चरणों में आते हैं, उनका जीव वहीं पहुँचेगा जहाँ हकी सूरत विराजमान होंगे, यानि श्री मिहिरराज जी का जीव अक्षरातीत का स्वरूप बनकर सत् स्वरूप की पहली बहिश्त में विराजमान होगा और उन पर ईमान लाने वाला संसार का कोरा से कोरा जीव भी वहीं जायेगा जो आदिनारायण से उत्पन्न हुआ है। यह है चितवनि की महत्ता और प्रेम की महत्ता।

इस जागनी ब्रह्माण्ड में यह प्रकरण ही शुरू होता है कातनी के दृष्टान्त से। कातनी का दृष्टान्त क्या है? रुई है ईमान, तकला है इल्म। इल्म और ईमान मिलेंगे, तो प्रेम का सूत काता जायेगा। आपको तकला रूपी यह वाणी दे दी गयी। इस वाणी को हम कितना आत्मसात्

करते हैं, आत्मसात् करने के पश्चात् हम ईमान पर कितने खड़े होते हैं, ईमान पर खड़े होने के पश्चात् हम समर्पण की कितनी मन्जिल को पार करते हैं, और विरह में डूबकर अपने दिल में धनी को कितना बसाते हैं। यह इस प्रकरण में विशेष रूप से बताया गया है कि कौन कितना सूत कातेगा। श्री इन्द्रावती जी ने एक लक्ष्य दर्शा दिया कि सेर भर सूत कातना है।

महामति जी का अपने जीव पर बार-बार जोर है कि रे मेरे जीव! तुझे अपने प्रियतम को रिझाने के लिये सवा सेर सूत कातना चाहिये। मनुष्य को अनुचित महत्वकांक्षा नहीं पालनी चाहिये, लेकिन जो उचित महत्वाकांक्षा है, सकारात्मक दिशा में, बिना किसी का दिल दुखाए, हर आत्मा का अधिकार है कि वह अपनी आकांक्षाएँ ऊँची रखे। अपने विचारों को हमेशा उन्नत

दिशा में ले चलें। सकारात्मक सोच एवं उच्च विचार किसी को भी पर्वत की चोटी पर पहुँचा सकते हैं। किन्तु यदि हमारी सोच नकारात्मक है, यदि हम मन-वाणी-कर्म से किसी का अहित सोचते हैं, तो सम्भव है कि हम पहाड़ की चोटी से खाई में भी गिराए जा सकते हैं। इस प्रकरण के अन्दर महामति जी ने सब सुन्दरसाथ को प्रबोधित किया है कि जागनी के ब्रह्माण्ड में हमें करना क्या है? कहते हैं— कुछ भी सेवा के समान नहीं है। किरन्तन में कारी कामरी के प्रकरण में कह दिया है—

सब सिनगार को शोभा देवे, मेरा दिल बांध्या तुझ सों।

प्रेम रूपी काली कामरी तू सबको शोभा दे रही है।

सब अंग मोती तेरे तले, कोई नहीं तुझ परे।

तात्पर्य क्या है? इल्म की अपनी महत्ता है, ईमान

की अपनी महत्ता है, सेवा की अपनी महत्ता है, लेकिन प्रेम नहीं तो जीवन में सुगन्धि नहीं। प्रेम से ही सेवा की महत्ता है, प्रेम से ही इल्म की महत्ता है, प्रेम से ही ईमान की महत्ता है, प्रेम ही प्राण है। अक्षरातीत का स्वरूप ही प्रेम का स्वरूप है। प्रेम सर्वोच्च मन्जिल है। धनी ने कलश में आगे कहा है—

नाहीं कथनी इस्क की, और कोई कथियो जिन।

इस्क तो आगे चल गया, सब्द समाना सुन॥

सब्दातीत निध ल्याये सब्द में, मेटयो सबन को अन्धकार।

इल्म का प्राण इश्क है और इश्क का प्राण इल्म है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और सेवा दोनों में एक सामञ्जस्य स्थापित करती है। जिसने तन की सेवा, मन की सेवा, जीव की सेवा, और आत्मा को प्रियतम की

राह पर ले जाकर आत्मा से रिझाने की सेवा कर ली, वही प्रेम है। जीव की सेवा और आत्मा की सेवा प्रेम के धरातल पर हो जाती है। मन की सेवा ही समर्पण है। तन की सेवा प्राथमिक कक्षा है कि हम अपनी मैं खुदी को एवं अपनी लौकिक उपलब्धियों को भुलाकर धनी के प्रेम में कितने कदम बढ़ाना चाहते हैं। जैसे- देश का राष्ट्रपति या देश का प्रधानमन्त्री यदि किसी मन्दिर में जाकर झाड़ू लगाये या सिर पर मिट्टी की टोकरी ढोये, तो अपनी इस मैं खुदी को भुलाकर ही ऐसा कर सकता है कि मैं इस देश का प्रधानमन्त्री हूँ या राष्ट्रपति हूँ। जब तक उसको अपने शरीर के अहं का बोध होगा कि मेरी इतनी बड़ी उपलब्धि है, तब तक वह तन की सेवा कदापि नहीं कर सकता। महामति जी कह रहे हैं-

भट पड़ो तिन नींद को।

यह फटकार लगाई जा रही है कि उस नींद को धिक्कार है। नींद क्या है? अज्ञानता। यदि मनुष्य का सबसे बड़ा कोई शत्रु है, तो वह अज्ञान है। मनुष्य का शत्रु मनुष्य नहीं होता।

न कश्चित् कस्यचित् मित्रम्, न कश्चित् कस्यचित् रिपुः।

व्यवहारेण तु मित्राणि, जायन्ते रिपुवस्तथा॥

इस संसार में न तो कोई किसी का मित्र होता है और न कोई किसी का शत्रु होता है। शत्रु और मित्र व्यवहार से पैदा होते हैं। व्यवहार का सम्बन्ध होता है ज्ञान और अज्ञान। यदि हमारे हृदय में सच्चे ज्ञान का प्रकाश है, तो हमें मालूम होता है कि हमें कैसा व्यवहार करना है। वैसे ही, जब हृदय में सच्चे ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, तो राग-द्वेष की ग्रन्थियाँ मिट जाती हैं, लेकिन

एक ऐसी नींद, ऐसी अज्ञानता है, जिसने हमारी नजर को संसार में डाल रखा है।

हम सोचते हैं कि यह हमारा घर है, हम सोचते हैं कि यह हमारा शरीर है, हम सोचते हैं कि यह हमारा पुत्र है, रिश्तदार है, मैं इनका भाई हूँ, बन्धु हूँ, पिता हूँ, मित्र हूँ। यह बात कहने में बहुत अच्छी लगती है। हम गर्व से कहते भी हैं कि हमारी इतनी बड़ी कोठी है, इतना बड़ा मकान है, इतनी बड़ी सम्पत्ति है। सच है कि आपके अन्दर की चेतना जब इस शरीर को छोड़कर जायेगी, तो क्या आप इन सब को लेकर जायेंगे? कुछ भी नहीं जायेगा। एक मिट्टी का कण भी यहाँ से जाने वाला नहीं है। तात्पर्य क्या है? जिसको हम ज्ञान समझते हैं, वह अज्ञान है। हमारा जो नहीं है, उसको हम अपना समझे बैठे हैं, और जो हमारी शाहरग से भी नजदीक बसा हुआ

है, उसको हम पराये में गिनते हैं।

सवेरे मैंने थोड़ी सी झलक दिखलाई थी, विषय बदल गया था कि हमारा राज जी से उतना ही प्रेम है जितना कि हमें अपने घर के एक नौकर से होता है। मेरी बात कड़वी लग रही होगी। जैसे हम नौकर से इतना ही सम्बन्ध रखते हैं कि वह हमारा काम अच्छी तरह से करे, हम उसको वेतन दे दें। हमारा आन्तरिक लगाव नहीं होता। इसी तरह, राज जी से हमारा आन्तरिक लगाव जिस दिन हो जायेगा, उस दिन हम राज जी को पहले नम्बर पर रखेंगे। उस दिन राज जी एक पल की देरी किए बिना हमारे धाम हृदय में बस जायेंगे। तभी तो कहा है—

एक साद करो मुझको, मैं जी जी करूँ दस बेर।

साद कौन करता है? यदि हम पाठ भी रखते हैं, तो किसलिये? कोई सांसारिक कामना के लिये कि हमारे घर का कोई काम नहीं हो रहा है, हमारा बच्चा परीक्षा में इतने नम्बर लाये, हमारी दुकान चल जाये, हमारा व्यवसाय चल जाये, आदि। परिक्रमा करेंगे, पाठ रखेंगे, मेहेर सागर का पाठ करेंगे, किसके लिये? अपनी लौकिक उपलब्धियों के लिये। अपने प्रियतम के दीदार के लिये कौन पाठ रखता है?

हम दस-बारह घण्टे, सोलह घण्टे लौकिक उपलब्धियों के लिये हाड़तोड़ परिश्रम करते हैं, लेकिन राज जी का नाम आते ही एक रटा-रटाया उत्तर होता है, क्या करें, टाईम ही नहीं मिलता। जिनके लिये कर रहे हैं, वे अन्तोगत्वा हमारा साथ छोड़ देंगे। जो हमारा अनादि प्रियतम है, उसकी चिन्ता नहीं। यह तो

औपचारिकता है कि यदि हम राज जी का नाम नहीं लेंगे, तो हमारा घरेलू जीवन सुखी नहीं रहेगा। राज जी का नाम हम मजबूरी में लेते हैं कि हमारा गृहस्थ जीवन सुखमय बीत जाये और हमारे जीव को भी मुक्ति मिल जाये, अन्यथा हर कोई अपने दिल में जानता है कि हमें राज जी से उतना प्रेम नहीं, जितना पति को पत्नी से, पत्नी को पति से, भाई को बहन से, बहन को भाई से, मित्र को मित्र से है। राज जी कहते हैं—

मैं लिख्या है तुमको, एक करो मोहे साद।

तो दस बेर मैं जी जी कहूँ, कर कर तुमको याद।।

आखिर यह चौपाई किस प्रसंग में उतरी है? एक बार साद करने की बात क्यों कही गयी है? जब हर कोई मेहेर सागर का पाठ कर रहा है, पाँच-पाँच सौ, हजार—

हजार चौपाइयाँ सुन्दरसाथ कई-कई घण्टे पढ़ते हैं, रात-रात भर गुम्मत जी की, बंगला जी की परिक्रमा करते हैं, फिर भी राज जी को यह क्यों कहना पड़ा कि "एक बार करो मोहे साद।" हम दिल से उनके नहीं बन पाये, न दिल से उनको अपना बना पाये। हाँ, वाणी पढ़कर मुख से अवश्य कह सकते हैं।

कातनी के दृष्टान्त में यह बात बताई जा रही है कि जागनी ब्रह्माण्ड में यह परीक्षा की घड़ी है। इल्म का तकला दे दिया गया, ईमान की रुई आपको दे दी गई। अब राज जी पूछ रहे हैं, मैंने तुम्हें ऐसे अरण्य में भेजा है, ऐसे संसार में भेजा है, जिसमें वाणी से अपने स्वरूप की पहचान भी करा रहा हूँ, लेकिन तुम अपने धाम-हृदय में मुझे किस तरह से बसाकर प्रेम का सेर-भर सूत कातती हो, यह परीक्षा की घड़ी है। जो सेर-भर कातेगा, वह

निश्चित ही धन्य है। सेर-भर सूत कातने वाला कुछ सामान्य तरीके से अपनी गरिमा बचा पायेगा। और जो सवा सेर सूत कात लेगा, वह निश्चित है कि सिर ऊँचा करने की स्थिति में हो जायेगा।

अधिकतर प्रकरणों का सार यही है कि श्री देवचन्द्र जी का तन छोड़कर अक्षरातीत धाम धनी मिहिरराज जी (इन्द्रावती जी) के धाम-हृदय में विराजमान हो गये हैं। रास में बताया गया है कि जैसे बाँसुरी की आवाज सुनी, वैसे ही वाणी की आवाज सुनकर हमें धनी की तरफ अपने कदम बढ़ाने होंगे। प्रकाश गुजराती में बताया जा रहा है कि धनी की तरफ कदम बढ़ाने हैं, तो धनी कहाँ हैं। षट्क्रतु में बताया जायेगा कि धनी की तरफ कैसे बढ़ना है, विरह क्या है। क्योंकि कहा है—

विरहा नहीं ब्रह्माण्ड में, बिना सुहागिन नार।

ब्रह्मसृष्टियों के सिवाय कोई भी विरहिन कहलाने का अधिकार ही नहीं रखता। कलश में जागनी का प्रकरण आयेगा कि वास्तविक जागनी किसको कहते हैं। ये चारों किताबें क्रम से उतरीं। हब्शा के अन्दर रास, प्रकाश गुजराती, षट्क्रतु, और कलश गुजराती की दो चौपाइयाँ उतरीं। सूरत में कलश गुजराती पूर्ण हो गई, और अनूपशहर में धाम धनी द्वारा प्रकाश एवं कलश हिन्दुस्तानी भाषा में रूपान्तरित की गई। अज्ञानता की नींद के कारण हर कोई अपने को भुला बैठा है।

चोर चोरी क्यों करता है क्योंकि उसके हृदय में अज्ञानता ने अन्धकार बना रखा है। जिस दिन उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश आयेगा, निश्चित है कि वह चोरी करना छोड़ देगा। बुद्ध के चरणों में आने के पश्चात् अँगुलिमाल ने लाठियाँ खाने के बाद भी किसी के ऊपर

कभी कटु नजर से नहीं देखा। वाल्मिकी ऋषि ने न जाने कितनों को मारा होगा, लेकिन जब हृदय में ज्ञान का प्रकाश आ गया तो उसी वाल्मिकी ने एक चींटी भी नहीं मारी।

हमें चाहिये कि हम पाप से घृणा करें, पापी से नहीं, क्योंकि जिसको हम आज पापी समझते हैं, हो सकता है कि पूर्व जन्मों में वह अच्छे सुकर्माँ को करने वाला हो और किसी दुर्भाग्यवश वह कीचड़ में फँस गया है। ज्ञान यही कहता है कि हम शरीर की दृष्टि से न देखकर उसके अन्दर बैठी हुई चेतना को देखें और आज हमारा समाज भी अज्ञानता की चादर ओढ़े हुए सो रहा है।

आप संसार के सारे मत-पन्थों की समीक्षा कीजिये। आपको विदित हो जायेगा कि हमारी वाणी का ज्ञान कितना ऊँचा है। हम लोग रटी-रटायी बातें तो

कहते हैं कि हमारा ज्ञान सबसे ऊँचा है, लेकिन आपकी इस वार्ता को कौन मानेगा? जब तक आप तर्क से, बौद्धिक प्रमाणों से, उसको प्रमाणित नहीं कर देते हैं, तब तक संसार आपकी विचारधारा को सुनने के लिये तैयार नहीं है। हमें जो करना चाहिये था, कड़वा सच यह है कि हमने किया तो, लेकिन धीमी गति से किया।

संसार के सारे मत-पन्थ कहीं साकार में भटक रहे हैं, कहीं निराकार में भटक रहे हैं। निराकार और साकार से परे कोई-कोई है, जैसे कबीरपन्थी हैं या वेद के अनुयायी हैं, वे बेहद की बातें करते हैं। कोई-कोई सूफी फकीर कर सकते हैं। बाईबिल वाले तो निराकार से परे की कुछ भी बात नहीं जानते। हमारी वाणी का तात्त्विक दर्शन वहाँ से शुरू होता है, जहाँ इन सारे मतों का ज्ञान समाप्त हो जाता है—

न ईश्वर ना मूल प्रकृति, ता दिन की कहूं आपा बीती।

इतना ऊँचा ज्ञान जिसको सारी दुनिया पढ़े तो मुक्त हो जाये। धनी ने क्या कहा है—

हकें इलम ऐसा दिया, जो चौदे तबको नाहें।

और नाहीं नूर मकान में, सो दिया मोहे सपने माहें॥

जो अक्षर धाम में अक्षर ब्रह्म के पास नहीं है, चौदह लोक में विष्णु भगवान के पास भी नहीं है, किसी के पास नहीं है, पृथ्वी की तो बात ही छोड़ दीजिये। वह मेरे धाम-हृदय में बैठकर धाम धनी ने दिया। लेकिन हम तो उनके लाड़ले हैं। हमने उस ज्ञान को कितना फैलाया?

संसार के अन्य मत-पन्थों में जाइये। ब्रह्माकुमारी मत कितने साल से चला है? लगभग पचास-साठ साल से। लेखराज जी ने ऐसी प्रक्रिया पैदा की कि आज

दुनिया के कई देशों में ब्रह्माकुमारी मत चल गया। राधास्वामी मत भी कोई ज्यादा नया नहीं है। इसी तरह, हम श्री प्राणनाथ जी को विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप में संसार के सामने प्रस्तुत नहीं कर सके।

अभी मिर्जा गुलाम अहमद का अहमदीया मत जो पंजाब से चला है, यह भी दुनिया के एक सौ साठ देशों में फैल चुका है। सत्तर से ज्यादा भाषाओं में इन्होंने अपने कुरआन की टीका अनुवादित कर रखी है। हमने कितनी भाषाओं में की है? दस हजार से ज्यादा बच्चों ने अपना जीवन समर्पित कर दिया है कि हम अहमदीया मत की विचारधारा को सारे संसार में फैलायेंगे।

दिल्ली में जो लोटस मन्दिर आप देखते हैं, वह बहाई मत का है। बहाई मत में भी यह मान्यता है कि बहाउल्ला ही विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक अवतार हैं। और बहाई

मत या अहमदिया मत की किताबें आप देखें, तो उन्होंने संस्कृत के ग्रन्थों और सन्तों की वाणियों से बहुत से प्रमाणों का संकलन किया है। आपने अपने प्रियतम को विजयाभिनन्द बुद्ध स्वरूप सिद्ध करने के लिये क्या किया? अपने स्थानों में हम अपनी कितनी महिमा गा लें, लेकिन यदि हम विश्व स्तर पर देखें, तो जो हमें प्रयास करना चाहिये था, संसार के अन्य मतावलम्बियों की अपेक्षा वह अभी बहुत पीछे है।

हमारे पास हीरों की बड़ी-बड़ी पेटियाँ हैं, लेकिन सबमें ताले लगे हुए हैं। हमारे हाथों में चाबी भी पकड़ा दी गई है, लेकिन हम सोचते हैं कि आज नहीं खोलेंगे कल खोलेंगे, कल नहीं खोलेंगे परसों खोलेंगे, और भूख से तड़प रहे हैं, हमारे कपड़े भी फटे हुए हैं। मेरा कहने का आशय यह है कि छठे दिन की लीला में जितना

सामूहिक प्रयास होना चाहिये था, वह आज नहीं हो रहा है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि हो नहीं रहा है, हो तो रहा है, लेकिन परमधाम में विराजमान अक्षरातीत और गुम्मत जी में विराजमान महामति जी की आत्मा जो आशा रखते हैं, वह नहीं हो रहा है।

जब समुद्र पर पुल बाधा गया था तो एक गिलहरी पानी में डुबकी लगाती थी, फिर बालू के कुछ कणों को समुद्र में छोड़ आती थी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने उसको उठाकर पूछा— "गिलहरी! तू क्या कर रही है?" गिलहरी बोलती है— "भगवान! मुझसे पत्थर तो उठ नहीं सकते। मैं सोचती हूँ कि कुछ रेत के कण ही डालूँ, ताकि मेरा जीवन धन्य-धन्य हो जाये।" इस संसार में कोई भी अपने बल पर कुछ नहीं कर सकता—

तैसा इत होता गया, जैसा हुजूर हुकम करत।

जो मूल स्वरूप दिल में ले लेते हैं, उसी के माध्यम से यहाँ आत्मा कुछ भी करती है। चाहे लालदास जी हों, चाहे महाराज छत्रसाल जी हो, या कोई भी आत्मा यहाँ कुछ भी करेगी, मूल स्वरूप की प्रेरणा से ही करेगी, उनके आदेश से मेहेर की छाँव में करेगी।

इसी भाव से जैसा कि अभी मदान जी ने कहा था—सरसावा में कोई गादी का स्थान नहीं है। वह एक मिशन है कि हमारे समाज में सैकड़ों विद्वान तैयार हो, दर्जनों गायक-कलाकार तैयार हों, कई भाषाओं में वाणी का अनुवाद हो, और इसको व्यक्त करने वाले ऊँचे स्तर के प्रवक्ता तैयार हों। इसी ध्यान को लक्ष्य में रखते हुए दिन-रात वहाँ अध्ययन-लेखन जो कुछ भी कार्य हो रहा है, राज जी की कृपा से हो रहा है। और मैं यही चाहूँगा कि अपनी संकीर्ण प्रवृत्ति को छोड़कर सारा

समाज बौद्धिक चेतना को जाग्रत करने की तरफ कदम बढ़ाये। यह ध्यान रखिये कि हम यहाँ से एक तिनका भी उठाकर परमधाम ले जाने वाले नहीं हैं। हम क्या कर रहे हैं, वह सब कुछ राज जी देख रहे हैं। जैसे कहा है—

जो झगड़ा लगावे आपमें, ताए होसी बड़ो पछताप।

ओ जाने कोई न देखहीं, पर धनी बैठै देखें आप॥

यह चौपाई इस कातनी के प्रकरण में है। इस कातनी के प्रकरण में यह कहा गया है कि एक तो ऐसी होगी, जो लड़-लड़कर दूसरे से सूत कतवाएगी, और एक ऐसी भी होगी, जो दूसरे को कातते हुए देखकर उसका तकला भी तोड़ डालेगी, यानि न ज्ञान का प्रकाश फैलाना, न फैलाने देना। लेकिन आज शिक्षा का प्रसार बढ़ रहा है। श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा का एक ही

उद्देश्य है- ज्ञान का फैलाव, बौद्धिक जाग्रति, और आत्मिक प्रेम।

यदि हम अपनी संकीर्ण प्रवृत्तियों को छोड़कर, सारे सुन्दरसाथ एकरूप होकर ब्रह्मवाणी के प्रकाश को फैलाने में योगदान दें, तो यह ध्यान रखिये, वही चीज हमारे साथ परमधाम में जायेगी। हमारे ये मन्दिर, हमारे ये आश्रम, ये दीवारें, बड़े-बड़े भव्य भवन, सब यहीं रह जाने वाले हैं, कोई न लेकर गया है, न कोई लेकर जायेगा। किन्तु राज जी यह देख रहे हैं कि मेरी वाणी को फैलाने में कौन कितना योगदान दे रहा है। अब महामति जी कहते हैं-

भट पड़ो तिन नींद को।

माया की उस अज्ञानता को धिक्कार है।

जिन सोहागनियां दैयां भुलाए।

जिन्होंने सोहागिन ब्रह्मसृष्टियों को भुला रखा है।

कोई भी आत्मा यहाँ भूलना नहीं चाहती। क्या बिहारी जी की आत्मा चाहती थी कि मैं यहाँ गुनाह करूँ, क्या शाकुमार की आत्मा चाहती थी कि मेरे सिर पर गुनाहों का बोझ लादा जाये कि स्वयं अक्षरातीत दिल्ली में हों और वह चरणों में न आ सके। लेकिन अन्दर बैठी हुई अज्ञानता चेतना को उसके मूल स्वरूप की पहचान नहीं होने दे रही है। जैसे कि लाईट बुझा दी जाये, तो यहाँ बैठा हुआ कोई भी किसी को देख नहीं सकेगा। वैसे ही जब तक हृदय में अज्ञानता का अन्धकार है, हमारे ज्ञान-चक्षु नहीं खुलते हैं, तब तक सत्य और असत्य की पहचान नहीं हो पाती है। जब वाणी के ज्ञान का प्रकाश हमारे हृदय में जगमगाने लगता है, तो निश्चित रूप से हर

आत्मा समझ जाती है कि अब हमें क्या करना है। परमधाम की सुहागनियों के लक्षण में यह बात बताई गई है—

ओ तो आगे अन्दर उजली, खिन खिन बढ़त उजास।

देह भरोसा ना करे, पिया मिलन की आस॥

एक आत्मा, ज्ञान-दृष्टि से जाग्रत होने से पहले, माया के कार्यों को ही सब कुछ समझती है। जब उसको वाणी का प्रकाश मिल जाता है, तो सोचती है कि यह किसके लिये करूँ। मैं उतना ही करूँ, जितना मेरे जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक है। वह रात-दिन धनी के प्रेम में लग जाती है। जब तक ज्ञान का प्रकाश नहीं होता, वह सोचती है—

यावत् जीवेत् सुखम् जीवेत्, ऋणम् कृत्वा घृतम् पीवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्या, पुनरागमनम् कुतः॥

जब तक जियो सुख से जियो, कर्ज लेकर भी घी खाओ, क्योंकि शरीर दोबारा मिलने वाला नहीं है।

यह चार्वाक का सिद्धान्त परमधाम की ब्रह्मसृष्टि पर भी लागू हो सकता है, यदि उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश नहीं है। इसलिये मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु मनुष्य नहीं, अज्ञान है। शत्रुता मिटा दीजिये, शत्रु स्वयं नष्ट हो जायेगा। शत्रुता कहाँ से पैदा होती है? अज्ञानता से।

एक बार एक शास्त्रार्थ हो रहा था। शास्त्रार्थ में प्रतिवादी जब हारने लगा, तो उसने भरी सभा के बीच में दूसरे के मुँह पर थूक दिया। जिसके मुँह पर थूका, उसके

चेहरे पर मुस्कुराहट आ गई, और जिसने थूका था, उसका चेहरा पीला पड़ गया कि यह व्यक्ति कितना महान है कि भरी सभा के बीच में मैंने उसके चेहरे पर थूक दिया और इसको गुस्सा नहीं आया। वह उसके चरणों में नतमस्तक को गया कि मैंने ऐसा महान व्यक्तित्व तो देखा ही नहीं। तात्पर्य क्या है? दोनों की शत्रुता कब नष्ट हो जाती है? जब हृदय की अज्ञानता की ग्रन्थि समाप्त होती है। इसलिये महामति जी ने सब सुन्दरसाथ को उस अज्ञान रूपी नींद का परित्याग करने के लिये कहा है। जब तक हमारा हृदय अज्ञानता की ग्रन्थियों को छोड़ेगा नहीं, तब तक जागनी के प्रकाश में हम अपने को कभी भी स्थिर नहीं पा सकते।

हमारे समाज में परमधाम की वहदत, खिलवत का ज्ञान है। इस ज्ञान को पाने के लिये अक्षर की आत्मा

सम्वत् १७३५ तक तड़पती रही है। अक्षर के फरिश्ते जिबरील द्वारा गीता का ज्ञान दिया गया, कुरआन का ज्ञान लाया गया, अखण्ड महारास का ज्ञान दिया गया, और कबीर जी की साखियाँ लाई गयीं। सारा संसार इनके ज्ञान पर आश्रित है। किन्तु जिस जिबरील को परमधाम में जाने की इजाजत नहीं, जो जबर्राईल केवल अक्षर का फरिश्ता है और उस अक्षर से परे अक्षरातीत के धाम-हृदय की लीला का सारा रस जिस समाज में हो, वह समाज आज भी संसार के अन्य मतों में पिछलग्गुओं में माना जाये?

कल्पना कीजिये, यदि चारों शंकराचार्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय मन्च पर बैठे हों, तो हमारे समाज में कौन सा ऐसा व्यक्तित्व है, जो चारों शंकराचार्यों से टक्कर ले? इसके लिये दोषी हम स्वयं हैं, क्योंकि हमने अपनी

क्षमताओं को कुण्ठित कर रखा है। व्यर्थ की लड़ाई और संकुचित भावनाओं में न तो ज्ञान की ज्योति को जलाने दिया, और न अज्ञानता तथा आलस्य की चादर को हटाने में सहयोग दिया। महामति जी यह कह रहे हैं— साथ जी, अज्ञानता की नींद को धिक्कार है, जिसने तुम्हें माया में भुला रखा है।

तो नींद निगोड़ी न उड़ी।

महामति जी कहते हैं कि यह अज्ञान रूपी नींद "निगोड़ी" है, यानि उसके लिये फटकार का शब्द है। यह अज्ञान रूपी नींद किसी के भी हृदय से निकल नहीं पा रही है।

अन्दर परदा उड़ाईया, तो भी न बदल्या हाल।

नकस न मिटयो मोह मूल को, तार्थें नजरों ना नूरजमाल॥

जैसे सवेरे भी मैंने इस बात की झलक दिखलाई थी कि जब बच्चा सो रहा होता है, तो उसे बार-बार उठाया जाता है। ऊपर से बोलता है कि मैं उठ गया हूँ, उठ गया हूँ, किन्तु लेटा रहता है, झपकी लेता रहता है, वैसा ही हम सुन्दरसाथ का भी हाल है। कभी वाणी पढ़ते हैं, तो लगता है कि अब तो माया बिल्कुल छूट गई। थोड़ी देर चितवनि करेंगे, तो लगेगा कि माया तो छूट गई है, लेकिन फिर कहीं न कहीं उससे हमारा अटूट सम्बन्ध बना होता है, क्योंकि हमारा जीव कितने जन्मों से माया में भटक रहा होता है।

वाणी का थोड़ा सा प्रकाश पाते ही वह सजग होता है कि अब मुझे इसको छोड़ देना है। जैसे एक शराबी, शराब की हानि पर विचार करने के पश्चात्, प्रायश्चित्त करता है कि यह शराब मुझे पी रही है, मैं इसको नहीं पी

रहा हूँ। उसी तरह से हम भी यह जानते हैं कि "माया तो दुख निधान जी", लेकिन फिर इस दुख के निधान को छोड़कर सुख के निधान को अपने दिल में नहीं बसा पाते। इसका कारण यही है कि हमारे हृदय में अभी अज्ञानता के अन्धकार ने डेरा जमा रखा है।

जो धनी थके बुलाए बुलाए।

यहाँ प्रश्न होता है कि क्या अक्षरातीत भी थक सकते हैं? थकने का स्वभाव जीव का है, अक्षरातीत का नहीं। तो क्या यह चरण गलत है? यह आलंकारिक भाषा है। जैसे आप अपने बच्चे से चार-पाँच बार बुला-बुलाकर कहते हैं कि एक गिलास पानी लाओ, एक गिलास पानी लाओ। नहीं लाता है, तो आप उत्तेजित होकर कहते हैं, मैं बुलाते-बुलाते थक गया हूँ, तू एक गिलास पानी नहीं ला सकता। वही भाषा है, चार-पाँच बार बोलने से कोई

थकेगा नहीं, लेकिन यह आलंकारिक भाषा में कहा जाता है कि मैं थक गया हूँ।

महामति जी वही बात कह रहे हैं कि सुन्दरसाथ जी! आपको जगाते-जगाते धाम धनी थक गये हैं, लेकिन आपके अन्दर की नींद नहीं जा रही है। तात्पर्य क्या है? सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन में बैठकर १६७८ से लेकर १७१२ तक अक्षरातीत धाम के धनी ने न जाने कितने घण्टों तक चर्चा की होगी। तन तो श्री देवचन्द्र जी का पकड़ा। अब मिहिरराज के तन में वि.सं. १७१२ से प्रवेश कर गये हैं। वि.सं. १७१५ में स्पष्ट रूप से हब्शा से रास, प्रकाश, एवं षट्क्रतु की वाणी उतरनी शुरू हो जाती है। अब यह वि.सं. १७३६ का समय है। कल्पना कीजिये, १६३८ में देवचन्द्र जी का तन जन्म लेता है। १७३६-३७ में प्रकाश हिन्दुस्तानी की वाणी

उतर रही है और यह बात कही जा रही है—

जो धनी थके बुलाए बुलाए।

आपकी आत्मा को जाग्रत करने के लिये राज जी सारे प्रयास कर रहे हैं। यह हमारे लिये उद्बोधन है। यह दबाव देकर बात कही जा रही है कि बार-बार बुलाने पर भी हमारी आत्मा क्यों नहीं जाग्रत हो रही है। प्रकाश की वाणी में बार-बार इन्द्रावती जी सुन्दरसाथ को जगाने के लिये यही कह रही हैं—

तुम सयाने मेरे साथ जी, जिन रहो विखे रस लाग।

पाऊं पकड़ कहे इन्द्रावती, उठ खड़े रहो जाग।।

यह कितनी पीड़ा है? कल्पना कीजिये, एक घर का कोई सदस्य शराब पीने लगे और घर का जो सबसे बड़ा बुजुर्ग हो, पिता मान लीजिये, दादा मान लीजिये,

समझाता है, नहीं समझता है, तो क्या कहेगा? मेरे घर की इज्जत की खातिर तुम पीना छोड़ दो, मैं तुम्हारे पाँव पकड़ता हूँ। आज हमारे तनों से जो कुछ हो रहा है, हम सोचते हैं कि कौन देख रहा है? यही तो भूल है। दुनिया वालों के जीवों के गुनाह का प्रायश्चित्त बहुत सरल तरीके से हो जायेगा, लेकिन ब्रह्मसृष्टियों के तनों से होने वाले गुनाह अनन्तकाल के लिये अखण्ड हो जाने वाले हैं। इसलिये महामति जी कह रहे हैं—

ऐ हांसी सत वतन की, कोई मोमिन करावे जिन।

राज जी अनन्त काल तक हमारे किये हुए कार्य जब चाहे तब दिखा देंगे कि देखो माया में जाने पर तुम्हारे जीव से कौन-कौन से गुनाह हुए हैं। इसलिये अज्ञानता की चादर को हमें हटाना ही पड़ेगा। अज्ञानता के अन्धकार को हटाकर ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश से हमें

अपने हृदय को आलोकित करना ही पड़ेगा और उसमें प्रेम की रसधारा बहानी ही पड़ेगी, अन्यथा हम सवा सेर या सेर भर सूत तो क्या, आधा किलो भी सूत नहीं कात पायेंगे।

इस प्रकरण में बार-बार यही बताया जायेगा कि किसी ने किसी का तकला तोड़ा, तो किसी के हाथ में पूनी भी नहीं जा पाई, कि खेल खत्म हो गया, और जब परमधाम में उठी तो आँखें मिचोलती हुई। जैसे- कोई विद्यार्थी पेपर देने जाने वाला है। उसको इतनी गहरी नींद आ गई कि यदि आठ बजे परीक्षा है, तो नींद खुलती है साढ़े सात बजे। आँखें मलते हुए उठेगा। कहेगा कि अब तो समय ही नहीं रह गया कि मैं अपना पाठ दोहरा सकूँ। अब वह क्या करेगा? नहायेगा भी नहीं, जल्दी से कपड़े पहनकर परीक्षा में बैठेगा।

वैसे ही उन सुन्दरसाथ का भी हाल होगा, जिन्होंने अक्षरातीत से प्रेम के लिये अपने पास समय न होने का बहाना किया। हमें अपने मित्रों को खुश करने के लिये समय मिल सकता है, रिश्तेदारों को खुश करने के लिये समय मिल सकता है, अर्थोपार्जन के लिये समय मिलता है। हर चीज के लिये समय है, एक समय नहीं है तो राज जी के लिये, क्योंकि राज जी हमारे दिल में चौथे नम्बर पर आयेंगे, या पाँचवे नम्बर पर आयेंगे, या छठे नम्बर पर आयेंगे। किसी-किसी के दिल में दूसरे नम्बर पर आयेंगे। जिसके दिल में वे पहले नम्बर पर होंगे, उसको परमहंस बनने में जरा भी देर नहीं लगेगी।

ऐ नींद अमल कासों कहिए।

महामति जी कहते हैं कि नींद का नशा किसको कहते हैं? कैसे कहा जाये कि इन पर माया के नशे का

प्रभाव है? माया का नशा क्या होता है? माया प्रत्यक्ष रूप में दिखाई तो देती नहीं। सबके दो हाथ हैं, दो पैर हैं, दो आँखें हैं, कान हैं, नाक है, रूप-रंग मिलता-जुलता है। कैसे यह निर्णय किया जायेगा कि यह व्यक्ति माया के अन्धकार में डूबा हुआ है और यह व्यक्ति माया को चीरकर अपने प्रियतम से जा मिला है?

क्योंए न छोड़े आत्म।

आत्मा उसको छोड़ क्यों नहीं पा रही है? माया का अन्धकार क्या है और क्या कारण है कि माया के अन्धकार को आत्मा छोड़ नहीं पाती है? इस सम्बन्ध में सांख्य दर्शन का एक सूत्र याद रखना चाहिये—

भोगात् न राग शान्तिः मुनिवत्।

विषयों के भोग से कभी भी शान्ति नहीं मिल

सकती।

जैसे सौभरी ऋषि एक बार जंगल में तप कर रहे थे। उन्होंने देखा कि मछली का एक जोड़ा पानी में क्रीड़ा कर रहा है। सोचा, मुझे तो यह मालूम ही नहीं कि स्त्री क्या होती है, पुरुष क्या होता है। मैं तो बचपन से ही वन में आकर ध्यान-समाधि में डूबा हुआ हूँ। जरा देखूँ तो यह गृहस्थ जीवन होता क्या है। गृहस्थ जीवन में फँस गये। लम्बे समय तक गृहस्थ जीवन का भोग करने के पश्चात् उनके अन्दर पुनः तीव्र वैराग्य द्वारा बोध हुआ कि जिस प्रकार अग्नि की लपटों में घी डालने से लपटें और तेज होती जाती है, उसी तरह से इच्छाओं के भोग से इच्छायें और बढ़ती जाती हैं।

भोग से कभी भी शान्ति को प्राप्त नहीं हुआ जा सकता। जैसे एक शराबी है, जितना ही शराब पीता

जायेगा, उसके अन्दर चित्त में वैसे ही संस्कार बसते जायेंगे। दिन पर दिन, वे संस्कार इतने परिपक्व हो जायेंगे कि छोड़ना उसके बस की बात नहीं रहेगी।

रजनीश ने एक नया सिद्धान्त निकाला। रजनीश की बुद्धि तार्किक ज्यादा थी। रजनीश का कहना यह है कि भोगों को इतना भोगो कि भोग की इच्छा ही न हो, लेकिन यह सम्भव नहीं है।

आप देखते हैं, माँसाहारी माँस खाते-खाते सारी उम्र गुजार देते हैं, शराबी शराब पीते-पीते सारी उम्र गुजार देते हैं, अफीमची अफीम खाते-खाते सारी उम्र गुजार देते हैं, लेकिन उनकी तृष्णा कभी भी समाप्त नहीं होती। तृष्णा समाप्त होगी, केवल ज्ञान की तलवार से, विवेक की तलवार से। जिसके पास ज्ञान का बल है, विवेक का बल है, प्रियतम का प्रेम है, केवल वही विषयों

की तृष्णा को समाप्त कर सकता है।

महामति जी कहते हैं कि कैसे यह पता किया जाये कि किस सुन्दरसाथ पर माया का नशा छाया हुआ है और उसकी आत्मा उसको क्यों नहीं छोड़ पा रही है? जब तारतम ज्ञान हमारे हृदय में प्रवेश करेगा, तब हम समझ जायेंगे कि ये तृष्णायें मात्र क्षणिक हैं। दुःख का कारण क्या है? तृष्णा।

गौतम बुद्ध को घोर तप के बाद प्राप्त ज्ञान का सार यही मिला कि सारे दुःखों का कारण तृष्णा है और तृष्णा का परित्याग ही दुःख का बन्धन छुड़ाकर निर्वाण पद की प्राप्ति कराता है।

तारतम ज्ञान की दृष्टि से देखते हैं, तो इस सारी दुनिया की बड़ी-बड़ी विचारधारायें बच्चों के खेल जैसी

लगती हैं। वाणी में ज्ञान का तात्त्विक दर्शन कितना ऊँचा है, इसकी महत्ता हमको अभी भी मालूम नहीं चल पाई है। जैसे कोहिनूर हीरा सबसे पहले एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में लगा, जो हल जोता करता था। उसने उसे हल की मुठिया में लगा दिया कि जोतते समय मेरे हल की मुठिया चमकती रहे। उसको पता ही नहीं था कि इस हीरे की कीमत क्या है।

बुद्ध की विचारधाराओं, जैन मत की विचारधाराओं, सनातन पन्थी हिन्दुओं के एक हजार मत-पन्थों की विचारधाराओं को जब वाणी के प्रकाश में तौलते हैं, तो जिनके ऊपर धनी की कृपा होगी, उनको हँसी आ जायेगी कि बेचारे ये संसार के प्राणी कहाँ भटक रहे हैं। लेकिन जब हम आत्म-निरीक्षण करेंगे, तो सबसे पहले स्वयं पर हँसी आयेगी कि इतने बड़े ज्ञान की थाती को

लेकर न तो हमने अपने समाज में फैलाया, न ही संसार वालों को दिया।

सबसे बड़ी हँसी के पात्र हम ही बनेंगे। जब योगमाया के ब्रह्माण्ड में सातवें दिन न्याय की लीला होगी, तो सारी दुनिया कहेगी कि परमधाम के ब्रह्ममुनियों! हमें तो पता ही नहीं था। हम तो गुफाओं में, वनों में जा-जाकर परेशान हो गये, किन्तु आपको तो पता था, फिर भी आपने कुछ नहीं किया। इसलिये हम दोषी नहीं हैं, दोषी आप लोग हैं कि आप लोगों ने अपने ज्ञान का प्रकाश हम तक पहुँचाया ही नहीं।

तो भी बेसुधी न टली।

यदि शराब पीने वाला पीने के बाद सोचता है कि मुझसे कुछ गलती हो गई है, तब तो सम्भव है कि वह

भविष्य में परित्याग कर दे। लेकिन नशे में कोई इतना बेसुध हो जाये कि गन्दी नाली में गिरा हो, फिर भी उसको अहसास न हो कि मैं गन्दी नाली में गिरा हूँ, वह अपने को मखमली शैय्या में सोने वाला माने, इसे कहते हैं बेसुध होना।

खुद को पता नहीं कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ? वैसे ही माया के संसार में आने के पश्चात्, परमधाम की आत्मायें भी खुद को भुलाये बैठी हैं। माया की नींद ने उनको बेसुध कर दिया है। बेसुध का तात्पर्य क्या है? हम कौन हैं, यह भी पता नहीं। हम कहाँ से आये हैं? यह भी पता नहीं। जो भी सुन्दरसाथ बैठे हैं, सबको मालूम है कि हम परमधाम से आये हैं।

हर कोई कहेगा कि हम परमधाम की ब्रह्मसृष्टि हैं, अक्षरातीत की अँगना हैं, लेकिन ये बातें तो पढ़कर कही

जा रही हैं। ये बातें व्यवहार में चरितार्थ नहीं होती हैं। जिस दिन ये बातें व्यवहार में चरितार्थ हो जायेंगी, हमारी आत्मा की जागनी में देर नहीं लगेगी। जैसे मूल मिलावा का वर्णन कर देने का मतलब यह नहीं होता कि हमने मूल मिलावा का दर्शन कर लिया है। यह सम्बोधन सुन्दरसाथ के लिये किया जा रहा है, जो ज्ञान में प्रवीण हो चुके हैं। धनी क्या कह रहे हैं—

तो भी बेसुधी न टली।

आखिर जो सुन्दरसाथ घर-द्वार छोड़कर श्री जी के साथ हो गये थे, उनके लिये यह सम्बोधन है कि बेसुधी नहीं टल रही है। इसका भाव क्या है? आने वाले छठे दिन की लीला में सुन्दरसाथ माया में बेसुध न हो जाये, उनके लिये यह सम्बोधन क्यों कहा जा रहा है? जब वाणी सुन्दरसाथ के हृदय में प्रवेश कर गई है, इसके

पश्चात् भी इस तरह की बातें कहने का तात्पर्य क्या है? इसलिये इस सम्बन्ध में सिन्धी ग्रन्थ में इन्द्रावती जी ने कहा है कि धाम धनी! आपका ज्ञान मेरे हृदय तक तो पहुँचा है, आत्मा तक नहीं पहुँचा।

आत्मा तक पहुँचने का तात्पर्य क्या है? हम वाणी की चौपाइयों को पढ़ सकते हैं। इसे हमारे जीव की बुद्धि ग्रहण कर रही है, हमारा चित्त ग्रहण कर रहा है, हमारा मन ग्रहण कर रहा है। यानि हृदय में ज्ञान है, व्यवहार में नहीं। रावण के अन्दर भी चारों वेदों का ज्ञान बैठा हुआ था। रावण सामान्य व्यक्ति नहीं था। विद्वता में राम से भी आगे था, लेकिन ज्ञान का प्रकाश केवल आचरण में उतारने के लिये होता है। यदि वह आचरण में नहीं उतारा, हृदय में दबाकर रखा गया, तो उससे कोई भी लाभ नहीं। यहाँ तक कि कहा गया—

पुस्तकस्था तू या विद्या, परहस्तगते धनम्।

कार्यकाले समुत्पन्ने, न सा विद्या न तद्धनम्॥

पुस्तक में स्थित विद्या और दूसरे के हाथ में गये हुए धन को अपना नहीं मानना चाहिये। उसी तरह, पुस्तक में स्थित विद्या को यदि आपने याद भी कर लिया है और वह चरितार्थ नहीं है, तो ग्रहण की हुई विद्या तब भी निष्फल ही मानी जायेगी। यदि आपने पढ़ा है कि शराब पीना बुरी बात है, लेकिन आप पी रहे हैं, तो पढ़ने से कोई लाभ नहीं। इसीलिये यह चौपाई कही गई है—

तो भी बेसुधी न टली।

धाम धनी आपकी आत्मा को जगाने के लिये, सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी के तन से चर्चा सुना-सुनाकर उस तन

का परित्याग कर दिये। मेरे धाम-हृदय में बैठकर रास, प्रकाश, षट्क्रतु, एवं कलश की वाणी भी दे दिये, लेकिन आपके अन्दर से बेसुधी क्यों नहीं जा रही है?

जो जल बल हुई भसम।

अर्थात् जल करके राख हो जाना।

ज्ञान की अग्नि में जलना एक ऊँची उपलब्धि होती है, किन्तु जब तक वह ज्ञान हमारे रोम-रोम में प्रवाहित होकर आचरण में चरितार्थ न हो जाये, उस ज्ञान की अग्नि से किसी के जलने का कोई सार्थक परिणाम नहीं निकलने वाला। महामति जी सब सुन्दरसाथ को जागनी के लिये बार-बार प्रेरित कर रहे हैं कि अज्ञानता के अन्धकार को ज्ञान के प्रकाश से मिटाया जाना चाहिए। लेकिन माया का नशा ऐसा है कि राज जी जगाते-जगाते

थके जा रहे हैं और सुन्दरसाथ माया की नींद को छोड़ने के लिये तैयार ही नहीं होता। यह सृष्टि में हमेशा से होता आया है और होता रहेगा। किसी के जीव के संस्कार कुछ हैं और किसी के जीव के संस्कार कुछ हैं। जीव का जागना और आत्मा का जागना, दोनों का अलग-अलग अर्थ है—

एही रस तारतम का, चढ़या जहर उतारे।

निरविख काया करे, जागे जीव करारे॥

तारतम का रस जीव को माया के विष से अलग करता है। जैसे— यदि सर्प काटता है, तो सर्प के काटे का इलाज क्या है? ऐसी औषधि, जो उसके विष के असर को दूर कर दे।

ल्याये पिऊ वतन थे, बल माया जानी।

माया के विष को दूर करने के लिये श्री राज जी इस तारतम वाणी को लाये हैं, क्योंकि जो भी इस ब्रह्मवाणी को आत्मसात् करेगा, इसकी अमृतमयी ज्ञान की बूँदों को आत्मसात् करेगा, उसकी चेतना जाग्रत हो जायेगी कि मैं किस झूठे संसार में फँसी हुई थी। यह अज्ञान रूपी संसार तो प्रवाह से चल रहा है। व्यवहार में हर कोई देखता है कि आज जो वृद्ध दिखाई दे रहे हैं, कभी वे भी जवान थे, कभी वे बच्चे थे, और कभी वे भी किसी की गोद में खेला करते थे। आज जो बच्चे हैं, कभी वे जवान बनेंगे, फिर बूढ़े हो जायेंगे, तथा फिर शरीर छोड़ देंगे।

श्मशान घाट में जायें या बड़े-बड़े हास्पिटल में जायें, कितनी चीख-पुकार मची होती है। वहाँ जाने पर लगता है कि सब झूठा है, कहाँ फँसे पड़े हैं, लेकिन जब घर आते हैं, फिर वही ढाक के तीन पात। तात्पर्य क्या

है? हमारे मन का मोह कहीं न कहीं बँधा हुआ है। हमारे मन में ज्ञान का उजाला नहीं है। हाँ, ज्ञान की कुछ बूँदें जो ली जाती हैं, वे अज्ञानता के अन्धकार में दब जाती हैं।

यदि चमकता हुआ हीरा कीचड़ में गिर जाये, तो क्या होगा? उसके ऊपर कीचड़ का आवरण पड़ जाता है। यदि ज्ञान का प्रकाश मिल जाये, तो वह सारे अन्धकार का नाश कर जाता है। उसी तरह से हमारे हृदय में जब प्रेम की रसधारा बहेगी, तो ज्ञान को भी बल मिलेगा। ज्ञान की सार्थकता इसी में है कि वह आत्मा का लक्ष्य निर्धारित कर दे, और प्रेम की सार्थकता इसमें है कि वह लक्ष्य को प्राप्त करा दे। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

सुन्दरसाथ से भूल यही हो रही है कि एक वर्ग तो

ज्ञान को तिलाञ्जलि दे रहा है, दूसरा वर्ग ज्ञान को ही सर्वोपरि मान रहा है। दोनों में सामञ्जस्य स्थापित करने की आवश्यकता है। जैसे— किसी भी पक्षी के दो पंख होते हैं। एक पंख काट दीजिये, दाँया या बाँया, तो भी नहीं उड़ सकता। उसी तरह, यदि केवल ज्ञान में डूबे रहेंगे, केवल शब्दों को पढ़ने में लगे रहेंगे, तो हृदय शून्य हो जायेगा, शुष्क हो जायेगा, और शुष्क हृदय में कभी भी धनी वास नहीं करेंगे। यदि ज्ञान को तिलाञ्जलि देकर केवल प्रेम में ही डूबे रहेंगे, ध्यान में ही डूबे रहेंगे, तो सम्भव है कि चमत्कारों में फँसकर समाज सत्य लक्ष्य से विमुख हो जायेगा, मूल स्वरूप से किनारे हो जायेगा। इसलिये खुदाई इलम की अलग विशेषता है और धनी के प्रेम की अलग विशेषता है। दोनों का मेल ही समाज को सही दिशा में ले चलेगा और आत्मा को जागनी की राह

पर ले चलेगा।

महामति जी वही बात कह रहे हैं कि सुन्दरसाथ जी! नींद की अज्ञानता ने तुम्हें बेसुध किया। बेसुध हो जाने के पश्चात् भी तुम्हें वाणी दी गई। वाणी की अग्नि में तुम जले तो, लेकिन माया की नींद नहीं टल पा रही है, यह कितने आश्चर्य की बात है? जिसने ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश से अपने हृदय के अन्धकार को दूर कर लिया, जिसने अपने ज्ञान-चक्षुओं से देख लिया है कि यह सारा संसार मृग-तृष्णा के समान है, उसके लिये यह संसार क्या होता है—

लगी वाली कछु और न देखे, पिण्ड ब्रह्माण्ड वाको है री नहीं।

ओ प्रेमें खेले पार पिया सों, देखन को तन सागर माहीं॥

वह आत्मा अपने धाम-हृदय में प्रियतम को

बसाकर संसार में रहते हुए भी नहीं रहती है। और जिसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश नहीं है, उसके लिये सारा संसार ही सब कुछ है। उसके लिये कोठी, बंगले, संसार के रिश्ते-नाते ही सब कुछ हैं। उन्हीं को खुश करने में सारे जीवन की उम्र गुजर जाती है, लेकिन ये कभी खुश नहीं हो सकते। और जो आत्मा का प्रियतम है, वह ऐसा है, जो न कभी नाराज होता है और न खुश होता है, वह तो रीझता है।

सूर्य का प्रकाश उस पर भी पड़ता है जो उसको अपशब्द बोलते हैं, और सूर्य का प्रकाश उस पर भी पड़ता है जो उसकी स्तुति करते हैं। जो अक्षरातीत हैं, वे खुश होने और नाराज होने के संकुचित भावों से ऊपर हैं। प्रेम हृदय की पवित्र पुकार है। प्रेम कोई क्रिया नहीं है। प्रेम कोई हृदय का बनावटी व्यवहार नहीं है। प्रेम शाश्वत्

है, अनादि है, सत्य है, चित है, और अक्षरातीत के हृदय के आनन्द का सागर है। यदि हम उसे प्राप्त करना चाहते हैं, तो ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश में अपनी अन्तरात्मा को आलोकित करना होगा, और जैसा ब्रह्मवाणी निर्देशित करती है, अपने हृदय को निर्मल बनाकर इस माया की अज्ञानता के अन्धकार को दूर करना पड़ेगा।

इस कातनी के दृष्टान्त में बार-बार यही प्रबोधित किया जायेगा कि किस तरह से इस संसार में अज्ञानता में फँसे हुए होने के कारण एक सुन्दरसाथ दूसरे सुन्दरसाथ को घृणा की दृष्टि से देख रहा है, और जब परमधाम में जागेंगे, तो वहाँ जाग्रति हो जाने के कारण लगेगा कि हम किससे सिर-फुटव्वल कर रहे थे। कल्पना कीजिये, हम जिस धरातल पर आज चल रहे हैं, उससे ऊँचा धरातल तो संसार के अन्य जीवों का है।

यजुर्वेद के ४०वें अध्याय का एक मन्त्र है—

तत्र कः मोहः कः शोकः यो एकत्वम् अनुपश्यत्।

जो सभी प्राणियों में एक चेतना को देख रहा है, उसके हृदय में मोह और शोक नहीं होगा। हम सुन्दरसाथ को तो विभाजित रहना है। नेपाली सुन्दरसाथ, गुजराती सुन्दरसाथ, पंजाबी सुन्दरसाथ, यू.पी. सुन्दरसाथ, और फिर प्रान्त में भी अलग-अलग शहर-शहर। इसका तात्पर्य क्या है? हमारी आत्मिक दृष्टि नहीं खुली है। हम अपने जीव के इन चर्म-चक्षुओं से ही देखकर सब कुछ निर्धारित करते हैं। अज्ञानता की रात्रि समाप्त हो एवं ज्ञान का प्रकाश फैले, यही मेरी शुभकामना हैं। धाम धनी सभी सुन्दरसाथ के हृदय में ऐसी प्रेरणा पैदा करें कि सब सुन्दरसाथ अपनी पुरानी भूलों को सुधारकर ज्ञान के आलोक में एक दृढ़ व्रत लेकर उठें।

जैसे कि अभी दीपावली का त्योहार आ रहा है, तो हमें चाहिए कि ज्ञान के दीपक जलायें, जिससे कि सारे संसार में कहीं भी अन्धेरा न रहे। हम ब्रह्मवाणी के प्रकाश को लेकर आगे बढ़ें, तो निश्चित है कि संसार हमारा वह सम्मान करेगा जिसके लिये हम भूखे हैं। लेकिन यह भी ध्यान रखिये कि संसार में जितने भी मनीषी हुए हैं, उन्होंने काँटों की सेज को अपने सिर पर धारण किया है। बुद्ध को जहर खाकर मरना पड़ा, दयानन्द सरस्वती को जहर खाकर मरना पड़ा, एक बार नहीं चौदह बार। ईसा मसीह को क्रूस पर टंगना पड़ा। जब मोहम्मद साहिब नमाज पढ़ते थे, विरोधी उन पर पत्थर और जानवरों की खाल फेंक दिया करते थे, उनको भी अपने जीवन के लाले पड़ गये थे। कष्ट तो हर महापुरुष को उठाने पड़े हैं।

इस दीपावली के उपलक्ष्य में हमको प्रतिज्ञा करनी

होगी कि हम अपने घर में मोमबत्तियों के दीपक जलाने के साथ-साथ अपने हृदय में ज्ञान का दीपक भी जलायें और उस ज्ञान के दीपक को लेकर हम सारी मानवता के हृदय में फैले हुए अन्धकार को दूर करने के लिये प्रयास करें। इसी में हमारे सुन्दरसाथ कहलाने की सार्थकता है।



षट्क्रतु

वाला मारा खटरूतना बारे मास,

हां रे तेना अहनिस त्रण ने साठ।

वाला तारी रोई रोई जोई में वाट,

अम ऊपर एवडो कोप कीधा स्या माट॥

वाला मार हुती रे मोटी तारी आस॥

षट्क्रतु १५/१

आप अक्षरातीत धाम के धनी षट्क्रतु की इस वाणी में हमारी आत्मा को विरह की राह पर ले चल रहे हैं। ये षट्क्रतु ग्रन्थ हमें इस जागनी ब्रह्माण्ड में विरह की गहराइयों में डुबोता है।

हिन्दी में एक काव्य है "पद्मावत", जो मलिक

मोहम्मद जायसी का रचा हुआ है। जायसी एक सूफी फकीर थे। उन्होंने जो पद्मावत ग्रन्थ रचा है, उसमें चित्तोड़ की महारानी पद्मावती और वहाँ के राजा रत्न सिंह का प्रेम दर्शाया गया है। पद्मावती सिंहल द्वीप की हैं और रत्न सिंह चित्तौड़ के राजा हैं। दोनों में जो विरह की अवस्था है, इस पद्मावत ग्रन्थ का मुख्य आधार है। इस ग्रन्थ में दर्शाया गया है कि नायिका विरहिनी अपने प्रियतम के विरह में कैसे तड़पती है?

छह ऋतुएँ होती हैं— ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त। इन छह ऋतुओं में अलग-अलग स्थिति होती है। ग्रीष्म ऋतु की मानसिकता कुछ अलग होती है, वर्षा एवं शरद ऋतु की कुछ अलग होती है, और तीनों के मिलन की सन्धि की जो ऋतुएँ हैं— हेमन्त, शिशिर, वसन्त— इनकी अवस्था कुछ अलग

होती है। उस समय, नायिका विरहिनी अपने प्रियतम के विरह में तड़पा करती है। जैसे शरद ऋतु हो, शरद ऋतु में ठण्डी हवा बह रही हो। बसन्त ऋतु हो, चारों तरफ सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हों, तो स्वाभाविक है कि कोई भी प्रेमी या प्रेमिका एक-दूसरे से मिलना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में विरह की अग्नि और प्रज्वलित हो जाती है। वैसे ही, वर्षा ऋतु या सावन के महीने में स्वाभाविक कामना होती है कि हर प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे से मिलें। ये छः ऋतुएँ विदेशों में नहीं हुआ करतीं।

षट्ऋतु के साथ एक और बात जुड़ी हुई है। औरंगज़ेब के जमाने में, इसी जयपुर नगर के थे राजा जय सिंह, जो हिन्दू राजाओं पर हमला तो करते थे, लेकिन राज्य औरंगज़ेब को मिल जाया करता था, इनको कुछ नहीं मिलता था। उनके दरबार में बिहारी जी नामक

एक कवि थे। बिहारी जी ने देखा कि जय सिंह तो हिन्दू होकर हिन्दू राजाओं को औरंगज़ेब के अधीन करते जा रहे हैं। उन्होंने एक दोहा बनाया, दोहा यह था—

स्वारथ सुकृत नहीं श्रम वृथा, देख विहंग विचार।

बाज पराये पानि पर, तू पंछीन न मार।

हे बाज पक्षी! तू बेकार इन कमजोर पक्षियों को मारा करता है, क्योंकि उनका माँस भी तुझको खाने को नहीं मिलता। जिन पक्षियों का तू शिकार करता है, उन्हें शिकारी ले लेता है।

राजा जय सिंह समझ गये कि यह मुझे ही कहा गया है। मैं ही वह बाज हूँ, जो कमजोर हिन्दू राजाओं को हराकर औरंगज़ेब के हवाले कर दिया करता हूँ। उन्हें इतनी शर्मिंदगी हुई कि फिर उन्होंने आक्रमण करना बन्द

कर दिया।

षट्क्रतु के इस आखिरी प्रकरण में भी यही बात कही गई है। आलंकारिक भाव है, जिसमें उद्धव और अक्रूर का प्रसंग है। बालबाई को उद्धव कहा गया है, बिहारी जी को अक्रूर कहा गया है। इसी तरह, बिहारी जी को यदुराय भी कहा गया है। यदि श्री जी सीधे कहते कि बिहारी जी ऐसे हैं या बालबाई ऐसी हैं, तो यह शिष्टाचार की मर्यादा के विपरीत होता, क्योंकि श्री देवचन्द्र जी की गद्दी पर श्री बिहारी जी विराजमान हो चुके थे, और महान पुरुषों की यही शिष्टता होती है कि वे कभी भी अपनी वाणी को विकृत नहीं होने देते।

कल्पना कीजिये, एक-दो कोई सामान्य व्यक्ति आपस में लड़ पड़ें तो कोई बात नहीं, किन्तु यदि प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति ने तेज आवाज में झल्लाकर भी

किसी को बोल दिया, तो पूरी दुनिया में थू-थू हो जाती है। इसी तरह, जिसको समाज में जितनी ऊँची शोभा दी जाती है, उससे यही अपेक्षा की जाती है कि जो भी बात कहनी हो शालीनता से कहे।

देखिये! इस षटक्रतु के प्रकरण में यही बात दर्शायी गई है। जैसा कि मैंने पद्मावत ग्रन्थ का उदाहरण दिया, इसमें नायिका पद्मिनी जिस प्रकार अपने प्रेमी के विरह में तड़पती है, उसी तरह से इन्द्रावती अपने धाम धनी के लिये तड़प रही हैं।

हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूँ।

अधिकतर प्रकरणों के अन्त में यही सम्बोधन है कि धाम धनी! मैं आपके विरह में तड़प रही हूँ। अब इन्द्रावती आत्मा अपने प्रियतम को पुकार रही है। नाम

हमेशा उद्धव का आयेगा, लेकिन सम्बोधन उद्धव के लिये नहीं है। व्रज में श्री कृष्ण उद्धव को भेजते हैं कि हे उद्धव! तुम मेरे मित्र हो। तुम जाकर व्रज में गोपियों को सिखापन दे देना कि वे मेरे विरह में अपना जीवन क्यों बर्बाद कर रही हैं। जब से श्री कृष्ण वृन्दावन को छोड़कर मथुरा गये थे, गोपियाँ और यशोदा सवेरे उस रास्ते पर खड़ी हो जाती थीं जिस रास्ते से वे गये थे। जब तक सूर्यास्त नहीं होता था, तब तक एकटक देखा करती थीं कि इसी रास्ते से कन्हैया गये थे, अब फिर लौट करके अवश्य आयेंगे। सूरदास जी ने बहुत अच्छा पद रचा है—

मधुवन तुम कत रहत हरे,

विरह-वियोग श्याम सुन्दर के, तुम ठाड़े क्यों न जरे।

रे मधुवन! सारा वृन्दावन श्री कृष्ण के वियोग में

दुःखी हो गया है, फिर तुम्हारे पत्ते और फूल क्यों हरे-भरे दिख रहे हैं?

अब यह प्रसंग जाहेरी रूप में व्रज लीला से जुड़ा है, किन्तु बातिनी में जागनी के ब्रह्माण्ड पर घटाया जायेगा।

वाला मारा हुती रे मोटी तारी आस।

गोपियाँ कह रही हैं कि हे कन्हैया! हमें आपसे बहुत अधिक आशा थी। यहाँ कौन कह रही हैं? इन्द्रावती जी की आत्मा अपने धाम धनी सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को सम्बोधित करते हुए कह रही हैं कि हे मेरे धाम धनी! मुझे आपसे बहुत अधिक आशा थी।

जाण्यू अमने मूकसे नहीं रे निरास।

गोपियाँ कह रही हैं कि हे कन्हैया! हमें तो आपसे आशा यह थी कि आप हम लोगों को निराश नहीं करेंगे,

इसलिये आपने उद्धव को हमारे पास भेज दिया है। अब जिस तरह से उद्धव ब्रज में गोपियाँ को सन्देश देने आते हैं कि कन्हैया ने तुम्हारे लिये पाती भेजी है, उसी तरह से बालबाई जी भी सन्देशा लेकर आती हैं कि मिहिरराज! सद्गुरु महाराज तुझे बुला रहे हैं। यही प्रसंग है।

श्री मिहिरराज ने कितने मीठे शब्दों में अपने हृदय की भावना को प्रस्तुत किया है। धाम धनी ने मिहिरराज जी के धाम-हृदय में विराजमान होकर ये सारी बातें कह रखी हैं।

ते तो तमे मोकल्यो तमारो खवास।

खवास कहते हैं दूत को। गोपियाँ कहती हैं कि हे कन्हैया! हम आपके विरह में तड़प रही थीं, तो आपने

हमको समझाने के लिये अपने दूत उद्धव जी को भेजा है।

उद्धव तो मित्र थे, फिर उन्हें क्यों भेजा था? उन्हें श्री कृष्ण के स्वरूप की पूरी पहचान नहीं थी। वे देखते हैं कि मेरे मित्र कृष्ण जी हमेशा उदास रहते हैं। श्री कृष्ण जी से पूछ ही लिया कि आप उदास क्यों रहते हैं? श्री कृष्ण जी ने कहा— क्या कहूँ? मुझे नन्द—यशोदा का प्रेम भूलता नहीं है, न गोपियों का प्रेम भूलता है, और न ग्वाल—बालों का प्रेम भूलता है।

उद्धव बहुत बड़े ज्ञानी थे। उद्धव के मन में आता है कि यह कैसी मोह—माया है। श्री कृष्ण गोपियों के बिना रह नहीं पा रहे हैं, ग्वाल—बालों के बिना नहीं रह पा रहे हैं, नन्द—यशोदा के बिना रह नहीं पा रहे हैं, तो ये आगे चल करके मथुरा का राज कैसे सम्भालेंगे? उन्होंने कहा

कि मित्र! उदास होने की क्या बात है। मैं चल करके ऐसे ज्ञान का उपदेश दूँगा कि वे सब आपको भूल जायेंगी। श्री कृष्ण जी के होठों पर मुस्कुराहट आ गई। उन्होंने कहा कि मित्र का तो काम ही होता है मित्र की समस्या हल करना। तुम जाओ और जल्दी से उनको योग का उपदेश देकर आओ। मैं चिट्ठी भी लिखकर देता हूँ। कन्हैया ने चिट्ठी लिखकर दे दी।

जब गोपियों ने सुना कि यह कन्हैया की भेजी हुई चिट्ठी है, तो सबने उसमें से अपना हिस्सा ऐसा नोंच डाला कि पता ही नहीं कि इसमें लिखा क्या है। क्या लिखा है यह मतलब नहीं। कन्हैया ने हमारे लिये चिट्ठी भेजी है, तो उस चिट्ठी का एक टुकड़ा मेरे हिस्से में जरूर आना चाहिये। उद्धव सिर पकड़कर बैठ गये कि मैं पागलों के समूह में आ गया हूँ, लेकिन जब गोपियों का

प्रेम देखा, तो वहाँ की चरण-धूलि को अपने माथे पर लेकर वापस लौटे।

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

तुम भये बौरे, पाती लेकर आये दौड़े।

हम कहाँ राखे, यहां रोम रोम श्याम है।।

यह प्रसंग बातिनी रूप से जागनी ब्रह्माण्ड में घटेगा। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को सम्बोधित करते हुए श्री इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि मेरे धाम धनी! आपने बालबाई जी को भेजा कि वे मुझे बुलाकर ले आयें।

तेणे आवी बछोडया, सांणसिए मांस।

लेकिन आपके दूत ने आकर मेरे शरीर से माँस खींच लिया है। गोपियाँ कहती हैं कि कन्हैया! तुम हमें

छोड़कर मथुरा चले गये। वहाँ से तुमने योग-साधना का उपदेश देने के लिये उद्धव को भेजा है कि परमात्मा निराकार-निर्गुण है, तो इनकी ये शुष्क बातें हमारे शरीर का माँस नोंच रही हैं।

अब इन्द्रावती की आत्मा कह रही है कि मेरे धाम धनी! आपने अपने सन्देशवाहक के रूप में बाल बाई को भेजा। बाल बाई ने कहा कि सद्गुरु महाराज तुम्हें याद करके दुःखी हो रहे हैं। इसलिये इस बात से मैं ज्यादा दुःखी हूँ। इसी चौपाई में आगे आयेगा—

उधव ते तो अक्रूर पर इंडू रे चढ़ावयो।

गोपियाँ व्यंग्यपूर्वक कहती हैं— हे उद्धव! तू तो हमारे लिये अच्छी बधाई लाया है। हमारे कन्हैया को ब्रज से मथुरा ले जाकर भी अक्रूर जी ने हमें इतना दुःखी नहीं

किया। अक्रूर तो श्री कृष्ण जी को लेकर गये कि तुम्हारे मामा तुम्हें बुला रहे हैं। वह पीड़ा तो हमें सहन हो रही है, लेकिन उद्धव का यह कहना कि तुम श्री कृष्ण जी को बिल्कुल भुला दो और निराकार परमात्मा की योग साधना करो, बिल्कुल सहन नहीं होता। यानि उद्धव के शब्द अक्रूर से भी ज्यादा कष्टकारी हैं।

उसी तरह से जब बिहारी जी जाते हैं, कहते हैं कि मिहिरराज! पिताजी को बुखार लगा है, उन्होंने कुछ अम्बर-कस्तूरी मँगाई है। श्री मिहिरराज सोचते हैं कि चलो दवा दे देते हैं, ठीक हो जायेंगे। लेकिन मिहिरराज जी को सबसे ज्यादा पीड़ा उस बात से पहुँचती है कि सद्गुरु महाराज मेरे कारण दुःखी हो रहे हैं कि इतना बुलाने के बाद भी मिहिरराज आ क्यों नहीं रहे हैं। इसको कहते हैं, "अक्रूर पर इंडू रे चढ़ावयो।" यानि बालबाई के

उन शब्दों ने मिहिरराज के तन से माँस खींचने जैसी पीड़ा पहुँचाई कि धाम धनी के बुलाने पर भी मिहिरराज क्यों नहीं आ रहे हैं और मेरी याद में सद्गुरु महाराज बिलख रहे हैं।

हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूँ।

हे मेरे प्रियतम! मैं आपको बार-बार पुकार रही हूँ।

जैसे कवि बिहारी दास जी के दोहे को जिस भाव में लिया गया है, उसी तरह से आलंकारिक भाव में पात्र का नाम कुछ और है तथा कहा किसी और को जा रहा है। कवि बिहारी दास जी ने सीधा राजा जयसिंह को कुछ नहीं कहा, क्योंकि राजा की नाक कटने का प्रश्न था। राजा लोग उस जमाने में कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे कि कोई हमें सिखापन दे। लेकिन जब घुमाकर कहा

तो जयसिंह को आभास हो गया कि यह सारा कार्य तो मैं ही कर रहा हूँ।

इसी तरह, षट्क्रतु के इस आखिरी प्रकरण में सब कुछ कहा गया है और इसी को पढ़कर बिहारी जी चमके थे। बीतक में प्रसंग आता है—

इत बिहारी जी चमके, सुन खटरूती के सुकन।

बीतक

ए वालो अम विना कोणे न कलियो,

इंद्रावती कहे अमारो धणी अमने मलियो।

षट्क्रतु

अर्थात् श्री राज जी मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं मिले हैं। कहाँ बिहारी जी गादी पर बैठकर यह सोचते थे कि मैं सद्गुरु महाराज का स्वरूप हूँ, मैं ही

साक्षात् अक्षरातीत हूँ, और षट्क्रतु की वाणी यह कह रही है कि इन्द्रावती के सिवाय राज जी किसी को नहीं मिले हैं। भला बिहारी जी यह कैसे सहन कर सकते थे? अब देखें कि इस प्रकरण में किस तरह से इन्द्रावती की आत्मा एक-एक चीज को स्पष्ट कर रही हैं।

रे वाला भलुं थयुं रे भ्रांतडी भागी।

गोपियाँ कहती हैं- "कन्हैया! अच्छा हुआ हमारे मन में संशय था कि आप हम लोगों को बिल्कुल भूल गए हो, लेकिन उद्धव के इधर आने से संशय दूर हो गया।"

उसको जागनी ब्रह्माण्ड में घटाइये। इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं- "अच्छा हुआ मेरे धाम धनी! मेरे मन में संशय था कि आप मुझे भुला चुके हैं। जब आपने बालबाई जी को भेजा, तो मेरे मन का संशय समाप्त हो

गया। अब मेरे दिल से यही आवाज आ रही है कि आप मुझे एक क्षण के लिये भी भूले नहीं थे।"

हारे तारे संदेसडे अमें जागी।

गोपियाँ कहती हैं— "कन्हैया! तुमने उद्धव के हाथ पाती भेजी है। तुम्हारे सन्देश से हम सावचेत हो गई हैं कि मथुरा जाकर भी तुमने हमें भुलाया नहीं है।"

इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं— "मेरे धाम धनी! बाल बाई के आने पर अब मैं सावचेत हो गई हूँ कि आखिर आप मेरे धाम धनी हैं। आपके धाम-हृदय में मेरे धाम धनी विराजमान हैं, तो भले ही कितनी भी चुगली क्यों न हुई, आपने मुझे परित्याग नहीं। इसलिये मुझे बुलाने के लिये आपने बाल बाई जी को भेज दिया।"

हारे एणे वचने रुदे आग लागी।

जब आपने मुझे बुलाया, तो आपसे मिलने के लिये मेरे हृदय में विरह की आग धधक रही है। अब मैं भी चाहती हूँ कि मैं जल्दी आ जाऊँ और आपसे मिलूँ।

हवे अमें जाण्युं चोकस अमने त्यागी।

अब मैं अच्छी तरह से जान गई हूँ तथा इस बात से सावचेत भी हो गई हूँ कि मेरे धाम धनी! आप मुझे पल-पल याद कर रहे हैं। जब किसी के पास सन्देश आता है, तो मन में स्थिरता आ जाती है कि जिसको मैंने समझा था कि वह मुझे भूल चूका है, उसने मुझे भुलाया नहीं है तभी तो मेरे पास सन्देश भेज रहा है।

गोपियों के मन में था कि न जाने उस डगर पर बैठे-बैठे बाट देखते हुए कितने दिन बीत गये, लगता है, कन्हैया मथुरा के महलों में रहकर हमें भूल गये।

उसी तरह, नौ वर्ष की जुदायगी हो चुकी है। अरब से लौटने के पश्चात् दो वर्ष भाई के यहाँ रहे थे, दो वर्ष कलां जी के यहाँ रहे थे। १७०३ में गये थे, अब १७१२ का समय आ गया, नौ वर्षों में कभी प्रणाम भी नहीं हुआ। एक विरह की पीड़ा है और जब बालबाई यह सन्देशा लेकर आती हैं कि सद्गुरु महाराज तुम्हें बुला रहे हैं, तो अहसास हो जाता है, लगता है कि सद्गुरु महाराज ने मुझे दिल से नहीं त्यागा है। यही बात कही जा रही है।

हवे अमे जाण्युं चौकस अमने त्यागी।

मेरे धाम धनी! आपने मेरा उस समय प्रणाम स्वीकार नहीं किया था, किन्तु अब मैं चौकस हो गई हूँ कि आपने दिल से मुझे नहीं त्यागा था।

हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूँ।

मेरे प्रियतम! मैं आपको बार बार पुकार रही हूँ कि आप मेरे हृदय में आकर विराजमान हो जाइए।

शुरु से लेकर आखिर तक, षट्क्रतु की हर पंक्ति हमें झकझोरती है, विरह की राह पर चलने के लिये। वैसे यह ग्रन्थ छोटा सा है, लेकिन इस छोटे से ग्रन्थ में बहुत अधिक गहरे भाव भरे हैं। जिन्होंने विरह को अपने जीवन में उतार लिया, समझ लेना चाहिये कि उन्होंने आधा तो अपने दिल में धनी को बसा ही लिया, क्योंकि विरह ऐसी चीज़ है जो अक्षरातीत को प्रत्यक्ष सामने खड़ा कर देती है।

हब्शा में इन्द्रावती जी की आत्मा ने विरह किया और धनी को साक्षात् पाया। जो विरह की सम्पदा को प्राप्त कर लेते हैं, समझ लेना चाहिये कि उन्होंने धाम धनी को पाने के लिये अपने कदम तेजी से बढ़ा लिये हैं।

जिसके पास विरह और प्रेम नहीं है, उसका हृदय सूना है और उस सूने दिल में राज जी कभी भी आकर विराजमान नहीं हो सकते। षटक्रतु की वाणी हमें विरह की ओर लेकर चलेगी। कलश की वाणी बतायेगी कि प्रेम की पुकार सुनने के पश्चात्, धनी के स्वरूप की पहचान करके, हमें कैसे विरह में डूबकर अपनी आत्मा को जागनी के पथ पर अग्रसर करना है। रास, प्रकाश, षटक्रतु, और कलश का यही अभिप्राय है।

रे ऊधव तूं भली रे वधामणी लाव्यो।

जब कोई प्रियतम से लम्बे समय से बिछुड़ा हो। किसी को किसी से लगाव है, भाई को भाई से लगाव है, मित्र को मित्र से लगाव है, पति का पत्नी से लगाव है, जब उसकी पाती मिलती है, उसका सन्देश मिलता है, तो मन में बहुत खुशी होती है। गोपियों को जब पता चला

कि हमारे कन्हैया का सन्देशवाहक आया है, पाती भी लेकर आया है, तो जिस तरह से नदी में डूबे हुए को तिनके का सहारा मिल जाता है, गोपियों को भी लगा था कि सन्देशवाहक हमारे लिए जीवन का एक स्रोत बनकर आया है।

मिहिरराज भी चार साल से बाट देख रहे हैं कि सद्गुरु महाराज कब मुझे बुलायें और कब मैं उनके चरणों में जाऊँ। कोई सन्देश नहीं आ रहा है। अचानक जब बालबाई आती हैं, तो कहती हैं कि सद्गुरु महाराज तुम्हें बुला रहे हैं। मिहिरराज! क्या तुम चलने के लिये तैयार नहीं हो। इन्द्रावती जी की आत्मा उसी को कहती हैं—

रे ऊधव तूं भली रे वधामणी लाव्यो।

बहुत अच्छा हुआ बालबाई जी कि आप खुशी का

सन्देशा लेकर आई हैं कि सद्गुरु महाराज मुझे बुला रहे हैं।

अमारे काजे सूलीने सांणसियो लई आव्यो।

लेकिन गोपियाँ कहती हैं— "हे उद्धव! तू हमारे कन्हैया का सन्देश तो जरूर लाया है, लेकिन तुम्हारी विचारधारा निराकारवादी है। तुम कहते हो कि कन्हैया को भूल जाओ। परमात्मा निर्गुण है, निराकार है, अनन्त है, अभेद है, और उसे पाने के लिये तुम योग-समाधि में अपने मन को लगाओ। तो हम कहाँ से मन को लगायें।

मन न भये दस-बीस ए उधो, मन न भये दस बीस।

एक हुतो सो गयो श्याम संग, को अवराधे ईश॥

हे उद्धव! मन दस-बीस नहीं होते। हमारा तो एक ही मन है, जो कन्हैया के साथ चला गया। हम कहाँ से

समाधि लगायेंगी। तुम जो श्री कृष्ण को छोड़ने के लिये कहते हो, तो यह हमारे लिये—

सूलीने सांणसियो तमें लई आव्यो।

तुमने फाँसी की रस्सी के समान, माँस नोचने वाली बात कह दी है।"

अब इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं—
 "बालबाई जी! बिहारी जी पहले आये थे। कह रहे थे कि मिहिरराज! तुम्हें तो कोई याद भी नहीं करता। सद्गुरु महाराज तुम्हारा नाम भी नहीं सुनना चाहते। उनकी तबीयत खराब है। मैं कस्तूरी लेने आया हूँ। मैंने कस्तूरी दे दिया। उनकी तबीयत खराब सुनकर मुझे पीड़ा हुई। लेकिन जो आप बता रही हैं कि सद्गुरु महाराज तुम्हारे लिये बिलख रहे हैं। यह सन्देश बिहारी जी के सन्देश से

ज्यादा कष्टकारी है। ये मेरे लिये फाँसी की रस्सी के समान है, क्योंकि मेरे कारण मेरे सद्गुरु महाराज बिलखें, मैं इसको बिल्कुल भी सहन नहीं कर सकता।"

यही प्रसंग यहाँ घट रहा है कि किस तरह से बिहारी जी से भी ज्यादा कष्टकारी बात बालबाई की लगी।

ऊधव तैं तो अक्रूर पर इंडू रे चढ़ाव्यो।

हे उद्धव! अक्रूर हमारे कन्हैया को ले गया था। यहाँ से जाते समय कन्हैया कह गये थे कि चार दिन के बाद हम आ जायेंगे, लेकिन अभी तक कन्हैया नहीं आये। अक्रूर का कन्हैया को ले जाना हमें उतना नहीं खला, जितना कि तुम्हारी ये बातें हमें पीड़ा दे रही हैं। हमें तो यह लगता था कि कन्हैया कहीं पर भी होंगे तो भी हमारे-उनके बीच का अटूट रिश्ता है, लेकिन तुम तो

सीधे तलवार से भी ज्यादा भयंकर वार कर रहे हो। तुम कह रहे हो कि हम श्री कृष्ण को बिल्कुल ही भुला दें और योग-साधना करना शुरू कर दें, समाधियाँ लगाना शुरू कर दें क्योंकि परमात्मा निराकार है। तुम कृष्ण को जानते ही नहीं।

वैसे ही इन्द्रावती जी की आत्मा बालबाई से कह रही हैं कि हे बालबाई! बिहारी जी ने जो बात बताई कि सद्गुरु महाराज तुम्हारा नाम भी लेना नहीं चाहते, तो मुझे ज्यादा कष्ट नहीं हुआ। लेकिन आप कह रही हैं कि सद्गुरु महाराज मेरे लिये बिलख-बिलख कर रो रहे हैं कि कोई जाकर मिहिरराज को बुला लाये, तो आपकी यह बात मेरे लिये सबसे ज्यादा कष्टकारी है। इसको कहते हैं—

ऊधव ते तो अक्रूर पर इंडू रे चढ़ाव्यो।

हे उद्धव! तुमने अक्रूर से भी ज्यादा कष्ट हमें दे दिया।

ऊधव तें दुखडा घणूज देखाडयो।

गोपियाँ कहती हैं, हे उद्धव! तुमने हमें बहुत अधिक दुःख दिया है। गोपियों का श्री कृष्ण जी के साथ अटूट प्रेम है। गोपियाँ संसार को नहीं जानतीं, शरीर की चिन्ता नहीं है, उन्हें तो केवल श्री कृष्ण चाहिये, और यदि कोई कहे कि तुम कृष्ण को ही भूल जाओ तो इस पीड़ा को वे कैसे सहन कर सकती थीं।

इन्द्रावती की आत्मा जानती है कि मेरे धाम धनी युगल स्वरूप सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान होकर लीला कर रहे हैं, और सद्गुरु महाराज को मेरे कारण कोई कष्ट हो, यह मेरी आत्मा किसी भी

कीमत पर सहन नहीं कर सकती, उसी पीड़ा को व्यक्त कर रही हैं। बालबाई जी! आपके शब्दों ने मुझे गहन पीड़ा दी है कि सद्गुरु महाराज मेरे कारण बिलख-बिलख कर रो रहे हैं।

हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूँ।

मेरे प्रियतम! मैं तो आपको बार-बार अन्तरात्मा से पुकार रही हूँ। आप मेरे धाम धनी हैं, तो आकर मेरे धाम-हृदय में विराजमान हो जाइये।

हब्शा में इन्द्रावती जी ने इन सारे प्रसंगों पर दृष्टिपात किया है। कैसे अरब से लौटते हैं, प्रणाम स्वीकार नहीं होता है, दो साल वहीं नौतनपुरी में बने रहते हैं, न सद्गुरु महाराज बुलाते हैं, न ये जाते हैं। फिर कला जी के यहाँ दो साल बीत जाते हैं। सारा घटनाक्रम

मानो मस्तिष्क में उमड़ रहा है। अन्दर इन्द्रावती की आत्मा विरह के आँसू बहा रही है कि मेरे धाम धनी!

आपोपूं ज्यारे नाखिए आंख मीची, त्यारे तमने आवे सरम।

क्या जब मेरी यह सुरता शरीर छोड़ जायेगी, तब आपको शर्म आयेगी? जिसको शर्म न आये, उसको क्या कहते हैं, बेशर्म। प्रेम के मीठे शब्दों में अक्षरातीत को बेशर्म कहा जा रहा है। बेशर्म कहना गाली भी है और बेशर्म एक बहुत प्रेम का शब्द है कि मैं आपके विरह में तड़प रही हूँ और आप मुझे दीदार नहीं दे सकते।

रोम रोम सूली सुगम, खण्ड खण्ड खाण्डा धार।

पूछ पिया दुख तिन को, जो तेरी विरहिन नार।।

सूली कहते हैं भाले को, भाले से भिन्न एक बरछी होती है। इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही है कि मेरे

धाम धनी! यदि मेरे शरीर के रोम-रोम में बरछी चुभोई जाये, तो उतनी पीड़ा नहीं हो सकती, जितनी पीड़ा आपके विरह में तड़पने पर हो रही है। तात्पर्य क्या है? यह विरह हमें संसार से हटाकर धनी की तरफ ले जा रहा है।

इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि मेरे धाम धनी! मैं तो बार-बार आपको पुकार रही हूँ। आप आइये और मेरे धाम-हृदय में साक्षात् विराजमान हो जाइये। यदि हम षट्क्रतु की वाणी को गहराई से आत्मसात् करें, तो ज्ञान की शुष्कता समाप्त हो जाती है, संसार की आसक्ति भी समाप्त हो जाती है, केवल ऐसा लगता है कि मेरा प्रियतम मेरी आँखों के सामने ही बना रहे।

रे ऊधवड़ा तू एटलू जाण निरधार।

अब गोपियाँ उधव को फटकार रही हैं कि रे उद्धव! तुम इस बात को अच्छी तरह से समझ जाओ। अब इन्द्रावती जी की आत्मा बालबाई जी को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि हे बालबाई जी! आप इस बात को अच्छी तरह से समझ जाइये।

ऊधव तूने नथी रे बीक करतार।

गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! तुझे परमात्मा का नाममात्र भी डर नहीं है। तू जो हमको कन्हैया से अलग कर रहा है, तुझे डर नहीं है कि किसी विरहिनी को उसके प्रेमी से अलग करने का परिणाम क्या होता है?

इन्द्रावती जी की आत्मा कहती हैं कि बालबाई जी! आपको जरा भी अपने गुनाहों का डर नहीं है। पहले तो आपने चुगली लगाई कि मैंने कान्हजी भाई का सारा धन

हड़प कर लिया। विशेष सफलता नहीं मिली, तो आपने पुनः चुगली कर दी कि सद्गुरु महाराज यदि आपने प्रणाम स्वीकार कर लिया तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। इसके पश्चात् भी आपको सन्तोष नहीं हुआ, तो आपने गादीवाद का सिद्धान्त प्रस्तुत कर दिया कि सद्गुरु के पश्चात् उनके पुत्र को ही गादी का अधिकार होता है। इस प्रकार आपको अपने अपराधों का कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

एणी मते पामीस नहीं तू पार।

आपका मन चंचल है। क्षण भर में आप नाराज़ हो जाती हैं, तथा क्षण भर में आप खुश भी हो जाती हैं। जब मैं अरब से आ रहा था, तो बिहारी जी और गांगजी भाई के बेटे के बहकावे में आपके मन में संशय पैदा हो गया कि मैंने धन ले लिया है। उसमें आपको सफलता नहीं मिली, तो आपने सद्गुरु महाराज पर दबाव दे दिया कि

प्रणाम स्वीकार नहीं करना, और इसके पश्चात् उससे भी आपको सन्तोष नहीं मिला। बिहारी जी महाराज को आपने गादी पर बैठाया कि गुरुपुत्र को ही गादी पर विराजमान होने का अधिकार होता है, तथा जो गादी पर विराजमान होता है वह सद्गुरु का ही स्वरूप होता है, अक्षरातीत का स्वरूप होता है।

एणी मते पामीस नहीं तूं पार।

यह आपकी बुद्धि चंचल है। आपने जो गादीवाद का सिद्धान्त थोपा है, वंशवाद के आधार पर, इस बुद्धि से आप इस भवसागर से पार नहीं पाओगी।

तूं पण तारा धणीसो विछडीस आवार।

गोपियाँ कह रही हैं कि हे उद्धव! यह जो तुम बार-बार निराकारवाद, योग का ज्ञान बघार रहे हो, इससे तो

तुम भी भवसागर से पार नहीं उतरोगे। योग का उपदेश देकर हमारे घावों पर तुम नमक छिड़क रहे हो। हम गोपियाँ भी कह रही हैं कि उद्धव! तुम भी प्रेम रस से दूर रहोगे।

अब इसको इन्द्रावती जी क्या कह रही हैं। हे बालबाई जी! आपने पहले मुझे सद्गुरु महाराज के चरणों से दूर किया, बिहारी जी महाराज को गादी पर बैठाया। लेकिन मैं यह भी बात कहती हूँ कि सद्गुरु महाराज न तो उस गादी में बैठे हैं, न बिहारी जी महाराज के अन्दर बैठे हैं, और उनका अनुसरण करके आप भी अपने धनी से अलग हो जाओगी, क्योंकि सद्गुरु महाराज बिहारी जी के अन्दर बैठे ही नहीं और यदि आप सोचती हैं कि बिहारी जी के पीछे लगने से सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का दर्शन हो जायेगा तो यह कभी भी सम्भव नहीं है। ब्रज में

जो घटनायें हुई हैं, जागनी ब्रह्माण्ड के सन्दर्भ में वही बातें घटित हो रही हैं। इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं—

हो श्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूँ।

मेरे धाम धनी! आप मेरे धाम—हृदय में विराजमान हो जाइये।

रे ऊधव राख तू कने तारू डापण।

गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! तुम अपनी चतुराई अपने पास रखो। हमें तुम्हारे ज्ञान के उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है। हम जिस हाल में हैं, हमें उसी हाल में रहने दो।

इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही है कि हे बालबाई जी! आप हर चीज में आगेवान बनती हैं, चाहे मैं अरब से

आ रहा था या कलां जी के यहाँ राजकीय सेवा में था, उसमें भी आप आगेवान बनी। अब आपने सारे समाज के सामने यह सिद्धान्त प्रस्तुत कर दिया है कि पिता के बाद पुत्र ही गद्दी का अधिकारी होता है। आपने वंशवाद चला तो दिया, किन्तु इसका परिणाम यह है कि बिहारी जी महाराज निरंकुश हो गये। हे बालबाई जी! आप अपनी चतुराई को अपने पास ही रखें।

पिउजी मूकूं अमें नहीं एवी पापण।

गोपियाँ कह रही हैं कि हम इतनी पापिन नहीं हैं कि अपने प्रियतम को छोड़ दें।

इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही है कि हे बालबाई जी! हम इतने पापी नहीं हैं कि अपने प्रियतम को भुला दें। तात्पर्य क्या है? एक तरफ बिहारी जी महाराज गद्दी

पर बैठकर यह दावा कर रहे हैं कि गद्दी पर बैठने मात्र से वे अक्षरातीत के स्वरूप हैं। हब्शा में वाणी उतरती है। यदि सब सुन्दरसाथ को परमधाम की वाणी न मिले, तो कोई भी जाग्रत नहीं हो सकता। इन्द्रावती की आत्मा यही व्यथा कर रही है कि हम इतने पापी नहीं हैं कि हम अपने धाम धनी को भुला दें, यानि धाम धनी को तो हमने अपने धाम-हृदय में बसा रखा है।

ऊपर तले अर्स न कहा, अर्स कहा मोमिन कलूब।

ठीक है कि परमधाम हृद, बेहृद, एवं अक्षर के परे है, लेकिन इस संसार में यदि कोई परमधाम है तो वह मोमिन का दिल है। हम हीरे-मोतियों के मन्दिर बना सकते हैं, संगमरमर के फर्श बना सकते हैं, मोती जड़वा सकते हैं, लेकिन अक्षरातीत की बैठक कहाँ होती है—

कलूबे मोमिनन अर्से मनस्त।

मोमिन का दिल ही धनी का अर्श होता है। जहाँ निसबत, वहाँ हक। यही बात इन्द्रावती जी की आत्मा बताना चाह रही हैं—

पिउजी मूकूं अमें नहीं एवी पापण।

मैं अपने धाम धनी को भुला दूँ, ऐसा किसी भी कीमत पर सम्भव नहीं है। हमारा स्तर इतना नहीं गिर गया है कि यदि हम गादी पर मत्था नहीं टेकने जायेंगे, तो राज जी हमसे दूर हो जायेंगे। बिहारी जी महाराज को आपने गादी पर विराजमान किया है, लेकिन जिसकी गादी है, उनको तो हमने अपने दिल में साक्षात् ही बसा रखा है। वे पल-पल हमारे साथ हैं। यही बात इन्द्रावती जी इस चौपाई द्वारा सन्देश दे रही हैं।

ताता नेम दिए वली वली तापण।

आपने बार-बार हमें ताप दिया है, पीड़ा दी है। कभी आप चुगली करती हो, कभी आप बुलाकर ले जाती हो, कभी आप गादीवाद के अन्धेरे में फँसाती हो। बालबाई जी! आप के कार्यों से मेरी आत्मा को बहुत अधिक पीड़ा पहुँची है।

गोपियाँ कह रही हैं कि उद्धव हमारे प्रियतम कन्हैया की चिठ्ठी लेकर तो आये, लेकिन आपके सारे प्रवचन-उपदेश हमारे और आपके सिद्धान्तों के विपरीत हैं। गोपियाँ कहती हैं—

श्याम तन श्याम मन, श्याम है हमारे तन।

आठों जाम उधो, हमें श्याम ही सों काम है।

श्याम हिये श्याम पिये, श्याम ही सों जियें॥

उद्धव तुम भयें बौरे, पाती लेकर आये दौरे।

हम योग कहां रखें, यहां रोम रोम श्याम है॥

गोपियाँ स्पष्ट कह देती हैं— श्याम ही हमारे जीवन हैं, श्याम ही हमारे प्राण हैं। उद्धव, तुम्हारे इस योग को हम कहाँ रखें? लगता है तुम पागल हो गये हो, जो व्रज में योग का उपदेश लेकर आये हो।

यहाँ इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि हे बालबाई जी! आप मुझे प्रेरित कर रही हैं कि मैं बिहारी जी पर ईमान लाऊँ, उनकी गादी पर ईमान लाऊँ। जिस पर ईमान दिलाने की बातें कर रही हैं, उस अक्षरातीत को तो मैंने दिल में बसाकर रखा है। इस प्रकरण के आखिर में श्री इन्द्रावती जी साफ कह रही हैं कि मेरे प्रियतम राज जी किसी को नहीं मिले और प्रकाश में

स्पष्ट कहेंगी—

सई तूं मेरी बाई रतन, मोहे मिले छबीले लाल।

करी मुझे सोहागिनी, अब मैं भई निहाल॥

मेरे धाम धनी साक्षात् मुझे मिल गये हैं और कलश में तो स्पष्ट कह दिया जायेगा। इसी कलश को पढ़कर बिहारी जी ने कहा था कि यह कलश नहीं क्लेश है, क्योंकि कलश में कहा है—

इन्द्रावती के मैं अंगे संगे, इन्द्रावती मेरा अंग।

जो अंग सौंपे इन्द्रावती, ताये प्रेमें रमाडूं रंग॥

सुख देऊं सुख लेऊं, सुखे जगाऊं साथ।

इन्द्रावती को उपमा, मैं दर्ई मेरे हाथ॥

यानि जागनी ब्रह्माण्ड की सारी शोभा मैंने महामति

इन्द्रावती को दे रखी है और जब तक यह ब्रह्माण्ड रहेगा इन्द्रावती के सिवाय यह शोभा किसी और को नहीं मिल सकती। वही बात इन्द्रावती जी की आत्मा षट्क्रतु के इस प्रकरण में कह रही हैं कि हे बालबाई जी! आपने अपनी चतुराई से हमें बार-बार पीड़ा दी है।

सखियों हवे समझया संदेसडे आपण।

गोपियाँ कह रही हैं कि हे सखियों! हमने उद्धव के सन्देश से ही सब कुछ समझ लिया है कि ये उद्धव हमें कन्हैया से दूर करके अलग राह पर भटकाना चाहते हैं।

इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि हे बालबाई जी! आपने जो वंशवाद का सिद्धान्त गादीवाद के नाम पर थोप दिया है, इससे मैं अच्छी तरह से अवगत हूँ। मेरा धाम धनी जो सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर

विराजमान था, वह मेरे धाम-हृदय में विराजमान हो गया है। अब आप गादीवाद की महत्ता कितनी भी बताइये, मैं उस पर अमल करने वाली नहीं हूँ। अब मैं समझ गई हूँ कि आप क्या कहना चाहती हैं।

हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूँ।

मेरे धाम धनी! मेरी आत्मा तो आपको प्रेम की गहराइयों से चाहती है और आप मेरे धाम-हृदय में आकर विराजमान हो जाइये। मैं यह चाह रही हूँ कि आप एक पल की देरी किये बिना मेरे धाम-हृदय में विराजमान होइए। उस समय इन्द्रावती जी के अन्दर से ही रास, प्रकाश, एवं षट्क्रतु की वाणी उतर रही है और उनके अन्दर धाम धनी विराजमान हैं। यह तो छठे दिन की लीला में सब सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये कहा जा रहा है कि आने वाला सुन्दरसाथ छठे दिन की

लीला में इन्द्रावती जी की तरह विरह की राह पर चले और अपने दिल को अर्श बनाये। राज जी न किसी वृक्ष में आ सकते हैं, न चित्र में आ सकते हैं, न किसी जड़ दीवार में बस सकते हैं। आत्मा का सम्बन्ध अनादि है।

मोमिन दिल अर्श कह्या, जामे अमरद हक सूरत।

मोमिन के दिल में धाम धनी साक्षात् बैठे हैं। वाणी के ज्ञान के प्रकाश से हम अपने दिल को धनी का अर्श बनायें। ज्ञान की ज्योति जलायें, प्रेम और विरह की रसधारा से युगल स्वरूप को मजबूर करें कि वे धाम दिल में बसें।

सेहेरग से हक नजीक, आड़ो पट न द्वार।

खोली आंखें समझ की, देखती न देखे भरतार॥

यदि हमारे ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, तो लगेगा कि

एक पल भी राज जी हमसे दूर नहीं हैं। आवश्यकता है, वाणी के ज्ञान की गहराइयों में डूबने की और अपने धाम-हृदय में धनी को खोजने की। जिन्होंने अपने धाम दिल में धनी को पेहेचान लिया, उनको इधर-उधर कहीं भी भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। षट्क्रतु की वाणी हमें यही सिखापन दे रही है। जैसे-जैसे क्रम बढ़ता जायेगा, शरीयत-तरीकत से हटाकर धाम धनी का ज्ञान हमें हकीकत और मारिफत की तरफ ले जायेगा और ऐसा लगेगा हमारे धाम दिल में ही सब कुछ है। हम अपने दिल में धनी को बसायें, जो एक पल के लिये चाहकर भी हमसे दूर नहीं हो सकते।



कलश

आप अक्षरातीत धाम के धनी इस कलश की वाणी द्वारा कहला रहे हैं—

निज बुध भेली नूर में, अग्या मिने अंकूर।

दया सागर जोस का, किन रहे न पकरयो पूर॥

कलश हिंदुस्तानी २४/१

अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि भी यह बाट देख रही थी कि कब सच्चिदानन्द परब्रह्म अपने परमधाम की निजबुद्धि का वह ज्ञान अवतरित करें, जिसको आत्मसात् करके मैं परमधाम की उस लीला के वास्तविक रस को जान सकूँ। रास में प्रेम का विलास देखा था, लेकिन प्रेम का विलास क्या है, मारिफत में यह नहीं जान सके थे।

धनी मेरे ध्यान तुमारे, बैठे बुध जी बरस सहस्र चार।

छ सै साठ बीता समे, दुनिया को भयो आचार॥

रास रात्रि के पश्चात् विक्रम सम्वत् १७३५ तक इस ब्रह्माण्ड को हुए चार हजार छह सौ साठ वर्ष व्यतीत हो गये थे और तब तक अक्षर ब्रह्म की आत्मा बाट देख रही थी कि निजबुद्धि का ज्ञान अवतरित हो।

मेरी संगतें ऐसी सुधरी, बुध बड़ी हुई अछर।

तारतमें सब सुध परी, लीला अन्दर की घर॥

आज दिन तक जाग्रत बुद्धि का प्रकाश ही दुनिया में नहीं आया था। धनी के जोश जिबरील द्वारा संसार में अखण्ड का ज्ञान दिया जाता रहा है। जाग्रत बुद्धि उतरी, तो वह भी बाट देख रही है। श्री प्राणनाथ जी को बुद्ध अवतार नहीं कह सकते। बुद्ध अवतार अलग है,

प्राणनाथ जी अलग हैं।

बुध जी को असराफील, विजयाअभिनन्द इमाम।

जिसको हम प्राणनाथ कहते हैं, जो आत्मा का प्रियतम है, उनको विजयाभिनन्द कह सकते हैं, विजय जिसका अभिनन्दन करें। कतेब की भाषा में जो असराफील फरिश्ता है, उसी को वेद की भाषा में जाग्रत बुद्धि कहते हैं। जाग्रत बुद्धि तो विजयाभिनन्द श्री प्राणनाथ जी के चरणों की आकांक्षी है। उनकी संगति से उस जाग्रत बुद्धि को भी परमधाम की लीला की खबर पड़ी। जाग्रत बुद्धि (असराफील) का ठिकाना सत् स्वरूप में है। जबकि प्राणनाथ कौन है?

श्री प्राणनाथ निजमूल पति।

जो हमारी आत्मा का प्रियतम है, वह है प्राणनाथ।

कहे सुन्दरबाई अक्षरातीत से, खेल में आया साथ।

दोए सुपन ए तीसरा, देखाया श्री प्राणनाथ॥

जो सभी आत्माओं का प्रियतम है, वही प्राणनाथ है। अक्षर ब्रह्म के हृदय में जैसे-जैसे परमधाम की लीला का रस समाता जायेगा, वैसे-वैसे यह सारे ब्रह्माण्ड के लिये भी कल्याणकारी हो जायेगा। कल सवेरे सनन्ध की चर्चा होगी, जिसमें कहा जायेगा-

अक्षर के दो चसमें, नहासी नूर नजर।

बीसा सौ बरसों कायम, होसी वैराट सचराचर॥

जब जागनी लीला के एक सौ बीस वर्ष पूर्ण होंगे, तब अक्षर के दोनों फरिश्ते, जबरईल और असराफील, नूर की नजर में नहायेंगे, यानि तारतम वाणी के रस में सराबोर हो जायेंगे। तारतम वाणी के रस में सराबोर होने

का मतलब खिलवत, परिक्रमा, सागर, श्रृंगार का रसपान करके अक्षर के दोनों फरिश्ते भी परमधाम की लीला के उस रस में डूब जायेंगे, जिसमें अक्षर की आत्मा आज तक नहीं डूब पायी थी। इस कारण, जो रस अक्षर के हृदय में आ जायेगा, वह अखण्ड होने वाले सारे प्राणियों के लिये कल्याणकारी हो जायेगा। यदि अक्षर के हृदय में वह रस नहीं आ पायेगा, तो आठों बहिश्त वालों को कैसे आनन्द मिल पायेगा?

आज आवश्यकता है कि हम ब्रह्मवाणी की ज्योति को संसार में सर्वत्र फैलायें। ब्रज की लीला में जहाँ तक लीला हुई, वहाँ तक के जीवों को अखण्ड होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

बैठे बातें करे बका अर्स की, सो भिस्त भई बैठक।

दुनी बातें करे दुनी की, आखिर तित दोजक।।

जहाँ ब्रह्मलीला होगी, जागनी की लीला फैल जायेगी, निश्चित है कि वहाँ के जीवों को सत् स्वरूप को पहली बहिस्त में भी जाने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

इस जागनी के ब्रह्माण्ड में जो शरीयत-तरीकत को छोड़कर हकीकत और मारिफत की राह अपनायेगा, अर्थात् यदि कोई कोरा से कोरा जीव भी ब्रह्मसृष्टियों वाली रहनी अपना लेता है, तो उसको भी श्री राज जी का साक्षात् दर्शन हो जायेगा, पच्चीस पक्षों का दर्शन हो जायेगा, और वह जीव भी सत् स्वरूप की पहली बहिस्त का अधिकारी हो जायेगा। सागर ग्रन्थ में स्पष्ट कहा है—

जो कोई हक के हुकम का, ताए जो इलम करे बेसक।

लेवे अपनी मेहेर में, तो नेक दीदार कबूं हक।।

लेकिन उसे श्यामा जी एवम् सखियों का दर्शन नहीं होगा क्योंकि निसबत के बिना श्यामा जी और सखियों का दर्शन किसी को नहीं हो सकता। जब अक्षर ब्रह्म को नहीं हो सकता, तो ईश्वरी सृष्टि को भी नहीं हो सकता। हाँ, राज जी के दर्शन का अधिकार सबको है।

जैसे देश का प्रधानमन्त्री सबका है, किन्तु उनकी पत्नी सबकी नहीं है। उसी तरह से जो जीव वाणी के ज्ञान के प्रकाश में आ जायेगा, निश्चित है कि वह अखण्ड मुक्ति का अधिकारी बनेगा। अपनी आध्यात्मिक शक्ति को जाग्रत करके शरीयत और तरीकत को अपनाने वाला जहाँ सातवीं बहिश्त में पहुँचता था, प्रेम की राह पर

चलकर वह सत्स्वरूप की प्रथम बहिश्त (मुक्ति स्थान) को प्राप्त होगा।

जिन किन राह हक की, लई सांच से सरियत।

भिस्त होसी तिनों तीसरी, सच्चे ना जलें कयामत॥

किन जीवे संग किया, ताको करुं न मेलो भंग।

सो रंगे भेलूं वासना, वासना सत को अंग॥

धनी कहते हैं कि जो जीव मेरी संगति में आ जायेगा, मेरे प्रेम में डूब जायेगा, उसको मैं अपने साथ सारा आनन्द दूँगा, अर्थात् सत् स्वरूप की बहिश्त का सारा आनन्द उसको मिल जायेगा।

आज यह सोचने का समय नहीं है कि परमधाम में कितनी आत्मायें हैं? आज केवल इस विषय का चिन्तन करना है कि हम ब्रह्मवाणी का प्रकाश कितने प्राणियों

तक पहुँचा सकते हैं। उनके अन्दर परमधाम की आत्मा है या नहीं, ईश्वरी सृष्टि है या नहीं, यह गणना करने का अधिकार हमारा नहीं है। गणना करने की शोभा तो केवल श्री महामति जी को है या मूल स्वरूप अक्षरातीत को। आज सारे सुन्दरसाथ का उत्तरदायित्व है कि वे ब्रह्मवाणी के प्रकाश को सर्वत्र फैलाएँ। अक्षर ब्रह्म के फरिश्ते भी इस ब्रह्मवाणी के लिये बाट देखते रहे थे। अब कहते हैं—

निज बुध भेली नूर में।

जाग्रत बुद्धि और निजबुद्धि दोनों अलग-अलग हैं। अक्षर ब्रह्म के पास जाग्रत बुद्धि है। अक्षर ब्रह्म जिस अक्षर धाम में हैं, वह भी परमधाम के अन्दर आता है, लेकिन उनकी लीला योगमाया के ब्रह्माण्ड में है। योगमाया के ब्रह्माण्ड की भूमिका अद्वैत है। अक्षर ब्रह्म की यह लीला

सर्वत्र होती है, अव्याकृत से सत् स्वरूप तक, लेकिन वहाँ स्वलीला अद्वैत नहीं है। स्वलीला अद्वैत का तात्पर्य यह है कि अक्षरातीत ही सभी रूपों में लीला कर रहे हैं। धनी ने क्या कहा था—

तुम कूदत हो अर्स में, अपने इस्क के बल।

तब सुध जरा न रहे, रहे ना एह अकल॥

"एह अकल" का तात्पर्य क्या है? परमधाम की जो बुद्धि है, वह है प्रेममयी बुद्धि। ऐसा नहीं है कि परमधाम में पागलों की जमात है। परमधाम में निजबुद्धि है। अक्षरातीत को रिझाने में जो बुद्धि प्रयुक्त होती है, उसको कहते हैं निजबुद्धि। जो सत्य का निर्णय करती है, उसको कहते हैं जाग्रत बुद्धि, और उस जाग्रत बुद्धि का प्रतिबिम्बित स्वरूप स्वप्नमयी बुद्धि है।

अक्षर ब्रह्म के मन का स्वरूप अव्याकृत है, जिसमें स्थित सुमंगला पुरुष ही मोह सागर में प्रतिबिम्बित होकर आदिनारायण के रूप में दृष्टिगोचर होता है। आदिनारायण की बुद्धि स्वप्नमयी है क्योंकि उनका स्वरूप ही अक्षर ब्रह्म के मन का स्वप्न है। किन्तु ध्यान रखना होगा कि इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में आदिनारायण के सिवाय कोई ऐसा भी नहीं है, जो अपनी शत प्रतिशत बुद्धि का उपयोग करे।

बड़ा से बड़ा प्रतिभाशाली व्यक्ति भी पन्द्रह प्रतिशत से ज्यादा अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं कर पाता। यदि कोई भी व्यक्ति अपनी बुद्धि का शत-प्रतिशत उपयोग कर ले, तो वह दुनिया के सभी पुस्तकालयों की पुस्तकें कण्ठस्थ कर सकता है। सपने की बुद्धि की तो यह महिमा है। हमें जाग्रत बुद्धि का अनुपम ज्ञान मिला है। न

तो सभी को जाग्रत बुद्धि मिली है और न निज बुद्धि मिली है।

निज बुध आवे अग्यायें, तो लो न छूटे मोह।

आतम तो अन्धेर में, सो बुध बिना बल न होए॥

जिस दिन हमें जाग्रत बुद्धि मिल जायेगी, जिस दिन हमें निज बुद्धि मिल जायेगी, उस दिन हमें दूसरों से चर्चा सुनने या अर्थ समझने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। हमें जाग्रत बुद्धि का ज्ञान मिला है, निज बुद्धि का ज्ञान मिला है, उसको हम अपनी स्वप्निक बुद्धि से पढ़ते हैं। हमारे अन्दर निज बुद्धि आ सकती है, जाग्रत बुद्धि आ सकती है, यदि आप जाग्रत बुद्धि के स्वामी, निज बुद्धि के स्वामी, उस युगल स्वरूप को दिल में बसा लें। यदि आप उस प्राणवल्लभ अक्षरातीत को दिल में नहीं बसाते

हैं, तो केवल पढ़ने मात्र से जाग्रत बुद्धि कभी भी आपके हृदय में प्रवेश नहीं कर सकती।

यदि सब सुन्दरसाथ के पास जाग्रत बुद्धि है, तो सभी वाणी का अर्थ क्यों नहीं करते? इसका कारण यह है कि उन सुन्दरसाथ ने अपने दिल में उस प्रियतम को नहीं बसाया, जिसके हृदय के इल्म के सागर की एक बूँद ने इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड करने की बख्शीश कर दी।

एक बूँद आया हक दिल से, तिन कायम किये थिर चर।

इन एक बूँद की सिफत देखियो, ऐसे हक दिल में कई सागर॥

अक्षरातीत के दिल में इल्म के अनन्त सागर हैं और उन अनन्त सागरों की एक बूँद महामति जी के दिल में आई जो स्वयं सागर बन गई। कल्पना कीजिये, जो अनन्त ज्ञान का सागर है, उसी से यदि हम पीठ मोड़े

रहें, तो हमारे अन्दर निज बुद्धि कहाँ से आयेगी। इसलिये सबसे पहली आवश्यकता है, इल्म और इश्क को साथ-साथ चलाना चाहिए।

तराजू का पलड़ा दोनों तरफ बराबर होना चाहिये। यदि हम केवल शब्दों को रटेंगे, तो हमारा जीवन शुष्कता से भर जायेगा, और यदि हम वाणी के ज्ञान को तिरस्कृत करेंगे, तो हो सकता है कि हम कोई ऐसी पगडण्डी पकड़ लें जो हमें अन्धेरे और खाई की तरफ ले जा सकती है। इसलिये महामति जी कह रहे हैं कि मेरे धाम-हृदय के अन्दर—

निज बुध भेली नूर में।

तारतम ज्ञान का जो प्रकाश है, उसके साथ निज बुद्धि भी मिल गई है। निज बुद्धि क्या है? रास की वाणी

जाग्रत बुद्धि की वाणी है। प्रकाश गुजराती, षट्क्रतु, एवं कलश गुजराती की वाणी जाग्रत बुद्धि की वाणी है। सनन्ध, किरन्तन, खुलासा जाग्रत बुद्धि की वाणी है। खिलवत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार के साथ कुछ विशेष बातें जुड़ी हुई हैं।

तारतम का जो तारतम, अंग इन्द्रावती विस्तार।

पैए देखाए पार के, तिन पार के भी पार॥

तारतम का तारतम क्या है? तारतम क्षर से लेकर परमधाम की पहचान कराता है, लेकिन तारतम के तारतम का विस्तार श्री इन्द्रावती जी के धाम-हृदय में हुआ।

विक्रम सम्वत् १६३८ में श्री देवचन्द्र जी का जन्म होता है और उसके पश्चात् ९९ साल तक श्यामा जी

परदे में रहीं, जिसको कयामतनामा की वाणी में कहा है—
बरस निन्यानबे लो रहीं हुरम।

जब सनन्ध की वाणी उतरती है, प्रकाश हिन्दुस्तानी की वाणी उतरती है, कलश हिन्दुस्तानी की वाणी उतरती है, उस समय श्यामा जी की बादशाही (स्वामित्व) के चालीस वर्ष शुरू हो जाते हैं। और जब श्यामा जी की आत्मा पूरी तरह से जाग्रत होती है, उसके पश्चात् खिलवत, परिकरमा, सागर, और श्रृंगार की वाणी उतरती है। इन चारों किताबों को तारतम का तारतम कहते हैं।

निज बुद्धि की लीला यहाँ से शुरू होती है, जब अक्षरातीत युगल स्वरूप महामति जी के धाम—हृदय से परमधाम का रस सब सुन्दरसाथ के लिये अवतरित

कराते हैं। जब तक खिलवत, परिकरमा, सागर, और श्रृंगार का ज्ञान अवतरित नहीं हुआ, तब तक किसी की भी आत्मा जाग्रत नहीं हो सकती थी। इसलिये श्री देवचन्द्र जी के तन से जिन तीन सौ तेरह सुन्दरसाथ ने तारतम लिया था, देह-त्याग के पश्चात् वे पुनः माया में फँस गये।

जो लों मुतलक इल्म न आखिरी, तो लो क्या करे खास उमत।

आखिरी इल्म क्या है? यही तारतम का तारतम, यानि खिलवत, परिकरमा, सागर, और श्रृंगार। इन्हें आत्मसात किये बिना खासलखास ब्रह्मसृष्टि भी इस संसार में कुछ नहीं कर पाएगी, यानि उसकी आत्मा जागृत नहीं हो पायेगी। आत्मा के जाग्रत होने के लिये क्या आवश्यक है? युगल स्वरूप की छवि का दिल में बसना। श्रृंगार में एक प्रकरण ही आता है, "आतम का

फरामोसी से जागे का प्रकरण।" इस प्रकरण की पहली चौपाई है—

ऐसा आवत दिल हुकमें, यों इस्के आतम खड़ी होए।

जब हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए।।

ऐसा नहीं है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी चितवनि नहीं कराते थे। उनके द्वारा प्रतिदिन युगल स्वरूप का श्रृंगार वर्णन होता था, प्रतिदिन सुन्दरसाथ को चितवनि करायी जाती थी। किन्तु खिलवत, परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार में जो अक्षरातीत के दिल के बातिनी भेद खोले गये हैं, वे उस समय तक वाणी के अवतरित न होने से सुन्दरसाथ को विदित नहीं थे। इसलिये सुन्दरसाथ ने श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के साथ ही समझ लिया कि हमारे धाम धनी तो हमें

छोड़कर परमधाम चले गये।

उस समय की जागनी में निसबत की पूरी पहचान नहीं हो सकी थी। वहदत का सम्बन्ध क्या है, इसकी पूरी पहचान नहीं थी। खिलवत की पूरी पहचान नहीं थी। अब इस जागनी के ब्रह्माण्ड में जो ब्रह्मवाणी उतरी है, उसके द्वारा सुन्दरसाथ को सारी पहचान हो रही है। महामति जी कहते हैं—

निज बुध भेली नूर में।

मेरे अन्दर से जो तारतम ज्ञान का प्रकाश अवतरित हो रहा था, इसके साथ ही अब निज बुद्धि भी जुड़ गई है, जाग्रत बुद्धि तो है ही। पाँच शक्तियों की जब गणना की जाती है, तो उसमें बुद्ध मूल वतन है। **"धनी जी का जोश आतम दुल्हिन।"** जोश क्या है? जिबरील। आतम

दुल्हिन कौन है? श्यामा जी। "नूर हुक्म बुद्ध मूल वतन।" मूल वतन की बुद्धि में जाग्रत बुद्धि भी आ जायेगी और निज बुद्धि भी आ जायेगी। नूर और हुक्म पर कुछ भ्रान्तियाँ रहती हैं। नूर क्या है? कहीं नूर का अर्थ होता है तारतम, कहीं नूर का अर्थ होता है अक्षर ब्रह्म, कहीं नूर का अर्थ होता है परमधाम का तेज। यहाँ नूर का तात्पर्य है अक्षर ब्रह्म। हुक्म क्या है? हुक्म के रूप में कौन लीला कर रहा है? धनी का आवेश ही हुक्म के रूप में लीला कर रहा है। हुक्म का तात्पर्य यहाँ अरब वाले स्वरूप से है।

तैसा इत होता गया, जैसा हुजुर हुक्म करत।

जैसा राज जी मूल मिलावा में अपने दिल में लेते जा रहे हैं, वैसे ही यहाँ होता जा रहा है। परमधाम में नूरी स्वरूप हैं, यहाँ महामति जी के धाम-हृदय में आवेश

स्वरूप विराजमान है। सत् अंग अक्षर ब्रह्म, आनन्द अंग श्यामा जी, और उसी तरह से चिद्धन शक्ति अक्षरातीत की आवेश शक्ति है। वह हुक्म के रूप में लीला कर रही है। जोश की शक्ति जिबरील है और जाग्रत बुद्धि-निज बुद्धि है। ये पाँचों शक्तियाँ मिलकर महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान हैं। वही बात कह रहे हैं-

निज बुध भेली नूर में।

मेरे अन्दर से तारतम ज्ञान का प्रकाश अवतरित हो रहा है। हे सुन्दरसाथ जी! अब मेरे धाम-हृदय में परमधाम की निज बुद्धि प्रवेश कर गई है।

आग्या मिने अंकूर।

आज्ञा का तात्पर्य क्या है? हुक्म या आवेश। मिने अंकूर का तात्पर्य क्या है? मेरी आत्मा के अन्दर।

खासी जान खेड़ी जिमीं, जल सींचिया खसम।

बोया बीज वतन का, सो उग्या वाही रसम॥

मेरी आत्मा को बहुत उपजाऊ धरती मानकर धनी ने प्रेम के रस से सिंचित किया। और तारतम ज्ञान का बीज बोया, जो उसी तरह से उगा। यहाँ अंकूर का तात्पर्य क्या करेंगे? आत्मा को धनी के इल्म और इश्क के माध्यम से जाग्रत करना है। इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि मेरे अन्दर धनी का आदेश है, यानि धनी का आवेश स्वरूप ही आज्ञा (हुक्म) रूप में लीला कर रहा है। जो वे चाहते हैं, वही यहाँ हो रहा है, यह पहले ही कह चुके हैं।

जिन कोई देओ महामति को दोष, ए वचन महामति से प्रगट न होए।

प्रायः हर प्रकरण के अन्त में या तो मिहिरराज की

छाप है, इन्द्रावती जी की छाप है, या महामति जी की छाप है। हम सोचते हैं कि महामति जी ने यह वाणी कह दी। उन्होंने क्या कहा है—

मेरी बुधें लुगा न निकसे, धनी जाहेर करें अखण्ड घर सुख।

मैंने तो वाणी का एक अक्षर भी नहीं कहा है।

कहने की सोभा कालबुत को दर्ई।

मेरे मिट्टी के पुतले को धनी ने शोभा दे दी है। अब महामति जी उसी को स्पष्ट कर रहे हैं कि मेरे धाम—हृदय में धनी का आवेश स्वरूप हुक्म के रूप में विराजमान है, धनी की निज बुद्धि विद्यमान है। ज्ञान का प्रकाश बोल रहा है।

दया सागर जोस का।

और जोश भी विराजमान है।

जोश और आवेश में क्या अन्तर है? जिस प्रकार आग में लोहे को डालते हैं, तो लोहा पहले तपता है, फिर लाल रंग में दहकना शुरू हो जाता है। उस समय, लोहे और आग में कोई अन्तर नहीं रह जाता, अग्नि का आवेश लोहे में चला गया। लेकिन जब आप पानी गर्म करते हैं, तो अग्नि का जोश पानी में चला जाता है। पानी गर्म है, लेकिन उस गर्म पानी को यदि आप आग के अंगारे पर डाल देंगे, तो अंगारा बुझ जायेगा। यानि जोश धनी के पास साक्षात् नहीं जा सकता। इसी कारण, जोश ज़िबरील सत् स्वरूप में रहता है, वह परमधाम नहीं जा सकता, लेकिन जो आवेश का स्वरूप होता है, वह उनका ही स्वरूप होता है।

तुम ही उतर आये अर्स से, इत तुम ही कियो मिलाप।

तुम ही दर्ई सुध अर्स की, ज्यों अर्स में हो आप॥

परमधाम में राज जी नूरी स्वरूप से हैं, यहाँ महामति जी के धाम-हृदय में आवेश स्वरूप से हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर है कि एक नूरी स्वरूप है, एक आवेश स्वरूप है। जहाँ अँकुर होगा, वहाँ आवेश का होना अनिवार्य है, किन्तु जोश का होना जरूरी नहीं है। जैसे- इन्द्रावती जी की आत्मा के साथ जब आवेश है, तो जोश अवश्य रहेगा, लेकिन अक्षर की पञ्चवासनाओं के साथ जोश उतरेगा, आवेश नहीं उतरेगा।

कबीर जी ने जो बावन सखियाँ कहीं, श्री कृष्ण जी ने गीता कही, मोहम्मद साहब ने कुरआन की आयतें कहीं, इन सबके साथ धनी के जोश की लीला होती रही, आवेश नहीं अवतरित हुआ, क्योंकि आवेश तो साक्षात् ब्रह्म का स्वरूप हो जाता है। इसी कारण इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि मेरे धाम-हृदय

में आवेश स्वरूप ही हुक्म के रूप में लीला कर रहे हैं। अब दया सागर का जोश भी प्रकट हो गया है। मेरे ऊपर धनी की मेहर है।

दया और मेहर में थोड़ा सा अन्तर है। मेहर का भाव क्या है? वैसे मेहर का भाव कृपा से लेते हैं। अरबी का शब्द है मेहर। हिन्दी में उसका समानार्थक शब्द कृपा लिया जाता है, या उसका कुछ और छोटा भाव लेते हैं दया का। प्रश्न यह है कि स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म अपनी आत्माओं पर कृपा करेंगे, दया करेंगे, या मेहर करेंगे। अक्षरातीत के हृदय में जो आनन्द का उमड़ता हुआ रस है, वह सभी आत्माओं के लिये है। वह कोई अहसान नहीं करते। कल्पना कीजिये, आप अपनी धर्मपत्नी को साड़ी खरीदकर या कुछ खरीदकर देते हैं, इसमें आप कोई अहसान नहीं करते हैं। वह तो आपको

करना ही पड़ेगा।

हक को काम और कछू नहीं, देवे रूहों लाड़ लज्जत।

फूल है, तो उसकी सुगन्धि भी प्रवाहित होगी। सूर्य उगा हुआ है, तो उसका प्रकाश फैलेगा। सूर्य चाहे कि मैं अपने प्रकाश को छिपा लूँ, तो यह उसके लिये सम्भव नहीं। अक्षरातीत चाहें कि अपने हृदय के आठों सागरों के रस को अपनी आत्माओं में न उड़ेलूँ, तो यह उनके लिये सम्भव नहीं है। जब हम इस दुनिया के भाव में कहते हैं, तब अपने ऊपर विनम्रता की चादर ओढ़कर यह बात कही जाती है कि राज जी की मेरे ऊपर कृपा हो गई, राज जी की दया हो गई।

दया सिंध सुख सागर, इस्क गंज अपार।

शराब पिलावत नैन सों, साकी ऐ सिरदार॥

जीव सृष्टि के लिये वे दया के सागर हैं, क्योंकि जीव सृष्टि धनी के चरणों में आने के बाद अखण्ड मुक्ति को प्राप्त कर लेगी। ईश्वरी सृष्टि के लिये वह सुख का भण्डार लेकर आये हैं, क्योंकि ईश्वरी सृष्टि अपने मूल घर बेहद को प्राप्त हो जायेगी। उसको भी नूरी तन प्राप्त हो जायेंगे और सत् स्वरूप की दूसरी बहिश्त में ब्रह्मानन्द लीला का रसपान किया करेंगी। ब्रह्मसृष्टियों के लिये इश्क का भण्डार लेकर आये हैं। जो इश्क का अनन्त भण्डार हो, वह कृपा क्या करेगा? अक्षरातीत किस पर रहम करे? जिसको कृपा कहते हैं, अरबी में उसके लिये रहम शब्द प्रयुक्त है। रहम और मेहर में बहुत अन्तर हो जाता है, लेकिन हमारा जीव माया के संसार में आने के बाद विनम्रतापूर्ण शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे परिक्रमा में वर्णन आता है—

आये आये के चरणों लागे।

परमधाम में कोई किसी के चरणों में प्रणाम नहीं करता है। कौन किसके चरणों में प्रणाम करेगा, कौन किसको भोग लगायेगा, कौन किसके जयकारे लगायेगा? यह तो यहाँ की दुनिया की मर्यादायें हैं। जैसे कहा जाता है—

श्री राज उतारे वस्तर, पेहेनी पिछोरी कमर पर।

यहाँ जब खाते हैं, तो जूठन गिरने का डर रहता है, इसलिये प्राचीन परम्परा है कि कमर में कपड़े पहन लिये जाते हैं और पूर्व वाले कपड़े उतार दिये जाते हैं। परमधाम में ऐसा नहीं होता कि राज जी भोजन करें तो कपड़े उतारे। इसका तात्पर्य क्या है? वाणी की कई चीजें इस संसार के भावों के हिसाब से वर्णित की गई हैं

और उन्हीं भावों के हिसाब से ये शब्द भी हैं—

दया सागर जोस का।

इस मायावी जगत में जब हमें कोई उपलब्धि होती है, तो हमें उसको अपने ऊपर नहीं लेना चाहिये कि मैं कर रहा हूँ। जागनी की सबसे बड़ी पहचान क्या है?

अब जो घड़ी रहो साथ चरने, होए रहिये तुम रेनु समान।

इत जागे का फल एही है, लीजो कोई चतुर सुजान।।

यह बात कहने में बहुत सरल है कि सबकी चरण—धूलि बनकर रहना, लेकिन व्यवहार में चरितार्थ करना उतना ही कठिन है। महामति जी ने करके दिखाया और सुन्दरसाथ को प्रेरित किया। यदि आप एकान्त में भी किसी को सलाह देंगे कि आपके अन्दर यह चूक है, तो उसका चेहरा तमतमा जायेगा कि मेरे अन्दर यह अवगुण

खोजा जा रहा है। महामति जी क्या कहते हैं—

रोम रोम कई कोट अवगुन, ऐसी मैं गुन्हेगार।

ए तो कहे मैं गिनती, पर गुन्हे को नहीं सुमार॥

मेरे एक-एक रोए-रोए में करोड़ों अवगुण हैं। कोई लिखकर देने को राजी नहीं है। सभा के सामने स्वीकार करना तो दूर, कोई सुन्दरसाथ लिखकर भी नहीं देगा। अब महामति जी ने स्वयं कह दिया कि देखो भाई! मेरी तो यह बात है। ऐसा नहीं है कि महामति जी के अन्दर कोई अवगुण है, लेकिन सिखापन के रूप में हमारे अन्दर कैसी विनम्रता आ जाये, हम कितने विनम्र बनें, कितने सहनशील बनें, कितना अपने हृदय को निर्मल बनायें। इसके लिये धाम धनी ने महामति जी के हृदय से यह बात कहलवा दी। क्या कहा है धनी ने—

विकार सारे अंग के, काम क्रोध दिमाक।

सो बिना विरहा ना जले, होए नहीं दिल पाक।।

यानि काम, क्रोध, और अहंकार धनी के विरह के बिना समाप्त नहीं होते। आगे धनी कहते हैं—

जो कोई मारे इन दुस्मन को, करी सब दुनियां को आसान।

पहुँचावे सबों चरन धनी के, तो भी लेना ना तिन गुमान।।

इसका तात्पर्य क्या है? जिसने काम को जीत लिया हो, क्रोध को जीत लिया हो, अहंकार को जीत लिया हो, जिसके अन्दर ज्ञान का इतना भण्डार हो जाये कि अकेले ही सारे ब्रह्माण्ड को धनी की पहचान कराकर तारतम देने की क्षमता रखता हो, तो भी उसे अपने ऊपर यह बात नहीं लेनी चाहिये कि मैं यह काम कर रहा हूँ।

खिलवत के प्रारम्भिक प्रकरणों में यह तथ्य दर्शाया गया है। इसलिये जो भी परमहंस हुए, सबने परमधाम के वर्णन से पहले यही कह दिया है कि हम धाम धनी के हुक्म से कहने जा रहे हैं। हमारे बल-बुद्धि की शक्ति नहीं है कि हम कुछ भी वर्णन कर सकें। तात्पर्य, हम अपने ऊपर न लेकर अक्षरातीत को सौंपे। क्योंकि—

तैसा इत होता गया, जैसा हजूर हुक्म करत।

भले ही यहाँ श्री लालदास जी की आत्मा हो, चाहे श्री इन्द्रावती जी की आत्मा हो, या श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान श्यामा जी की आत्मा हो, किसी की भी आत्मा धनी की प्रेरणा, धनी के हुक्म, धनी की मेहर की छाँव बिना कुछ भी नहीं कर सकती।

यदि हम अपने ऊपर कुछ भी लेते हैं, तो यह

संसार का अहम बोल रहा होता है, और जब तक उस अहम की परिधि से हम नहीं निकलेंगे, धनी की मेहेर कभी भी नहीं हो सकती। खिलवत में स्पष्ट कह दिया—

मारया कहया काढ़या कहा, और कहा हो जुदा।

मैं खुदी को मारना और उसको निकाल देना, और उससे भी निकल जाना, अर्थात् उस बात को भी भुला देना कि हमने अपने अन्दर से मैं खुदी को निकाल दिया है।

कल्पना कीजिये, हमारे अन्दर इतनी विनम्रता हो जाये कि यदि हमें कोई चौराहे पर गाली दे, पत्थर मारे, तो भी हम मुस्कुराते रहें। उस समय तो हम जीत जायेंगे कि गाली खाने के बाद भी हमारे चेहरे पर मुस्कुराहट रही। लेकिन जब तक हम चार आदमी को बता नहीं देंगे,

तब तक हमें शान्ति नहीं मिलेगी। हम कहते फिरेंगे कि देखो! राज जी ने इतनी हमारे ऊपर उतनी मेहेर कर दी है कि हमको कोई जूता भी मारे तो भी हमें क्रोध नहीं आता। महामति जी इससे भी बड़ी बात कह रहे हैं—

मारया कह्या काढ़या कह्या, और कह्या हो जुदा।

उस बात को भुला दीजिये कि आपके अन्दर कितनी विनम्रता है, आपके अन्दर कितनी सहनशीलता है।

एही मैं खुदी टले, तब बाकी रह्या खुदा।

क्या हमने कभी अपने अन्दर झाँककर देखा है कि इस अवस्था में आने से पहले हमारी अवस्था क्या थी? हमारे अन्दर कितनी अहंकार की ग्रन्थियाँ थीं? जिसकी कृपा ने हमारे अहंकार की ग्रन्थि को तोड़कर उस

मन्जिल पर पहुँचाया है, उसकी कृपा को हम पहले प्राथमिकता दें। हम यह भुला दें कि हमारे अन्दर इतनी विनम्रता है, इतनी निर्मलता है, इतनी सहनशीलता है, या इतनी सेवा की भावना है। धनी कहते हैं—

एही मैं खुदी टले, तो बाकी रहया खुदा।

जो आत्मा इस मन्जिल पर पहुँच जायेगी, उसके दिल में साक्षात् युगल स्वरूप विराजमान हो जायेंगे। वह स्वयं संसार के मानवीय लोगों से परे हो जायेगा।

गाली का उत्तर गाली से देने वाला कभी महान नहीं हुआ करता। महाभारत के अन्दर एक प्रसंग आता है कि जो व्यक्ति किसी के क्रोध करने पर या अपशब्द सुनने पर भी मन में कोई विकार नहीं लाता, अपितु कटु शब्दों को उच्चारित करने वाले के प्रति सद्भावना बरतता है, उसकी

चरण-धूलि लेने के लिए देवता भी तरसते हैं।

दो मजदूर लड़ रहे हैं। दोनों एक-दूसरे को गाली दे रहे हैं। इसमें कौन सी महानता हो गई? गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी को दुनिया क्यों पूजा करती है? उनके अन्दर सहनशीलता की पराकाष्ठा थी, विनम्रता की पराकाष्ठा थी। जो अपने अन्दर के विकारों को जीत लेता है, संसार को जीत सकता है।

इसलिये धाम धनी ने परमधाम के सुन्दरसाथ के लिये उससे भी ऊँची मन्जिल तय की है। व्यवहार में इसका उलटा जरूर देखने में आ रहा है क्योंकि वाणी का ज्ञान हमारे कण्ठ में सीमित हो जाता है, वह हृदय में उतरता नहीं। कदाचित् हृदय में कुछ अंश अवतरित भी हो जाये, तो व्यवहार में चरितार्थ नहीं हो पाता, क्योंकि जो सारे प्रेम का मूल है, जो सारी शान्ति, आनन्द, एवं

ज्ञान का मूल है, उसको हमने किनारे किया हुआ है।

काला से काला लोहा, जिसमें जंग लगा हो, जब उसको आग में तपाने लगते हैं तो पहले वह गर्म होता है, जंग छोड़ने लगता है, और थोड़ी देर के बाद वह आग के समान दहकने लगता है, लाल हो जाता है। यदि हम अपने जन्म-जन्मान्तरों के विकारों को दूर करना चाहते हैं, यदि हम अपने जीव के अन्दर से काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार, सबको भस्मीभूत करना चाहते हैं, तो हमें अपने धाम-हृदय में उस युगल स्वरूप की छवि को बसाना होगा, जिसकी छवि के बसते ही स्थिति यह बन जाती है—

तुम आये सब आइया, दुख गया सब दूर।

श्री महामति ए सुख क्यों कहूं, जो उदया मूल अंकूर॥

जब वह आता है, तो सब कुछ आ जाता है। उसको पाने के बाद कुछ भी देखना शेष नहीं रह जाता, उसके आनन्द में डूबने के बाद संसार तो क्या चौदह लोक का राज्य भी श्मशान घाट के समान प्रतीत होता है। सुन्दरसाथ को ये बातें पढ़ने को मिलती हैं, सुनने को भी मिलती हैं, लेकिन लाखों की जमात में कोई-कोई होता है जिसके अन्दर यह तड़प बसती है कि मैं अपने प्राण प्रियतम को अपने दिल में बसा लूँ।

इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! मेरे धाम-हृदय में धनी का आवेश विराजमान है। आवेश स्वरूप हुक्म के रूप में है तथा निज बुद्धि भी विद्यमान है। अब उनकी मेहेर की छाँव भी मेरे अन्दर विराजमान है। धनी का जोश उमड़ रहा है। परिणाम स्वरूप, अब जो वाणी का प्रवाह उतरेगा,

उसको कोई पकड़ नहीं सकता।

किन रहयो न पकरयो पूर।

कोई भी अब इस वाणी के प्रवाह को नहीं रोक सकता। पाँचों शक्तियों के साथ अक्षरातीत ने महामति जी के धाम-हृदय में लीला की। इसलिये कहा है—

मोहे करी सबों ऊपर, ऐसी ना करी दूजी कोए।

महामति जी को यह शोभा क्यों दी गई?

बड़ी बड़ाई दई आपथें, लई इन्द्रावती कंठ लगाय जी।

अब तक अनेक ब्रह्माण्ड हो गये और होंगे भी, लेकिन उस स्वरूप को जो शोभा मिली, वह शोभा आज तक न किसी को मिली है और न भविष्य में किसी को मिलने वाली है। उसी को स्पष्ट करते हुए कह रहे हैं कि अब जो वाणी का प्रवाह उतर रहा है, किसी भी प्रकार से

माया के बन्धनों से रुक नहीं सकता है।

ए लीला है अति बड़ी।

"ए लीला" का तात्पर्य क्या है? इस ब्रह्मलीला की महिमा बहुत अधिक है। ब्रज की लीला पूरी नींद में हुई।

पूरी नींद को जो सुपन, कालमाया नाम धराया तिन।

रास की लीला कुछ नींद और कुछ जाग्रत अवस्था में हुई।

कछुक नींद कछुक जाग्रत भए, जोगमाया के सिनगार जो कहे।

जागनी की लीला में श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप से जो लीला हो रही है, इसकी विचित्रता कुछ और ही है—

सुख हक इश्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सों करो विचार॥

परमधाम के अनन्त सुखों को यहाँ देखना है। यह जागनी ब्रह्माण्ड की विशेषता है। ब्रज में सुन्दरसाथ थे। उनको परमधाम का कुछ भी ज्ञान नहीं था, रास का भी कुछ ज्ञान नहीं था। रास में गये, तो परमधाम का कुछ भी ज्ञान नहीं था। जब परमधाम में थे, तो उस समय न तो ब्रज का ज्ञान था, न रास का ज्ञान था, और न कालमाया का ही ज्ञान था। इस जागनी के ब्रह्माण्ड में कालमाया का ज्ञान तो सबको ही है, ब्रज का ज्ञान है, रास का ज्ञान है, परमधाम का भी ज्ञान है, और परमधाम की उन चीजों का भी ज्ञान है जो अनादिकाल से परमधाम में रहते हुए भी नहीं मालूम हो सका था।

क्या परमधाम की आत्माओं ने परमधाम की वहदत की मारिफत को जाना था? क्या इश्क की मारिफत जाना था? क्या निसबत की मारिफत को जाना था?

मारिफत की तो कोई पहचान थी ही नहीं, सब हकीकत में ही डूबे हुए थे। जैसे— नमक का ढेला सागर में डूबने के बाद यदि सागर की गहराई को नापने चलता है, तो खुद ही गल जाता है, सागर का माप नहीं ले पाता। कदाचित् उसे सागर की लहरों से किनारे कर दिया जाये, तो वह देख सकता है कि सागर कैसा होता है? उमड़ता कैसे है? उसकी गहराई नापने का अधिकार नमक के ढेले को नहीं है क्योंकि वह खुद सागर से बना होता है।

उसी तरह, परमधाम की ब्रह्मसृष्टि परमधाम में रहते हुए हकीकत में ही इतना डूब गई थी कि वह लीला के रहस्य को नहीं जान सकी थी। हकीकत में ही श्यामा जी का स्वरूप है। सखियों का स्वरूप, अक्षर ब्रह्म का स्वरूप, महालक्ष्मी, परमधाम के पच्चीस पक्ष, खूब

खुसालिया, सब कुछ हकीकत के ही स्वरूप हैं, और जब लीला का प्रकटन होता है, तो इश्क की लीला में, वहदत की लीला में सब ओत-प्रोत होते हैं। किसी को कुछ भी सुध नहीं कि मारिफत का असल स्वरूप क्या है? यदि यह विदित हो जाता तो रब्द होता ही नहीं। अब मारिफत की पहचान हुई है और वह भी आखिरी इल्म के उतरने के पश्चात्। तभी कलश की वाणी में कह दिया—

एक सुख सुपन के, दूजा जागते ज्यों होए।

तीन लीला पेहेली ए चौथी, फरक एता इन दोए॥

एक सुख सपने का होता है जो यथार्थ में नहीं होता है, और दूसरा जाग्रति का होता है। ब्रज की लीला, रास की लीला, और श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला, सब स्वप्न के समान हैं।

तीन लीला पहली ए चौथी, फरक एता इन दोए।

यानि तीनों लीलायें— ब्रज, रास, और श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला— सपने के समान हैं तथा श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में यह जो लीला हो रही है, इसमें परमधाम के पच्चीस पक्षों में घूम सकते हैं, यह लीला अक्षरातीत के प्रत्यक्ष सुखों की है। यहाँ से बैठे— बैठे आप परमधाम एवं धनी के दिल के आठों सागरों के मारिफत के भेदों को जान सकते हैं, जो इन तीनों लीलाओं में सम्भव नहीं था।

सागर—श्रृंगार के माध्यम से आपने निसबत की मारिफत को जाना। इन तीनों लीलाओं में सागर—श्रृंगार का ज्ञान नहीं था। खिलवत क्या है, ब्रज—रास में कुछ भी पता नहीं चल पाया था। श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला में सुन्दरसाथ चमत्कारों में फँस गया,

तथा खुदाई इल्म, आखिरी इल्म, या मारिफत का ज्ञान न होने के कारण कोई अपनी आत्मा को पूरी तरह से जाग्रत नहीं कर सका। अब इसीलिये कह रहे हैं—

ए लीला है अति बड़ी।

यह जो जागनी लीला का प्रकाश फैल रहा है, इसकी महिमा बहुत अधिक है—

आईया इंड मांहे।

यह लीला इस इंड में आई हुई है। आप जिस चौदह लोक की दुनिया में रह रहे हैं, ऐसे चौदह लोकों जैसे असंख्य चौदह लोक कालमाया के ब्रह्माण्ड में हैं। महानारायण उपनिषद् में लिखा हुआ है कि आदिनारायण के एक-एक रोम में न जाने कितने चौदह लोक अष्टावरण सहित घूम रहे हैं। कल्पना कीजिये कि

कालमाया की दुनिया कितनी बड़ी है। हमारी बुद्धि जितना अनन्त की कल्पना कर सकती है, कालमाया का ब्रह्माण्ड उससे भी ज्यादा विस्तार वाला है।

यदि तारतम ज्ञान का प्रकाश न हो, तो एक सामान्य मानव क्या जानता है। उसकी जिन्दगी प्रातःकाल उठने से शुरू होती है, दिन-भर परिश्रम करता है, शाम को अर्थोपार्जन करके रात्रि को सो जाता है। उस बेचारे के जीवन में कभी ऐसा आता ही नहीं कि रात को खुली छत पर खड़े होकर यह देखे कि आकाश में कितने तारे टिमटिमाते हुए दिखाई दे रहे हैं। ये टिमटिमाते हुए तारे हमारी पृथ्वी से लाखों गुणा बड़े हैं। एक-एक आकाशगंगा में करोड़ों तारे हैं, सूर्य हैं, और न जाने कितनी करोड़ों आकाशगंगायें इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में भ्रमण कर रही हैं।

यदि मनुष्य केवल कालमाया के ब्रह्माण्ड के अस्तित्व के सम्बन्ध में विचार करे तथा अपने शरीर के पर्दे से कुछ ऊपर हो जाये, तो उसे बोध होगा कि मैं एक मिट्टी का नाबूद कण या एक छोटी सी बूँद की तरह हूँ और पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द अनन्त सागर की तरह हैं। लेकिन मनुष्य किस पर इतराता है? अपने धन पर, अपने यौवन पर, और अपने पद पर, जबकि धन, यौवन, और पद, तीनों किसी के लिये भी स्थाई नहीं। स्थाई तो आदिनारायण का भी पद नहीं है, फिर भी मनुष्य लौकिक उपलब्धियों को पाने के बाद कितना इतराता है।

मनुष्य अपने निज स्वरूप को भूल जाता है कि मानव! तूने जिस पुतले को धारण किया है, यह पुतला एक दिन वृद्ध हो जायेगा, अग्नि के हवाले हो जायेगा,

और तुम्हारा पक्षी न जाने किस योनि में जायेगा। या तो वह ब्रह्मानन्द का रसपान करेगा, या स्वर्ग-वैकुण्ठ में जायेगा, या चौरासी लाख योनियों के चक्कर लगाता रहेगा, लेकिन चिन्तन तो कोई-कोई करता है।

महामति जी कह रहे हैं कि यह जो ब्रह्मलीला हो रही है, पाँचवें दिन के अन्दर मेरे तन से धाम धनी करवा रहे हैं। इस लीला की महिमा बहुत अधिक है, जिसके द्वारा परमधाम की ब्रह्मवाणी का अवतरण हो रहा है और वह लीला मात्र इसी ब्रह्माण्ड में हो रही है।

कई हुए कई होएसी।

अब तक असंख्य ब्रह्माण्ड बन गये और इसके बाद भी बनते रहेंगे।

ए तीन ब्रह्माण्ड हुए जो अब, ऐसे हुए न होसी कब।

इन तीनों में ब्रह्मलीला भई, ब्रज रास और जागनी कही॥

जागनी ब्रह्माण्ड में ब्रह्मवाणी का अवतरण हो रहा है। इस ब्रह्मवाणी के अवतरण में पाँच हजार सुन्दरसाथ की संख्या घर-द्वार सब कुछ छोड़ देती है, पन्ना जी तक पहुँचती है, जिसमें मुकुन्द दास जी जैसे विद्वान हैं, भीम भाई जैसे वेदान्त के आचार्य है, लाल दास जी जैसे करोड़पति सेठ हैं जिनका ९९ जहाजों से व्यापार हुआ करता था। कितने सुन्दरसाथ हैं, जिन्होंने अपने घर को अन्तिम प्रणाम कह दिया, कभी लौटकर दोबारा गये भी नहीं, किसके लिये? उस ब्रह्मानन्द को पाने के लिये, जो श्री जी के धाम-हृदय से प्रवाहित हो रहा था। और उसी को कह रहे हैं—

कई हुए कई होएसी, पर किन ब्रह्माण्डों नाहें।

असंख्य ब्रह्माण्ड इसके बाद बन जायेंगे और बनते रहेंगे। इसके पहले भी बन चुके हैं और लय को प्राप्त हो गये, लेकिन किसी में भी यह घड़ी नहीं आने वाली है कि पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द किसी मानव तन के अन्दर विराजमान हों तथा परमधाम की उस ब्रह्मवाणी का रसपान सबको मिले, जिसके लिये दुनिया आज दिन तक बाट देख रही थी।

संसार में वेद है, उपनिषद है, दर्शन है, कुरआन है, बाईबिल है। इतने ग्रन्थ हैं, बड़े-बड़े मनीषी हैं, महापुरुष हैं, लेकिन कोई यह नहीं बता पाता कि हद और बेहद से परे क्या है? पहले तो अधिकतर हद से परे की बात ही नहीं बता पाते। कोई-कोई बेहद की बात करेंगे, किन्तु बेहद से परे परमधाम के बारे में कोई जान नहीं पाता।

परमधाम के एक-एक रस को उजागर करने वाली ब्रह्मवाणी उतरी, किन्तु दुर्भाग्यवश हम सुन्दरसाथ ने उसकी सही कीमत नहीं आँकी।

जाको पैर न फटे बवाई, वह क्या जाने पीर पराई।

उन ऋषियों से पूछिए, उन योगियों से पूछिए, जो निराकार के मण्डल को पार करने के लिये न जाने कितने सैकड़ों सालों से हिमालय की गुफाओं में समाधि में बैठे हैं। सबको विदित होगा— गोपालमणि जी महाराज जिनको २२६ वर्ष की उम्र में तारतम ज्ञान प्राप्त हुआ। हिमालय में कितनी बार लम्बी-लम्बी समाधियाँ लगा चुके थे। जब राज जी ने प्रेरणा की, तब पद्मावती पुरी धाम आये। उनको राज जी का दीदार हुआ, लेट-लेटकर उन्होंने परिक्रमा की, और तब उनके तन से इलाहाबाद क्षेत्र में जागनी का प्रकाश फैला।

जो संसार के सारे ग्रन्थों को पढ़कर थक गया हो, संसार की सारी साधनाओं को करके थक गया हो, यदि वह ब्रह्मवाणी का चिन्तन करता है, परमधाम के ध्यान में डूबा रहता है, केवल उसको इस ज्ञान की कीमत का पता चल पाता है। यदि परम्पराबद्ध तरीके से पीढ़ी-दर-पीढ़ी तारतम मिल जाता है, तो वह सुन्दरसाथ इसकी वास्तविक गरिमा का आँकलन नहीं कर पाता। हाँ, सुनी सुनाई बात जरूर कह देता है कि हमारी वाणी सबसे ऊँची है, हमारा ज्ञान सबसे ऊँचा है।

राजस्थान में जैसलमेर का रहने वाला, बीकानेर का रहने वाला जानता है कि पानी की कीमत क्या होती है। बंगाल और चेरापूंजी का रहने वाला नहीं बता सकता कि पानी की कीमत क्या होती है, क्योंकि वह तो दिन-रात पानी में रहता है। जब तक प्यास नहीं होती, पानी की

कीमत को पूरी तरह से नहीं जाना जा सकता। उसी तरह, जिसकी आत्मा उस परमधाम के अलौकिक ज्ञान के लिये तड़पी होगी, वही जानता है कि ब्रह्मवाणी की मिठास क्या है।

सागर, श्रृंगार में क्या लिखा है? यदि हृदय में प्रेम नहीं, विरह नहीं, तो यह वाणी ऐसी ही लगती है, जैसे तुलसी दास जी का रामचरितमानस हो, सूरदास जी का सूर सागर है, या मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत, या कोई और धर्मग्रन्थ। हाँ, चारों वेदों को आत्मसात् करने वाला, छः दर्शनों का गहन चिन्तन करने वाला, या कुरआन का गहराई से अध्ययन करने वाला ही जान सकता है कि इस ब्रह्मवाणी में जिन रहस्यों का स्पष्टीकरण किया गया है, वह कुरआन, वेद, बाईबिल, या छः दशनों में भी नहीं है।

अब तक असंख्य ब्रह्माण्ड बन गये और बनते रहेंगे, लेकिन ब्रह्मवाणी द्वारा सुन्दरसाथ के हृदय में जिस ज्ञान का प्रकाश किया जा रहा है और सुन्दरसाथ को यहीं बैठे-बैठे-

इतहीं बैठे घर जागे धाम, पूरन मनोरथ हुए सब काम।

की स्थिति प्राप्त कराई जा रही है, वह तो पहले न कभी कराई गई और न भविष्य में करायी जायेगी। श्री जी के साथ जो पाँच हजार की संख्या थी, उसमें जिसने जैसा भाव लिया, उसको उसी भाव के साथ राज जी ने दर्शन दिया। क्या यह पहले कभी सम्भव था?

जाको दिल जिन भांत सो, तासों मिले तिन विध।

मन चाह्या स्वरूप होए के, कारज किये सब सिध।।

यदि वाणी के ज्ञान का प्रकाश नहीं होता, तो श्री

प्राणनाथ जी को कौन पहचानता? भक्ति में डूबा रहने वाला अपने आत्म-कल्याण के लिये तेजी से गमन करता है, यह बात बहुत अच्छी है, किन्तु भक्ति के साथ-साथ यदि वह ज्ञान का प्रकाश भी करता है, तो अपने साथ न जाने कितनों को अपनी मन्जिल पर पहुँचा देता है। ज्ञान और प्रेम दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक को दूसरे से हटा देंगे, तो वे उस कटे पँख वाले पक्षी की तरह है, जो एक पँख कटने के बाद असहाय होकर गिर जाता है और उड़ने में असमर्थता व्यक्त कर देता है।

महामति जी कह रहे हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! इसके पहले असंख्य ब्रह्माण्ड बन गये और इसके बाद भी बनते रहेंगे, लेकिन यह जो लीला है, इसकी महत्ता के बराबर कोई भी शब्द नहीं जिसको मैं व्यक्त कर सकूँ।

ए अगम अकथ अलख।

सुन्दरसाथ जो रास लीला का रसपान कर रहे हैं, उनको यह विदित हो कि यह लीला अगम है, अकथ है, और अलख है। किसी से पूछिए कि परमात्मा कैसा है? हर कोई कहेगा कि सच्चिदानन्द है। जो मर्यादा पुरुषोत्तम राम के भक्त होंगे, वे कहेंगे कि सियाराम जी पूर्ण ब्रह्म हैं। जो भगवान शिव के भक्त होंगे, तो वे क्या कहेंगे? हमारे शंकर जी ही पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द हैं। जो देवी के भक्त होंगे, वे क्या कहेंगे? सच्चिदानन्द स्वरूपिणी कौन है? आदि शक्ति।

अब प्रश्न यह है कि यदि सभी सत्, चित्, और आनन्दमयी हैं, और परमात्मा है मात्र एक, तो सत्, चित्, और आनन्द की लीला कैसी है? सत् की लीला कैसी है, आनन्द की लीला कैसी है, चित् की लीला कैसी है? यह तारतम ज्ञान के प्रकाश के बिना कोई नहीं

बता सकता। यदि परमात्मा सच्चिदानन्द है, तो वह अकेले क्या करता रहता है? अपनी लीला का प्रवाह कैसे करता है? यदि वह संसार के कण-कण में है, तो संसार तो दुःखमय है, फिर आनन्द का सागर वह परमात्मा दुःखमय संसार के कण-कण में क्यों फँसा पड़ा है?

सत्, चित्, और आनन्द की व्याख्या तारतम ज्ञान के बिना न हुई है और न कभी होगी। इसलिये धनी कह रहे हैं कि जहाँ ब्रह्मानन्द लीला का रस है, जहाँ प्रेम का अथाह सागर बहता है, जिसके लिये कबीर जी ने कहा था—

जा घर में अबला बसे, बहे प्रेम के पूर।

कहे कबीर सुनो भई साधो, वह घर मुझसे दूर।

जिस घर में प्रेम ही प्रेम है, वह मन और वाणी से अगम है, अकथ है, और कोई उसे जान भी नहीं पाता।

विष्णु भगवान अव्याकृत के महाकारण में होने वाली लीला का ध्यान करते हैं। लक्ष्मी जी पूछती हैं- "प्रभो! आप जिसका ध्यान करते हैं, उसके बारे में बता दीजिए।" विष्णु भगवान कहते हैं- "हे लक्ष्मी! चाहे तुम सात कल्पान्त नहीं इक्कीस कल्पान्त भी तप कर लो, तो भी मेरी जिह्वा उस लीला का वर्णन नहीं कर सकती।"

ये तो बेहद की बातें हैं। परमधाम के बारे में कौन वर्णन कर सकता है? पुराण संहिता में भगवान शिव व्यास जी से कहते हैं- "हे वेद व्यास! सम्पूर्ण परमधाम की शोभा तो दूर की बात है, परमधाम के एक पत्ते का भी वर्णन मेरी जिह्वा से करोड़ों कल्पों में भी नहीं हो सकता।"

कल्पना कीजिए, इस सृष्टि में भगवान विष्णु, भगवान शिव से तो कोई श्रेष्ठ नहीं है। उन्होंने असमर्थता जाहिर कर दी कि उस परमधाम का वर्णन हमारे लिये सम्भव नहीं है। और उस लीला का रसपान हम इस ब्रह्मवाणी द्वारा कर रहे हैं। महामति जी कहते हैं—

ए अगम अकथ अलख।

आज तक इस सृष्टि में ऐसा कोई मनीषी नहीं हुआ, ऐसा कोई योगी नहीं हुआ, जिसने अपनी दिव्य-दृष्टि से परमधाम की लीला को देखा हो। परमधाम की लीला को हमें उस रूप में नहीं लेना चाहिये, जिस रूप में हम परिक्रमा में थोड़ा बहुत देखते हैं। ये तो हमारे भौतिक स्तर के अनुरूप दिया हुआ है।

अर्स बका वर्णन किया, ले मसाला इत का।

यहाँ के दृष्टान्तों से सब कुछ वर्णन किया गया है। ऐसा नहीं है कि परिक्रमा में जो कुछ लिखा है, वह झूठा है। वह सच है, लेकिन हमारी मानवीय बुद्धि कितना ग्रहण कर पाती है, बस उसी के अनुरूप है। परमधाम की कोई चीज आप सीमा में नहीं बाँध सकते।

जो सुन्दरसाथ पुरुष तन में हैं, वे सोचते होंगे, क्या हमें अँगना भाव में जाना पड़ेगा? इससे तो परमधाम न जाना ही अच्छा है। यह ध्यान रखिये कि यह मिट्टी का पुतला आपको इस जन्म में मिला है। आपको स्वयं नहीं मालूम है कि आपका जीव कितने जन्मों में स्त्री की योनि में रह चुका है, और जो बहनें हैं, उनको भी मालूम नहीं है कि उनका जीव कितने जन्मों में पुरुष रूप में रह चुका है। जो आज मानव योनि में हैं, उनको पता नहीं कि वे कितने जन्मों में पशु-पक्षियों की योनि में भटक चुके हैं।

अध्यात्म वहाँ से शुरू होता है, जहाँ पाँच तत्वों का रूप मिट जाता है। जब तक आपको शरीर दिख रहा है, तब तक आप अध्यात्म के सच्चे राही नहीं हैं। आपने तो शरीर को देखा, संसार को देखा, पर बेहद में ही जब यह पाँच तत्वों का पुतला नहीं जायेगा, तो परमधाम की तो बात ही दूसरी है। प्रेम की अभिव्यक्ति अँगना भाव में ही पूर्ण रूप से सम्पादित होती है, इसलिये प्रेम की लीला का रसपान कराने के लिये सबको अँगना भाव में चित्रित किया गया है। उस रस में डूब जाने के बाद तो यह ध्यान ही नहीं रहेगा कि स्त्री क्या होती है, पुरुष क्या होता है? जब तक यह भाव है, तब तक हम आध्यात्मिक आनन्द से कोसों दूर हैं। अब श्री महामति जी कह रहे हैं—

ए अगम अकथ अलख।

यह ब्रह्मलीला अलौकिक है, अकथ है। आज तक

किसी की बुद्धि उस ब्रह्मलीला का वर्णन नहीं कर सकी, जिसका ब्रह्मवाणी के माध्यम से आपको रसपान कराया जा रहा है।

सो जाहेर करे हम।

श्री महामति जी कह रहे हैं कि इस वाणी द्वारा मैं उसको जाहेर कर रहा हूँ। यदि यह वाणी न होती, तो कोई उस ब्रह्मानन्द को जान नहीं सकता। सागर, श्रृंगार में जो रस है, उस रस को कौन जानेगा? श्यामा जी के अंगों का वर्णन और राज जी के एक-एक अंग का वर्णन— होंठ हैं तो कैसे हैं, गाल हैं तो कैसे हैं?

कल्पना कीजिये, हमारे सामने कश्मीर का कोई खूबसूरत व्यक्ति आ जाये, तो हमारी नजर उस पर टिक जाती है। हम सोचते हैं कि कुदरत ने कैसे इतना सौन्दर्य

गढ़ रखा है। यह तो मिट्टी के पुतले का रूप है, जो पाँच तत्वों का बना हुआ है। हिमालय पर चले जाइये, चमकती हुई बर्फ पर यदि सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तो कितना सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। बद्रीनाथ के ऊपर फूलों की घाटी पर चले जाइये, तो फूलों के सौन्दर्य को देखकर आप सम्मोहित हो जायेंगे। इच्छा होगी कि यहीं पालथी मारकर बैठ जायें। यदि फूलों का, सूर्य के प्रकाश का, बर्फ का, पाँच तत्वों के पुतलों का इतना मनमोहक रूप हो सकता है, तो योगमाया के ब्रह्माण्ड में इतना नूर है कि एक कण के अन्दर करोड़ों सूर्यों का प्रकाश ढक जायेगा।

नूर को नूर जो नूर है, किन मुख कहूं रंग सोय।

योगमाया के नूर का मूल अक्षर ब्रह्म हैं, और अक्षर ब्रह्म के रूप में जो नूर चमकता है, वह अक्षरातीत का नूर

है। कल्पना कीजिये कि अक्षरातीत के मुखारविन्द की शोभा कैसी होगी और उस मुखारविन्द की शोभा में बताया जा रहा है कि आँखें कैसी हैं, नासिका कैसी है, होंठ कैसे हैं, दाँत कैसे हैं, कान कैसे हैं? यह पाँच तत्वों के पुतले का रूप नहीं है।

जिन जानों ए बरनन, करत आदमी का।

ए सबसे न्यारा सुभान जो, अर्स अज़ीम में बका।।

उस पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द की शोभा में यदि हमारी आत्मा डूब जाये, तो क्या रखा है इस चौदह लोकों के राज्य में। सुन्दरसाथ में लड़ाई-झगड़े क्यों हो रहे हैं, क्योंकि सुन्दरसाथ ने अभी अध्यात्म का रस तो चखा ही नहीं है। वे तो सागर से भी हजारों कोस दूर हैं। उन्हें केवल शोर मचाना आता है और इसका कारण यह है कि

सुन्दरसाथ युगल स्वरूप की छवि को अपने दिल में नहीं बसा पाते। जिस दिन सुन्दरसाथ अपने दिल में युगल स्वरूप को बसाना शुरू कर देगा, युगल स्वरूप के धाम-हृदय में जो प्रेम और आनन्द का सागर है, वह सुन्दरसाथ के हृदय में भी प्रवाहित होना शुरू हो जायेगा, और उस समय समाज का रूप कुछ और ही होगा।

महामति जी यही कह रहे हैं कि मैं उस परमधाम की लीला को उजागर कर रहा हूँ, जो आज तक अकथ, अलख, और अगम बनी रही।

पर नेक नेक प्रकासहीं।

लेकिन मैं थोड़ा-थोड़ा करके समय-समय पर प्रकाश करूँगा। जिस व्यक्ति ने कभी हजार रुपये का नोट न देखा हो, उसको हजार रुपये की गड़ियों से भरा हुआ

टूक दे दिया जाये कि यह तुम्हारे लिये दिया जाता है, तो वह उसी क्षण पागल हो जायेगा कि मैं करूँगा क्या? वैसे ही, उस परमधाम के अनन्त आनन्द को कोई सहन नहीं कर पाता। महामति जी कहते हैं—

हुकम जो प्याला देवहीं, सो संजमें संजमें पिलाये।

अब प्रकाश की वाणी के बाद कलश की वाणी उतरी। कलश के बाद आपको सनन्ध सुनने को मिलेगी। सनन्ध के बाद किरन्तन, खुलासा, तब खिलवत में प्रवेश कराया जायेगा। खिलवत के बाद परिक्रमा, तब सागर में डुबोया जायेगा, और तब मारिफत की अवस्था में ले जाया जायेगा। श्रृंगार में इसके पहले एक-एक कदम चला जायेगा, ताकि हमारी आत्मा उसके भार को सह सके। परमधाम के अलौकिक आनन्द का रसपान करने के लिये हमें आत्मिक बल की आवश्यकता होती

है। महामति जी यही कह रहे हैं कि मैं थोड़ा-थोड़ा तुम्हारे धाम-हृदय में प्रवाहित करूँगा, ताकि तुम इसके बोझ को सहन कर सको।

जिन सह सको तुम।

कह रहे हैं कि एक बार ही अचानक सम्पूर्ण ज्ञान नहीं दे सकता, क्योंकि यह तुमसे सहन नहीं होगा। सागर, श्रृंगार का ज्ञान आखिर में क्यों उतारा गया? जब श्री जी पद्मावतीपुरी धाम में विराजमान हुए, दस साल की लीला हुई, वहाँ सागर की वाणी उतरी, वहाँ महाश्रृंगार की किताब उतरी। उस समय, सुन्दरसाथ अष्ट प्रहर-चौंसठ घड़ी केवल परमधाम और युगल स्वरूप के सिवाय कुछ भी नहीं सोचते थे। कल्पना कीजिये, यदि दिल्ली में सागर की वाणी उतर जाती, श्रृंगार की वाणी उतर जाती, तो सुन्दरसाथ अभी उस मनोस्थिति में नहीं

थे कि उसके बोझ को झेल पाते। जब तक मन के संशय मिटते नहीं, तब तक हृदय में भाव नहीं आता। जब पन्ना जी में प्रत्यक्ष लीला होने लगी, तब सुन्दरसाथ ने समझा—

एही अक्षरातीत हैं, एही हैं धनी धाम।

और जब उस स्वरूप पर पूरा ईमान आया, तब धाम धनी ने उनके लिये परमधाम का खजाना ही उतार दिया।

छठे दिन की लीला में यह सुन्दरसाथ के ऊपर है कि इस निधि को कितना फैला पाते हैं। लेकिन जितना हमें फैलाना चाहिये, मेरी समझ से अभी १० प्रतिशत तक ही फैलाया गया है। हमारा जो कर्त्तव्य था, मैं समझता हूँ १०, १५, २० प्रतिशत से ज्यादा काम हमने

नहीं किया।

दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गयी। छोटे-छोटे मत-मतान्तर कहाँ से कहाँ पहुँच गये, जिनके ज्ञान का कोई मूल भी नहीं है? मिर्जा गुलाम अहमद ने इधर-उधर से जोड़कर अपना अहमदिया मत खड़ा कर लिया और १६० देशों में उनके अनुयायी हैं। कल भी मैंने कहा था कि उनके पास ७० से ज्यादा भाषाओं में कुरआन की टीका है। हमने तो रो-गाकर अभी केवल हिन्दी में किया है। अंग्रेजी में भी पूरी टीका नहीं है, जबकि हम तो कितने साल पुराने हैं। ३०० साल पुरानी हमारी वाणी है।

मिर्जा गुलाम अहमद का पन्थ कितने साल का है? केवल १०० साल। ब्रह्माकुमारी मत कितने देशों में चला गया है। लेखराज जी ने कितने देशों में फैला दिया है।

वहाबी मत कितने देशों में फैला हुआ है। हमारी असफलता हमारे आलस्य, प्रमाद, और अकर्मण्यता की कहानी कह रही है। हम पूरे भारत में भी इस ब्रह्मज्ञान को नहीं फैला सके, चौदह लोक में तो दूर की बात है।

संसार के जीव हँस रहे होंगे कि परमधाम के ब्रह्ममुनियों! तुमने तो ज्ञान के अनमोल भण्डार को पाकर अपने में ही छुपाये रखा, छोटे से देश में नहीं फैला सके, और हमने तो अपने छोटे से स्वाप्टिक ज्ञान को लेकर दुनिया के कितने देशों में डँका बजा दिया। इसलिये आने वाले समय में सुन्दरसाथ को आत्म-मन्थन करने की आवश्यकता है कि हमसे क्या भूले हुई, वर्तमान में क्या हो रही हैं, और आने वाले समय में हमें सजग होकर ब्रह्मवाणी के प्रकाश को कैसे फैलाना है?



सनन्ध

सुनियो दुनियां आखिरी, भाग बड़े हैं तुम।

जो कबूं कानों ना सुनी, सो करो दीदार खसम॥

सनन्ध ३३/१

अब अक्षरातीत धाम के धनी सनन्ध के प्रकरण ३२ में हकी सूरत की पहचान बता रहे हैं—

इमाम नूर है अति बड़ो, पर सो अब कहयो न जाए।

इमाम कौन हैं? जो ब्रह्मसृष्टियों का नेतृत्व करे, इमामत करे, उसको कहते हैं इमाम। यहाँ इमाम का भाव, मस्जिद में रहने वाले इमाम से नहीं। जो ब्रह्मसृष्टियों के प्रियतम हैं, वे ही ब्रह्मसृष्टियों को इस संसार के अन्दर परमधाम की राह दिखाते हैं। उन्हीं को हादी कहा गया है और उन्हीं को इमाम कहा है।

हादी का तात्पर्य क्या है? हिदायत करने वाला। केवल तीनों सूरतों को ही हादी कहलाने की शोभा है, चौथे किसी को यह शोभा नहीं मिल सकती। उसी तरह, आखरूल इमाम की शोभा केवल श्री प्राणनाथ जी की है, जिन्होंने ब्रह्मसृष्टियों को यहीं बैठे-बैठे परमधाम की बन्दगी कराई।

अर्स बका पर सिजदा, करावसी इमाम।

दुनिया के जो इमाम हैं, वे जाहिरी मस्जिदों में शरीयत की नमाज पढ़ाया करते हैं। अब जो हकीकत की राह दिखायेगा, मारिफत की राह दिखायेगा, उसको कहा गया है हकी सूरत, उसको कहते हैं आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां। अब कहते हैं—

सुनियो दुनियां आखिरी।

यह सनन्ध ग्रन्थ अनूपशहर में उस समय उतरा, जब औरंगज़ेब को चुनौती देना था। औरंगज़ेब इस्लाम के नाम पर शरीयत का झण्डा फहराना चाहता था। उसका प्रण था कि जब तक सवा मन (सवा किलो) जनेऊ उतार न लिया जाये, मैं रात्रि का भोजन नहीं करूँगा। सारा हिन्दू समाज त्राहि-त्राहि कर रहा था कि धर्म की रक्षा कैसे की जाये?

जो सुन्दरसाथ थे, उनको यह ईमान दिलाना था कि यह जो हमारे साथ विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप हरिद्वार में प्रकट हुए हैं, कुरआन की भाषा में इनको ही आखरूल इमाम कहा गया है। लेकिन जब तक हृदय में पूर्ण ज्ञान का प्रकाश नहीं आये, संशय बना ही रहता है। इसी कारण, तफ्सीर-ए-हुसैनी का टीका भी कराया गया, और जब श्री जी अनूपशहर पधारे तो

प्रकाश हिन्दुस्तानी, कलश हिन्दुस्तानी, और सनन्ध वाणी का अवतरण हुआ।

सनन्ध के अवतरण से ही कुरआन के सारे रहस्य खुल गये। जिस तरह से कुरआन में तीस पारे हैं, उसी तरह से तीस पारों का बातिनी भेद सनन्ध के अन्दर अवतरित हो गया। लेकिन कलश हिन्दुस्तानी के भी कुछ प्रकरण जोड़ दिये गये, जिससे वेद और कतेब का एकीकरण किया जा सके। वेद और कतेब का जो एकीकरण सनन्ध में प्रारम्भ किया गया, वह खुलासा ग्रन्थ में फलीभूत हो गया। जो खुलासा ग्रन्थ को पढ़ लेगा, वह हिन्दू और मुस्लिम की दीवारों से परे हो जायेगा।

ऐसा नहीं है कि भारत के लिये परमात्मा ने सूर्य अलग बनाया हो और अरब में उगने के लिये दूसरा सूर्य

बनाया हो। सत्य हमेशा एक होता है, चाहे भिन्न-भिन्न भाषाओं में क्यों न हो। वैसे कुरआन में कुछ आयते हैं जो दंगा-फसाद कराती हैं, जो जोड़ी गई हैं। यदि कुरआन की आयतों का वास्तविक अर्थ किया जाये, तो ऐसा लगेगा कि वह वेद का अरबी संस्करण है। उन्हीं जोड़ी हुई आयतों के विकृत अर्थ के कारण, सलमान रश्दी को Satanic Verses लिखना पड़ा था। वे आयतें मुहम्मद साहब की कही हुई नहीं हैं।

इस समय कुरआन में ७३६३४ हरुफ हैं, जबकि होना चाहिए था केवल ६००००। मारफत के जो ३०००० थे, वे मुहम्मद साहब की जुबान पर चढ़े ही नहीं। मुहम्मद साहब ने कहा था कि अली मेरा वारिस होगा। अली को, अबू बकर, उमर, और उस्मान के बाद खलीफा माना गया। मुआविया ने काफी कुछ आयतों में

हेर-फेर कर दिया था और उस मुआवियों की देन है कि आज सारा संसार कुरआन के नाम पर लड़ने-झगड़ने के लिये तैयार है।

श्री जी एक हाथ में वेद परम्परा का ज्ञान लेकर आये, तो दूसरे हाथ में कतेब पक्ष का ज्ञान लेकर। उन्होंने अपना सन्देश भिजवाया, औरंगज़ेब बादशाह! तू कुरआन के नाम पर संसार को क्यों युद्ध की आग में झोंक रहा है? अब इस प्रकरण में बताया गया है कि जो कुरआन का ज्ञान लेकर आया, वह कौन है?

सुनियो दुनिया आखिरी।

वक्त आखिरत के लोगों! सुनो! कुरआन में या बाईबिल में कियामत के बारे में बहुत स्पष्ट विवेचन है। कियामत के समय जो खुदाई शक्ति प्रकट होकर सबका

न्याय करेगी, सबको एक अल्लाह ताला की पहचान बतायेगी, उस पर ईमान लाने के लिये कुरआन में बार-बार कहा गया है। यह भी बताया गया है, जो इस अवसर को चूक जायेगा, निश्चित ही वह बाद में पश्चाताप करेगा। इस सम्बन्ध में श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा से एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है— जामिल मारिफत।

"जामिल मारिफत" में पहचान बताई गई है कि श्री प्राणनाथ जी कौन हैं? उसमें कुरआन की आयतों के उदाहरण दे-देकर एक-एक तथ्य को विस्तार से स्पष्ट किया गया है। अब पूर्ण ब्रह्म आये, एक मानव तन में उनका आवेश प्रकट हुआ। परमधाम की आत्मा इन्द्रावती (महामति) के चोले में बैठे हुए अक्षरातीत को कौन पहचान सकता है। जो उनके साथ रहने वाले थे, उन्होंने भी नहीं पहचाना। तभी तो कहा—

यों कई छल मूल कहूं मैं केते, मेरा टोने ही को आकार।

ए माया अमल उतारे महामत, ताको रंचक न रहे खुमार॥

मेरा यह शरीर, जिसके बन्धन में, जिसके भ्रम में सारे सुन्दरसाथ पड़े हुए हैं, इसके अन्दर बैठे हुए स्वरूप को कौन पहचान सकता है? इन्द्रावती जी ने क्या कहा—

भले देखो तुम आकार को, पर देखो अन्दर का तेज।

धनी धाम के साथ सों, कैसा करत है हेज॥

उपरोक्त चौपाइयों के अवतरण के समय तो सम्पूर्ण वाणी अवतरित भी नहीं हुई थी। आज तो पूरी वाणी छपी-छपाई मिल जा रही है। सब सुन्दरसाथ घर-घर में वाणी पढ़ते हैं, फिर भी श्री प्राणनाथ जी का प्रस्तुतिकरण किस रूप में होता है? या तो सन्त के रूप में, कवि के रूप में, मनीषी के रूप में, भाषा विशेषज्ञ के

रूप में, छत्रसाल जी के गुरु के रूप में। प्राणनाथ जी के स्वरूप को जब हमारा सुन्दरसाथ ही नहीं पहचानता, तो संसार भला क्या पहचानेगा।

साथ मलीने सांभलों, जागी करो विचार।

जेणे अजवालूं आ करयूं, परखो पुरुख ए पार॥

जिस माया के अन्धेरे से आज तक कोई निकल नहीं सका, ऐसी माया के इस संसार में ज्ञान का उजाला कर जिसने अक्षरातीत की पहचान कराई है, उसको पहचानना है कि वह कौन है। और यदि सुन्दरसाथ ने उनकी पहचान कर ली होती तो यह चौपाई नहीं उतरती—

आंपण हजी नथी ओलख्या, जुओ विचारी मन।

यदि हम अपने मन में विचार करके देखें, तो हमने

आज भी अपने धाम धनी को नहीं पहचाना। वही कह रहे हैं—

सुनियो दुनिया आखिरी।

वक्त आखिरत में रहने वाले संसार के लोगों! मेरे इस वचन को सुनो। ये कौन कह रहे हैं? महामति जी के अन्दर बैठे अक्षरातीत की आवाज आ रही है, जो हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही सम्बोधित करके कह रहे हैं कि महामति के धाम-हृदय में बैठे हुए स्वरूप की तुम्हें पहचान करनी होगी। जागनी लीला में जो इस स्वरूप पर ईमान लाये, उनको एक बन्दगी का हजार गुना फल मिला, और जो मुनाफिक हुए, उनको गुनाहगारों की पंक्ति में खड़ा कर दिया गया। धनी ने कहा है—

इन मोती का मोल कह्यो ना जाये, ना किनहुं कानों सुनाये।

सोई जले जो मोल करे, और सुनने वाला भी जल मरे॥

मोती कौन है, श्री प्राणनाथ जी। श्री प्राणनाथ जी की महिमा के लिये दुनिया में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जिससे उनकी विवेचना की जा सके।

ना किनहुं कानों सुनाये।

किसी के कानों में भी इतनी शक्ति नहीं है कि श्री प्राणनाथ जी की महिमा को पूरी तरह से सुनने की शक्ति रख सके।

सोई जले जो मोल करे।

जो सुन्दरसाथ, व्यक्ति, विद्वान, या मनीषी, श्री प्राणनाथ जी की महिमा को सन्त, महापुरुष, गुरु आदि के एक सीमित दायरे में रख देता है कि प्राणनाथ जी की

महिमा बस इतनी ही है, उसको तो प्रायश्चित की अग्नि में जलना ही पड़ेगा,

सुनने वाला भी जल मरे।

जो उसको सुनकर चुप रहता है, उसे भी प्रायश्चित की अग्नि में जलना होगा।

यदि हम हीरे को हीरा नहीं कह सकते, तो हमको उसे काँच कहने का अधिकार किसने दे दिया? जो लोग श्री प्राणनाथ जी की महिमा को गौरवान्वित नहीं कर सकते, प्रसारित नहीं कर सकते, तो उनको सन्तों, कवियों की पंक्ति में रखने का अधिकार कहाँ से मिल गया? यह प्रकरण यही बता रहा है। सारे संसार के लोगों को उद्बोधन है—

सुनियो दुनियां आखिरी, भाग बड़े हैं तुम।

तुम बहुत बड़े भाग्यशाली हो।

नानक देव जी ने कहा था—

कोई आन मिलावे प्रियतम प्यारा, मैं जिंदे हाथ भी बिकाऊँ।

गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने दशम ग्रन्थ में लिखा है—

नेहकलंक होए उतरसी, महाबली अवतार।

संत रक्षा जुग जुग करें, दुष्टा करें संहार॥

नवां धर्म चलावसी, जग में होनहार।

नानक कलजुग तारसी, कीर्तन नाम आधार॥

और उस दिन क्या होगा? तरह-तरह से विवेचना की है। गुरु गोविन्द सिंह जी ने बाट देखी। नवनाथ योगी वन में जाकर रहने लगे कि कब विजयाभिनन्द बुद्ध प्रकट

हों और उनके चरणों की सान्निध्यता में अक्षरातीत का ज्ञान प्राप्त करें। बड़े-बड़े पीर, पैगम्बर, एहिया, जिकरिया, युसुफ, सुलेमान, इस दिन की बाट देखते रहे कि हे अल्लाह तआला! जब पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द आयें, तो हमें भी उनके चरणों की सान्निध्यता देना।

संसार के किसी भी मत-पन्थ में रहने वाले, चाहे हिन्दुओं के ऋषि, मुनि, योगी, यति हों, या पीर-पैगम्बर हों, सबने उस दिन की बाट देखी लेकिन उनको यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो पा रहा है, और जिन्हें इस समय प्रत्यक्ष मानव तन द्वारा श्री प्राणनाथ जी के चरणों की सान्निध्यता पाने का अवसर मिला है, उनके लिए सम्बोधन है कि तुम्हारे कितने बड़े भाग्य हैं। तुम्हारे जीवों ने न जाने कितने जन्मों में तपस्या की होगी, जो तुम्हें श्री प्राणनाथ जी के साक्षात् दर्शन का लाभ हो रहा है।

कल्पना कीजिये, देवापि और मरु, जिन्होंने हिमालय के कलाप ग्राम में रहकर बहुत पहले से घोर साधना प्रारम्भ की थी कि जब सच्चिदानन्द परब्रह्म इस संसार में प्रगट हों, तो हमारे ही तनों में लीला करें। भागवत में इस सम्बन्ध में कहा गया है—

देवापिः शन्तनोभ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः।

कलाप ग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ॥

तौविहत्य कलेरन्ते वासुदेव अनुशिक्षितौ।

वर्णाश्रमं धर्मं पूर्वम प्रथयिष्यतः॥

वे कलियुग में पुनः प्रगट होंगे और धर्म की स्थापना करेंगे। तात्पर्य क्या है? जयपुर में लाखों की संख्या है, लेकिन ज्ञान को सुनने वालों की संख्या कितनी है? जिनके जीवों ने पूर्व जन्मों में कुछ किया होगा, उस

सच्चिदानन्द परब्रह्म के चरणों को पाने की तमन्ना की होगी, उनको ही किसी न किसी रूप से ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश मिलता है, शेष सारी दुनिया तो क्या जानती है? अधिक से अधिक अर्थोपार्जन करना और अधिक से अधिक माया के सुखों को उपभोग में लाना, लेकिन क्या मिलता है हाथ में?

एक कौआ सेमल के एक सुन्दर फूल को देखकर उस वृक्ष की डाल पर बैठा रहता था कि जब यह फूल फटेगा तो बहुत बढ़िया फल आयेगा, मैं उसको खाऊँगा। कदाचित फूल समाप्त हो गया, फल लगा, उसने चोंच मारी, किन्तु उसकी चोंच में केवल रुई का फोहा ही आ सका। खाने को कुछ नहीं मिला। कबीर जी ने कहा है—

ऐसा यह संसार है, जैसा सेमल फूल।

दिन दस के व्यवहार में, झूठे रंग न भूल।।

सेमल का फूल देखने में तो सुन्दर होता है, किन्तु फल कुछ भी नहीं। उसी तरह, संसार में सब कुछ दिखाई पड़ रहा है, रिश्ते-नाते, कोठी-बंगले, सब कुछ, लेकिन इनमें सार कुछ भी नहीं है। हमारे साथ कुछ भी जाने वाला नहीं है। महामति जी कहते हैं कि संसार के लोगों! इस बात को सुनो, क्योंकि तुम्हारे भाग्य बहुत बड़े हैं।

जो कबू कानों ना सुनी।

जिस अक्षरातीत के बारे में तुमने अपने कानों से कभी नहीं सुना था। सारी दुनिया अक्षर शब्द भी सुनती है, अक्षरातीत भी सुनती है, लेकिन किसी को पहचान

नहीं है। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं—

यस्मात् क्षरात् अतीतोऽहम् अक्षरात् अपि च उत्तमः।

वेदे च लोकेऽस्मिन् प्राथितः पुरुषोत्तमः॥

क्षर और अक्षर से परे जो उत्तम पुरुष है, उसकी विवेचना कौन जानता है। शरीर को क्षर मान लिया जाता है, अन्दर बैठे हुए जीव को अक्षर मान लिया जाता है, और जीव का जो स्वामी आदिनारायण है उसको दुनिया अक्षरातीत मान लेती है। यानि क्षर को ही अक्षरातीत मानने को मजबूर हैं। उपनिषदों ने कहा—

अक्षरात् सम्भवति इह विश्वम्।

अक्षर से यह सम्पूर्ण जगत प्रकट होता है।

और परमात्मा कौन है? अक्षर से भी परे है। लेकिन अक्षर से परे उस अक्षरातीत को कौन जानता है? दुनिया

कहती है, किन्तु जानती नहीं, उसी तरह से कतेब की परम्परा में बाईबिल वालों को तो कुछ भी पता नहीं कि क्षर क्या है, अक्षर क्या है, अक्षरातीत क्या है? कुरआन में विवेचना होते हुए भी नूरजमाल, नूरजलाल के विषय में शायद ही कोई मौलवी-मुल्ला जानता हो कि क्षर और अक्षर से परे उत्तम पुरुष अक्षरातीत कौन है?

इसलिये सबको सम्बोधित करते हुए कहा जा रहा है कि दुनिया वेद-कतेब पढ़ती है। वेद, उपनिषद, दर्शन, कुरआन, बाईबिल, हदीस सबको दुनिया कण्ठस्थ किये बैठी है, लेकिन कोई यह नहीं जान पाता कि कौन है अक्षरातीत? कहाँ है अक्षरातीत? कैसा है अक्षरातीत? इसी को कहते हैं—

जो कबूँ कानों ना सुनी, सो करो दीदार खसम।

कौन आया है? सबका पूर्ण ब्रह्म, सच्चिदानन्द आया है।

प्रकटे पूरनब्रह्म सकल में, ब्रह्मसृष्टि सिरदार।

ईश्वरी सृष्टि और जीव की, सब आये करो दीदार।।

कौन आया है? ब्रह्मसृष्टियों का प्रियतम आया है, ईश्वरी सृष्टि का स्वामी आया है, और जीव सृष्टि का प्रभु आया है। सबके लिये आया है, सबका आया है।

सामान्य रूप से इस पर विचार किया जाये, तो एक बात मन में आती है कि हर पन्थ वाला अपने प्रमुख की महिमा ही गाता है। आज कबीर पन्थ में जाइये, तो कबीर पन्थ के लोग कबीर जी के सिवाय किसी को नहीं मानेंगे। उनके आधुनिक विद्वानों ने तो कबीर जी को पूर्ण ब्रह्म के रूप में घोषित कर दिया है।

इस तरह से यह कहा जा रहा है कि प्रणामी मत में भी श्री प्राणनाथ जी को पूर्णब्रह्म के रूप में घोषित कर दिया गया है। लेकिन यह ध्यान रखिये कि कबीर जी को पूर्णब्रह्म घोषित करने वाली बात किसी धर्मग्रन्थ में नहीं लिखी है। सन्त के रूप में, सत्गुरु के रूप में उनकी प्रतिष्ठा है। उनका ज्ञान पञ्चवासनाओं में सर्वोपरि है, इसमें किसी को शक नहीं। उन्होंने अक्षर ब्रह्म का ज्ञान दिया। उन्होंने हृद से परे बेहद और उससे भी परे की बात बोली है, लेकिन कबीर जी की बीजक में कहीं भी नहीं लिखा है कि मैं पूर्ण ब्रह्म हूँ। हाँ, उनके भक्त आजकल जरूर कहते-फिरते हैं। किन्तु प्राणनाथ का तात्पर्य ही है— जो सबकी आत्माओं का प्रियतम हैं। वेद के एक मन्त्र में कहा गया है—

प्रियाणाम् त्वा प्रियपतिं हवामहे।

जो प्रियाओं का प्रियपति हो, उसकी हम स्तुति करते हैं। सभी आत्माओं का प्रियपति कौन है? प्राणनाथ किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। मिहिरराज को प्राणनाथ नहीं कहते, महामति को प्राणनाथ नहीं कहते। मिहिरराज तो राजा मरु द्वारा धारण किये हुए जीव के तन का नाम है। उस तन के अन्दर आत्मा इन्द्रावती बैठी है। पाँचों शक्तियों के साथ विराजमान होकर अक्षरातीत उस आत्मा के अन्दर लीला कर रहे हैं। इसलिये उनको महामति कहा जा रहा है।

लेकिन महामति के प्रियतम हैं प्राणनाथ, इन्द्रावती के भी प्रियतम हैं प्राणनाथ, मिहिरराज के भी प्रियतम हैं प्राणनाथ। जिस तरह से अग्नि में लोहा तपकर अग्नि के समान बन जाता है, उसी तरह से जब महामति जी के धाम-हृदय में पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द विराजमान हो गये, तो

सुन्दरसाथ ने उनके धाम-हृदय में पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द की अनुभूति की, तत्पश्चात् सबने कहना शुरू किया कि हमारे प्राणनाथ इस तन में विराजे हैं। इस प्रकार ये हमारे प्राणनाथ के स्वरूप हैं। अन्यथा कोई पञ्चभौतिक तन अक्षरातीत नहीं हो सकता।

सो करो दीदार खसम।

अक्षरातीत परमधाम में नूरी स्वरूप से हैं। परमधाम का एक कण भी यहाँ आ जाये, तो चौदह लोक समाप्त हो जायें। अनहोनी घटना के रूप में पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द का आवेश महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान हुआ। पुराण संहिता की साक्षी है, माहेश्वर तन्त्रम् की साक्षी है, बुद्ध गीता की साक्षी है, और तो और कुरआन तथा बाईबिल की भी साक्षी है। सभी धर्मग्रन्थ, वेद और कतेब दोनों, एक स्वर से पुकार रहे हैं कि जो विक्रम

सम्वत् १७३५ ग्यारहवीं सदी में प्रगट होगा, वह पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द का स्वरूप होगा।

आरबों सों ऐसा कहा, कागद ए परवान।

आवसी रब आलम का, तब खोलसी कुरआन॥

मुसलमान केवल कुरआन को रटते-भर हैं, उसके भेदों को नहीं जानते। मुहम्मद साहब ने कह दिया था कि जो इसके भेदों को खोलेगा, समझ लेना कि वह अल्लाह तआला का स्वरूप होगा। उसी को आखरुल इमाम मुहम्मद महदी कहते हैं। हिन्दू ग्रन्थों में उसी को विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप कहते हैं। विजयाभिनन्द का तात्पर्य है, विजय जिसका अभिनन्दन करती हो। निष्कलंक का अर्थ क्या होता है? जिसमें किसी तरह का कलंक न हो।

आदिनारायण को केवल क्षर जगत की बात मालूम है, बेहद की कोई बात नहीं मालूम। बेहद में रहने वालों को बेहद से परे का यथार्थ ज्ञान नहीं है। आपने बीतक में पढ़ा है कि बाल मुकुन्द जी बाँके बिहारी को ही अक्षरातीत का स्वरूप मानते हैं। उनको यह भी मालूम नहीं है कि वे सबलिक के कारण में हैं और सबलिक के महाकारण में महारास लीला हो रही है। सबलिक का असल स्वरूप तो इससे भी परे है। सबलिक से परे केवल है, केवल से परे सत् स्वरूप है। ये बातें अव्याकृत और सबलिक में रहने वालों को खुद पता नहीं। उसी तरह से अक्षर ब्रह्म को भी पता नहीं कि—

अक्षरातीत के महल में, प्रेम इश्क बरतत।

सो सुध अक्षर को नहीं, जो किन विध केलि करत॥

कहीं न कहीं अधूरापन है। एकमात्र पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द ही हैं, जो सब कुछ जानते हैं। वे सबको जानते हैं, उन्हें कोई नहीं जानता। उनकी निजबुद्धि का ज्ञान जिसके धाम हृदय में विराजमान हो जाये, तो उसको कहेंगे निष्कलंक स्वरूप। ऐसा स्वरूप, जिसमें किसी भी तरह का शक-संशय न हो, किसी तरह का कलंक न लग सके, और यह शोभा केवल श्री जी को प्राप्त हैं। इसलिये कहा गया—

जो कबू कानों न सुनी, सो करें दीदार खसम।

उस पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द का दीदार करो, जिसके बारे में दुनिया आज तक सुन नहीं पाई थी कि अक्षरातीत कौन होता है।

आया सबका खसम, सब सब्दों का उस्ताद।

कौन आये हैं? सबके पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द आये हैं। हिन्दुओं ने जिसको विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप कहा, पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द कहा, अक्षरातीत कहा, बाईबिल वालों ने जिसको Second Christ कहा, कुरआन वालों ने आखरूल ईमाम मुहम्मद महदी कहा।

एक बार, भगवान बुद्ध की प्रशंसा में उनके एक शिष्य ने कहा— "भगवान! आप जैसा ज्ञानी न तो कभी हुआ है और न कभी होगा।" तब बुद्ध ने कहा— "ऐसा नहीं कहना चाहिये। मेरे बाद मुझसे भी बड़े ज्ञानी आयेंगे।" इसी तरह, जैन ग्रन्थों में लिखा है कि जब श्री कृष्ण तीर्थकर होंगे, तो सभी जीव मुक्ति को प्राप्त होंगे। वह आखिरी तीर्थकर कौन हैं? चौबीस तीर्थकरों की गणना तो होती है, लेकिन यह कथन किसके लिये है?

संसार के हर पन्थ ने किसी न किसी रूप में संकेत

दिया है। अब यह सुन्दरसाथ पर निर्भर करता है कि सभी धर्मग्रन्थों में छिपे हुए रहस्यों की खोज करें कि यह किसके लिये संकेत किया गया है। धाम धनी महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान होकर अपने आवेश स्वरूप की पहचान करा रहे हैं। यदि संसार के लोग महामति जी के धाम-हृदय में बैठे हुए मेरे स्वरूप की पहचान कर लेंगे, तो निश्चित है कि वे धन्य-धन्य हो जायेंगे। उसी को कहा—

सो करो दीदार खसम।

अर्थात् महामति जी के धाम-हृदय में बैठे हुए पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द के स्वरूप का संसार के लोग दर्शन कर लें।

कई राएं राने पातसाह, छत्रपति चक्रवर्त।

इस संसार में बहुत बड़े-बड़े राय हो गये।

राय और राणा हिन्दू राजाओं के राजवंशों की उपाधियाँ हैं। दक्षिण भारत में जो राव कहलाते हैं, उत्तर भारत में उत्तर प्रदेश-बिहार वगैरह में राय कहलाते हैं, और ये ही राजस्थान में राणा कहलाते हैं। छत्रपति का तात्पर्य है, जिसका एक छत्र राज्य हो, जिस पर किसी भी राजा का दबदबा न हो, उसको कहते हैं छत्रपति, और छत्रपति से भी बड़ा पद होता है चक्रवर्ती। चक्रवर्ती का तात्पर्य है, जिसने चारों दिशाओं में समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर शासन किया हो, उसको कहते हैं चक्रवर्ती सम्राट। चक्रवर्ती राजा वही बन सकता है, जो सारी पृथ्वी के राजाओं को जीतकर अपने अधीन कर रखा हो।

धाम धनी कह रहे हैं कि इस दुनिया में बड़े-बड़े राय हो गये हैं, राणा हो गये हैं, बादशाह हो गये हैं, छत्रपति हो गये, और चक्रवर्ती सम्राट हो गये। बादशाह

और छत्रपति एक ही हैं, लेकिन चक्रवर्ती सम्राट पृथ्वी पर एक समय में केवल एक ही होता है। छत्रपति, राय, राणा, सम्राट कई हो सकते हैं, लेकिन चक्रवर्ती सम्राट एक ही होगा। महामति जी के धाम-हृदय से श्री राज जी कहलवा रहे हैं कि इस दुनिया में बड़े-बड़े राय, राणा, बादशाह, छत्रपति, और चक्रवर्ती सम्राट भी हो गये हैं।

ताए हक सुपने नहीं।

उनको सपने में भी पूर्ण ब्रह्म के बारे में कोई जानकारी नहीं मिल सकी।

एक बार, मगध के सम्राट बिम्बिसार का पुत्र महावीर स्वामी से पूछता है— "भगवान! बताइये, मरने के बाद मेरी क्या गति होगी?" महावीर स्वामी ने तपाक से कहा— "तू तो तीसरे नर्क में जायेगा।" अब वह सन्न पड़

गया कि मैं राजा हूँ और नर्क में जाऊँ, यह कैसे? महावीर स्वामी ने कहा— "देखो! यदि कोई तपस्वी या धर्मात्मा परम तत्त्व की नहीं जान पाता, मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाता, तो अपने पुण्य कर्मों के कारण वह राजपद पर सुशोभित होता है। लेकिन यदि राजा रहते हुए ज्ञान-चक्षु नहीं खोले, परमात्मा को प्राप्त नहीं किया, विषयों का सेवन करता रहा, तो निश्चित है कि उसको नर्क भोगना पड़ता है।"

ये बड़े-बड़े राजा, राणा, बादशाह, छत्रपति, या चक्रवर्ती कहलाने वाले सम्राटों के पास चतुरंगिणी सेना होती है। ये लोग सोने के महलों में सोते हैं, फूलों की शय्या पर सोते हैं। दुनिया इनकी जय-जयकार लगाती है। दुनिया तो सोचती है कि ये भगवान के अवतार हैं, क्योंकि हमारे देश में ही नहीं, सारी दुनिया में चाटुकारों

का एक समूह रहता है। भारतीय संस्कृति कहती है कि राजा प्रजा का सेवक होता है, किन्तु जब चापलूसों की मण्डली कहती है कि राजा तो भगवान या परमात्मा का ही अवतार है, तो राजाओं को अपनी प्रशंसा सुनकर खुशी होती है।

अंग्रेजों के जमाने में, जब ये राजा लोग महल से निकलते थे, तो तोप से गोले छोड़े जाते थे। जब धुँआ निकलता था, तो राजाओं की प्रशंसा में चारण और भाट कविता बनाकर सुनाया करते थे कि महाराज! देखिये, आपकी इतनी महिमा है, आपका इतना तेज है कि आपके तेज में सूर्य भी छिप गया। जब चारों तरफ धुँआ फैल जायेगा, तो सूर्य कहाँ से दिखाई देगा। राजा खुश हो जाते थे कि मेरे तेज के सामने तो सूर्य का तेज भी फीका पड़ रहा है। वे महिमा मण्डित होकर अपने महलों में चले

जाते थे। उनको कुछ भी पता नहीं, राज-काज क्या होता है, प्रजा के प्रति हमारा कर्तव्य क्या होता है, और यही देश के पतन का मुख्य कारण हुआ। इसका तात्पर्य क्या है? मनुष्य को यौवन, धन, राजपद पाने के बाद कभी भी अहंकार को अपने सिर पर नहीं आने देना चाहिये, क्योंकि ये सारी वस्तुएँ नश्वर हैं।

सारी दुनिया को जीतने का ख्वाब देखने वाला सिकन्दर जब इस संसार को छोड़कर जाने लगा, तो उसकी आँखों में आँसू आ गये कि मैं कभी अपनी तलवार से सारी दुनिया को जीतना चाहा था, सारी दुनिया का धन अपने चरणों में लाना चाहा था, लेकिन आज मैं सब कुछ छोड़कर जा रहा हूँ। मेरे हाथों को शव के दोनों तरफ कर देना, ताकि देखने वालों को पता चल जाये कि सिकन्दर संसार में अकेले आया था, अकेले ही

सब कुछ छोड़कर जा रहा है। इस तरह से दुनिया वालों! मेरी तरह से तुम भी कभी अपने धन, यौवन, और बल पर अहंकार मत करना।

सो गये लिए गफलत।

वे सभी गफलत (अज्ञानता) लिये ही चले गये।

यदि कोई राजा हो गया, तो राजा हो जाने का यह मतलब नहीं कि वह ब्रह्मज्ञान का अधिकारी हो गया। राजा के पास क्या होता है? माया का धन होता है। इसके सिवाय और क्या होता है?

एक बार अकबर के पोते शाहजहाँ ने सुना कि मेरे दादाजान एक हिन्दू फकीर के यहाँ गये थे, यानि तानसेन के गुरु हरिदास जी के पास, वह भी महात्मा के भेष में। यह तो मेरी बहुत बड़ी तौहीन है कि हमारे दादा

पूरे हिन्दुस्तान के बादशाह होकर भी हिन्दू महात्मा के चरणों में जायें। मैं चलकर देखता हूँ कि वह कैसा महात्मा है, जिसके चरणों में जाने के लिये मेरे दादाजान मजबूर हो गये थे।

जाता है, तो पता चलता है कि जिस तरह से अकबर की तीसरी पीढ़ी चल रही है, उसी तरह से हरिदास जी के भी शिष्य के शिष्य उनकी गद्दी पर बैठे थे। शाहजहाँ पूरे रोब-दाब के साथ अपने सैनिकों को लेकर पहुँचा और जाकर उनसे कहता है कि मैं अकबर बादशाह का पोता हूँ, दिल्ली का शहंशाह, बादशाह। सारा हिन्दुस्तान मेरे सामने नतमस्तक है, बताइये! आपकी क्या इच्छा पूरी करूँ? क्योंकि मेरे दादाजान भी आपके दादागुरु के पास आये थे।

उस सन्त ने कहा कि बहुत अच्छी बात है। क्या मैं

जो माँगूंगा वह दे दोगे? कहा, भला मैं दिल्ली का बादशाह हूँ, क्या नहीं दे सकता? उस सन्त ने कहा— "यदि दे सकते हो, तो मैं ये चीज माँगता हूँ कि तुम यहाँ से अभी चले जाओ और कभी भी पुनः इधर वापस मत आना। अगर तुम सच्चे मुसलमान हो, तो अपने वचन का पालन करो।" वह हक्का-बक्का रह गया कि लोग मुझसे मिलने के लिये तरसते हैं, और यह तो झोंपड़ी में रहने वाला फकीर कह रहा है कि तुम अभी उठकर चले जाओ, फिर कभी भी दुबारा नहीं आना। इसका तात्पर्य क्या है? उस फकीर को कुछ भी लेना-देना नहीं था, उस शाहजहाँ की शान-शौकत से।

इस दुनिया में बड़े-बड़े राजा हो गये, राणा हो गये, उनको ब्रह्मज्ञान का प्रकाश नहीं मिला, और वे भी संसार से रोते हुए चले गये कि वह सच्चिदानन्द परमात्मा कौन

है। यदि मनुष्य अपनी आँखें बन्द करके थोड़ा भी विचार करे कि मेरा धन यहीं रह जाता है, मेरा सुन्दर शरीर यहीं रह जाता है, मेरा महल यहीं रह जाता है। वह कौन है, जो अनन्त प्राणियों का भरण-पोषण कर रहा है? सच्चिदानन्द परब्रह्म, जिसके सत अंग कि इच्छा मात्र से करोड़ों ब्रह्माण्ड एक पल में पैदा होते हैं और लय को प्राप्त हो जाते हैं, तो मेरा यह अहंकार किसलिये? किन्तु ज्ञान के चक्षु बन्द रहते हैं। मनुष्य अपने यौवन पर इतराता है, धन पर इतराता है, पद-प्रतिष्ठा पर इतराता है, और अज्ञान की यही ग्रन्थियाँ उसको भवसागर में डुबोती रहती हैं। धाम धनी कहते हैं—

ताये हक सुपने नहीं, सो गये लिये गफलत।

अज्ञानता के अन्धकार में बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट भी इस दुनिया से चले गये।

कई देव दानव हो गये, कई तीर्थकर अवतार।

देवता किसको कहते हैं? जिसमें दिव्य गुण हों।
भारतीय संस्कृति में माना जाता है—

मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, अतिथि देवो भव, आचार्य देवो भव।

जिनमें ज्ञान है, विवेक है, वैराग्य है, शम है, दम है, तितिक्षा है, जो स्वप्न में भी झूठ नहीं बोलते, जो सपने में भी कटु वाणी नहीं बोलते, सबका कल्याण चाहते हैं, जो अपने ज्ञान के आलोक से सारे संसार को प्रकाशित करना चाहते हैं, जिनके अन्दर क्षमा है, सत्यता है, मधुर भाषिता है, उनको देवता कहते हैं, और इसकी विपरीत प्रवृत्ति वाले असुर कहलाते हैं जो तमोगुण से ग्रसित हैं।

देवता होते हैं सतोगुणी, मनुष्य होता है रजोगुणी, और असुर होते हैं तमोगुणी। लेकिन कुछ शक्तिशाली हो

गये देवताओं में और कुछ शक्तिशाली हो गये असुरों में। रावण की इतनी शक्ति थी कि देवताओं को भी वशीभूत कर लिया था। कंस की शक्ति के आगे कोई ठहरता नहीं था। आसुरी प्रवृत्ति वाले असुरों में कुछ बहुत शक्तिशाली हो गये हैं, जिनकी शक्ति अपराजेय थी। बाणासुर की शक्ति का लोहा हर कोई मानता था। श्री कृष्ण जी के सिवाय संसार में किसी में भी शक्ति नहीं थी कि उसका मुकाबला कर सके। बलि का मुकाबला करने का सामर्थ्य किसी में नहीं था।

उसी तरह, देवताओं में इन्द्र को सर्वश्रेष्ठ माना गया। इन्द्र को सर्वोपरि क्यों माना जाता है? प्राचीन काल में राजा वही बनता था, जो जितेन्द्रिय हो। चाणक्य ने लिखा है—

राज्यमूलं इन्द्रियजयः।

जो अपनी अन्तःप्रजा रूप इन्द्रियों को जीत सकता है, वही राजा हो सकता है। इसलिये देवताओं में इन्द्र का पद उसी को दिया जाता था, जो अपने मन और इन्द्रियों पर अधिकार रखता हो। आज पौराणिक कथाओं में सुनते हैं— रम्भा, मेनका, और उर्वशी की मुस्कान पर दधीचि, विश्वामित्र जैसे ऋषि-मुनियों का आसन डिग गया था। लेकिन इनके बीच रहते हुए भी देवराज इन्द्र का आसन कभी नहीं डिगता। तात्पर्य क्या है? जो ऋषि-मुनियों से भी ज्यादा तपस्वी हो, उसको देवताओं का राजा नियुक्त किया जाता था। जो अपने इन्द्रियों एवं मन को जीतेगा, वही संसार को भी विजय करने का अधिकार रखता है। ऐसे शक्तिशाली देवता और ऐसे शक्तिशाली असुर इस दुनिया से चले गये।

कई तीर्थकर अवतार।

जैन मत के चौबीस तीर्थंकर माने जाते हैं और इसके समानान्तर पौराणिक सनातनी हिन्दुओं ने विष्णु भगवान के चौबीस अवतारों की कल्पना की है। उनके चौबीस तीर्थंकर हैं और इनके चौबीस अवतार हैं। ऋषभदेव पहले तीर्थंकर हैं और महावीर स्वामी आखिरी तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर होना इतना सरल नहीं है। जिन्न का अर्थ होता है, जिसने अपने इन्द्रियों को जीत लिया हो।

महावीर स्वामी के पूर्व जन्मों की अनेक कहानियाँ हैं। कितने जन्म उन्होंने राजघराने में बिताये हैं, कितने जन्मों में किस-किस योनि में अपना जीवन गुजारा है। कठोर तप करने के पश्चात् उनका जीव राग-द्वेष की परिधि से परे हो गया था। एक बार वे तप कर रहे थे। एक किसान आया, उनसे कुछ पूछना चाहा। वे तो मौन व्रत में थे, कुछ बोले नहीं। जब नहीं बोले, तो उसने

उनके कान में कील ठोंक दिया। उनके कान से खून बहने लगा, फिर भी महावीर स्वामी के मुख से एक भी शब्द नहीं निकला कि मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मेरे कान में कील ठोक रहे हो? इसको कहते हैं महानता।

गौतम बुद्ध को दुनिया ने कितनी गालियाँ दी होंगी, लेकिन गाली देने वाले वहीं के वहीं रह गये और गौतम बुद्ध की पूजा दुनिया का बहुसंख्यक वर्ग करता है। महावीर स्वामी का सम्मान संसार क्यों करता है? क्योंकि उन्होंने अपनी इन्द्रियों को जीता, मन को जीता, राग-द्वेष के बन्धनों को काटा जो मानवीय कमजोरी होती है।

भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में लिखा है कि हाथियों के मस्तक को तलवारों से काटना कोई बड़ी बात नहीं है। यह तो कोई भी वीर कर सकता है, लेकिन जिन्होंने

अपने मन को जीता है, जो कामिनी के चंचल बाणों से व्यथित नहीं होते, निश्चित ही वे सबसे बड़े वीर होते हैं, वे सबसे बड़े बहादुर होते हैं। जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, और राग-द्वेष के बन्धनों को तोड़ चुके हैं, जो शुद्ध आत्म-भाव में स्थित हैं, वही तीर्थंकर कहलाने के योग्य हैं। और इस मन्जिल तक पहुँचने के लिये कितनी साधना की आवश्यकता पड़ती है, आप स्वयं आँकलन कर सकते हैं।

इस समय लगभग चालीस लाख का हमारा सुन्दरसाथ है। मुझे नहीं दिखता कि चालीस लाख में सौ भी ऐसे व्यक्ति हों, जिसके कान में कील ठोकी जाये तो वे मुस्कुराते रहें, और ठोकने वाले को एक शब्द भी नहीं कहें। तीर्थंकर वे कहलाये, जिनको कोई वासना नहीं, जिनका मन शान्त हो गया, और जिन्होंने इन्द्रियों को

पूर्णतया जीतकर अपने अधीन कर लिया।

अवतार कौन है? परमात्मा का कभी भी अवतार नहीं हुआ करता। महापुरुषों का अवतार हुआ करता है। विष्णु के अवतार हुए हैं, शंकर के अवतार हुए हैं। जो गीता में श्री कृष्ण जी ने कहा है—

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

संभवामि का तात्पर्य? महान पुरुषों की कामना होती है कि सृष्टि के कल्याण के लिये मैं हमेशा अवतरित होता रहूँ और उसी भाव से अलौकिक महापुरुष या सिद्ध पुरुष जो ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं, संसार के कल्याण

के लिये अवतरित होते हैं। सच्चिदानन्द परमात्मा कभी भी माता के गर्भ में प्रवेश नहीं करते। इसलिये जो जैन मत ने चौबीस तीर्थंकर माने, सनातनी लोगों ने चौबीस अवतार माने, वे भी इस संसार में प्रकट होकर अपनी लीला किये और इस संसार से चले गये। उनको भी यह पता नहीं चल पाया कि परमात्मा अक्षरातीत कौन है, कहाँ है, कैसा है?

किन सुपने ना श्रवणों।

किसी ने सपने में भी नहीं सुना कि अक्षरातीत कौन सी बला होती है। आप टी.वी. पर प्रवचन सुनते हैं। कितने बड़े-बड़े उद्भट विद्वान होते हैं। लाखों की संख्या इकट्ठी होती है, उनकी वाणी में सम्मोहन होता है। लेकिन कोई भी यह विवेचना नहीं करता कि क्षर और अक्षर से परे उत्तम पुरुष अक्षरातीत कौन है, कहाँ है,

कैसा है, उसको पाने का मार्ग क्या है? इन तथ्यों पर हर कोई मौन हो जायेगा। महामति जी के धाम-हृदय से अक्षरातीत कहला रहे हैं कि बड़े-बड़े अवतार, बड़े-बड़े तीर्थंकर, देवता, और दानव इस दुनिया से चले गये, लेकिन सपने में भी उनको अक्षरातीत का पता नहीं चल पाया। और वे अक्षरातीत महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान होकर लीला कर रहे हैं।

सो इत मिल्या नर नार।

वह सबके लिये इस प्रकार उपलब्ध हो गया कि परमधाम की आत्माओं को जगाने के लिये, मानव तन में आकर, श्री महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान हो गया। पुराण संहिता में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

अगाध अज्ञान जलधौ पतितासु प्रियासु च।

स्वयं कृपा अम्भोधौ ममज्ज पुरुषोत्तम॥

जब परमधाम की आत्मायें अज्ञानता के अगाध सागर में डूब जायेंगी, तो कृपा के सागर स्वयं सच्चिदानन्द परब्रह्म प्रकट होकर उनको अपनी कृपा के सागर में स्नान करायेंगे।

कल्पना कीजिये, पुराण संहिता स्पष्ट रूप से घोषित कर रही है कि ब्रह्मसृष्टियों के प्रियतम उनको इस भवसागर से पार ले जाने के लिये आयेंगे। और तभी वेदव्यास जी ने कहा था कि हे कलियुग वालों! तुम धन्य-धन्य हो।

कलिर्धन्यः कलिर्धन्यः कलिर्धन्यो महेश्वरः।

यत्र ब्रह्म प्रियाणाम् च वासनाः समुपाविशन्॥

इस अट्टाइसवें कलयुग को धन्य-धन्य है क्योंकि इस ब्रह्माण्ड में पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द की आत्मायें प्रकट होने वाली हैं। जो व्रज और रास में थीं, वही आत्मायें इस जागनी ब्रह्माण्ड में प्रकट होंगी, और उनके साथ स्वयं सच्चिदानन्द परब्रह्म प्रकट होकर अपना अलौकिक ज्ञान देकर सारे ब्रह्माण्ड को इस भवसागर से पार ले जाने का मार्ग दर्शायेंगे। इसी स्वरूप को कहा गया है प्राणनाथ जी का स्वरूप। इसी को कहते हैं विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप।

कतेब की परम्परा वालों ने उन्हें दूसरे रूप में माना। लेकिन वह सबका है। सूर्य सबको प्रकाश देता है, चन्द्रमा सबको प्रकाश देता है, हवा सबके लिये बहती है, वह वर्ग और जाति के आधार पर, प्रान्त के आधार पर, किसी प्रकार के भेदभाव की रेखा नहीं खींचती। वैसे ही

उस अक्षरातीत धाम धनी की वाणी सारे संसार के कल्याण के लिये है। इसको हिन्दू भी ग्रहण करें, मुस्लिम भी ग्रहण करें, क्रिश्चियन भी ग्रहण करें।

किसी भी मत-मतान्तर को मानने वाला हो, यदि उसके अन्दर ज्ञान की पिपासा है, उसके अन्दर जानने की जिज्ञासा है कि मेरी आत्मा का प्रियतम कौन है, कहाँ है, कैसा है, उसको मैं कैसे पाऊँ? यदि वह वर्ग विशेष छोड़कर अपने अन्दर ज्ञान की प्यास पालता है, तो निश्चित है कि उसको भी सच्चे ज्ञान का प्रकाश मिल जायेगा, और इसके लिये जागनी ब्रह्माण्ड में प्रकट हुए महामति जी के धाम-हृदय में बैठे हुए अक्षरातीत के चरणों की सान्निध्यता चाहिये।

पुराण संहिता में वर्णन है कि करोड़ गायत्री मन्त्र का जप करने से जो पवित्रता प्राप्त होती है, वह पवित्रता एक

ब्रह्ममुनि के सान्निध्यता में सत्संग करने से प्राप्त होती है। करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य किसी ब्रह्ममुनि परमहंस की सान्निध्यता में रहने मात्र से प्राप्त होता है। वाणी कहती है—

हकें दोस्त कहे औलिए, भए ऐसे जो बुजरक।

इनों को देखे से होए सबाब, जैसे याद किए होए हक॥

कल्पना कीजिए, जिन्होंने बाबा दयाराम को अपनी आँखों से देखा होगा, परमहंस महाराज राम रतन दास जी को देखा होगा, उनका दिल क्या कहता है? उन्होंने उन महान आत्माओं के धाम—हृदय में बैठे हुए धनी को देखा होगा, उनके प्रकाश को पाया होगा, और उन्हें यहीं बैठे-बैठे लगा होगा कि हमें परमधाम के आनन्द की अनुभूति हो रही है। इसीलिये सम्बोधित किया जा रहा है

कि यदि ब्रह्ममुनि परमहंसों की इतनी महिमा है, तो हकी सूरत की कितनी गरिमा होगी?

वे संसार के प्राणी धन्य-धन्य होंगे, जिन्हें श्री जी के साथ रहने का, श्री जी के साथ वार्ता करने का सौभाग्य मिला होगा। पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द अपने साथ पाँच हजार की जमात लेकर पन्ना जी पहुँचे थे, जिसमें पाँच सौ केवल ब्रह्मसृष्टि थे, डेढ़ हजार ईश्वरी सृष्टि थी, और तीन हजार जीव सृष्टि भी थे। इन सबने श्री प्राणनाथ जी को पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द का स्वरूप मानकर अपना घर-द्वार हमेशा-हमेशा के लिये छोड़ दिया था। जिन्होंने अपने धाम-हृदय में बैठे हुए अक्षरातीत से अपनी निसबत का सम्बन्ध जोड़ा, उन्होंने समझा—

एही अक्षरातीत है, एही हैं धनी धाम।

और जिन्होंने उस भाव से माना, उनको यहीं बैठे-
बैठे सारा आनन्द मिल गया।

सुर असुर सबों को ए पति, सब पर एकै दया।

देत दीदार सबन को सांई, जिन्हूं जैसा चीन्हया॥

जो उनको जिस रूप में पहचानता है, उसको वे उसी रूप में दर्शन देते हैं। जब कोई उन्हें व्रज बिहारी के रूप में देखना चाहता है, तो बंगला जी दरबार में उन्हें व्रज बिहारी के रूप में दर्शन होता है। कोई रास बिहारी के रूप में देखना चाहता है, तो रास बिहारी का दर्शन होता है। कोई परमधाम के युगल स्वरूप में देखना चाहता है, तो तन है महामति जी का, किन्तु वहीं साक्षात् युगल सवरूप के नूरी स्वरूप के दर्शन होने लगते हैं। कोई अरब का स्वरूप देखना चाहता है, कोई सद्गुरु

धनी श्री देवचन्द्र जी का स्वरूप देखना चाहता है, उनको उनके मन की कामना के अनुसार राज जी दर्शन देते हैं और सबकी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। तात्पर्य? जिन्होंने इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप को पहचान लिया, उनकी आत्मा निश्चित है कि जाग्रत हो गई। जब तक स्वरूप की पहचान नहीं होगी, तब तक जागनी का प्रश्न ही नहीं। धनी ने स्पष्ट कह दिया—

पहले मोको सब जानसी, तब होसी तुम्हारी पहचान।

हम तुम जाहेर हुए, दुनी कायम होसी निदान॥

परमधाम में अक्षरातीत नूरी स्वरूप से हैं। जागनी के ब्रह्माण्ड में वे श्री महामति जी के धाम—हृदय में आवेश स्वरूप से लीला कर रहे हैं। अब सुन्दरसाथ के ऊपर है

कि महामति जी के धाम-हृदय में बैठे हुए अक्षरातीत को पहचानें।

तारीफ महंमद मेहेंदी की, ऐसी सुनी न कोई क्याहें।

कई हुए कई होएसी, पर किन ब्रह्मांडों नाहें॥

श्री प्राणनाथ जी की महिमा के बराबर अब तक न तो कोई हुआ था, न है, और न कभी होगा, क्योंकि इस मायावी जगत में पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द अपनी पाँचों शक्तियों के साथ विराजमान होकर केवल महामति जी के अन्दर लीला कर रहे हैं। पाँचों शक्तियों के साथ श्री राज जी परमधाम में भी लीला नहीं कर सकते। अक्षर ब्रह्म अक्षर धाम में हैं, धनी जी का जोश और जाग्रत बुद्धि सत् स्वरूप के अन्दर हैं। परमधाम में केवल चिद्धन शक्ति की लीला होती है। जब तक सत् मिले नहीं, तब तक सत्,

चित्, आनन्द की पूरी लीला कहाँ से हो सकती है?

महामति जी के धाम-हृदय में सत् भी है, चित् भी है, आनन्द भी है, जोश भी है, और जाग्रत बुद्धि का स्वरूप भी है। दुनिया में कोई शब्द नहीं, जो इस स्वरूप की महिमा की व्याख्या कर सके। अब यह वाणी बतायेगी, रास से लेकर कयामतनामा तक की वाणी ही कहेगी कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में कौन हमारी आत्मा का उपास्य है?

यह ठीक है कि हमें अपनी आत्म-जाग्रति के लिये मूल मिलावा में विराजमान युगल स्वरूप की शोभा को दिल में बसाना पड़ेगा, अपनी आत्मा के चक्षुओं को मूल मिलावा में ले जाना पड़ेगा। लेकिन इस संसार में हमें अपना आराध्य हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी को बनाना पड़ेगा, क्योंकि जब तक यह जागनी ब्रह्माण्ड है, जागनी

की शोभा मात्र इसी स्वरूप को है। स्पष्ट कह दिया—

इन्द्रावती के मैं अंगे संगे, इन्द्रावती मेरा अंग।

जो अंग सौंपे इन्द्रावती, ताए प्रेमे खेलाउं रंग॥

सुख लेऊं सुख देऊँ, सुख में जगाऊं साथ।

इन्द्रावती को उपमा, मैं दई अपने हाथ॥

मैंने स्वयं अपने हाथों से सारी शोभा महामति जी को दे रखी है।

नाम सिनगार सोभा सारी, मैं भेस तुम्हारो लियो।

मैंने आपका नाम, आपकी शोभा, आपका श्रृंगार, आपकी वेश-भूषा ले रखी है।

जो प्राणनाथ जी पर फिदा होगा, वह मूल स्वरूप अक्षरातीत पर फिदा होगा। यही बात रखते हुए, सब

सुन्दरसाथ को जागनी की तरफ अपने कदम बढ़ाने चाहिये। उन्हें सन्तों, कवियों, भाषाविदों, छत्रसाल जी के गुरु, या देवचन्द्र जी के शिष्य के रूप में प्रस्तुत करने का नैतिक अधिकार किसी को भी नहीं है। छत्रसाल जी ने उनकी पहचान करके कहा था—

साथ समस्त के बीच में, जुगल धनी बैठाए।

कही तुम साक्षात् अक्षरातीत हो, हम चीन्हा तुम्हें बनाये॥

श्री ठकुरानी जी साथ संग ले, पधारे मेरे घर।

धनी बिना तुम्हें और देखे, सो नहीं मिसल मातबर॥

मेरे धाम धनी! यदि कोई आपको अक्षरातीत के अतिरिक्त किसी अन्य स्वरूप में देखता है, तो मैं यही समझता हूँ कि वह परमधाम की ब्रह्मसृष्टि ही नहीं है।



किरन्तन

फरेबी लिए जाए, मेरी रूह तूं आंखें खोल।
बीच बका के बैठ के, तें किनसों किया कौल॥

किरन्तन १११/१

आप अक्षरातीत धाम के धनी हमारे लिये सिखापन के वास्ते महामति जी के धाम-हृदय से कहलवा रहे हैं। इन्द्रावती जी की आत्मा अपने को सम्बोधित करते हुए कह रही हैं कि मेरी आत्मा! तू फरेबी लिये जा रही है।

फरेब किसको कहते हैं? फरेब का तात्पर्य है—माया, छल, कपट, झूठ। जो है, उसको दुनिया नहीं मानती। जो नहीं है, उसको सब कुछ मानती है।

है को नहीं कीजिए, सो तो कबूं न होए।

नाहीं को है कीजिए, ऐसा कर न सके कोए॥

सारा संसार क्या है? नहीं है। दुनिया कहती है कि संसार है। परमात्मा अनादि है, अखण्ड है, सत्, चित् आनन्द का स्वरूप है। दुनिया कहती है कि किसने परमात्मा को देखा है। जो नहीं है, उसको है बना रखा है, और जो है, उसके विषय में संशय पैदा कर दिया है।

फरेब का तात्पर्य है झूठ से। सारा दृश्यमान जगत क्या है— झूठ। सूर्य उगा हुआ है, भौतिक सत्य है, लेकिन अध्यात्म कहता है कि सूर्य पहले नहीं था, आज है, भविष्य में नहीं रहेगा। हमारा शरीर पहले नहीं था, आज दिखाई दे रहा है, भविष्य में नहीं रहेगा। यह पृथ्वी, यह आकाश, ये सितारे काल के गाल में समा जाने वाले हैं। संसार अपनी स्वप्न की बुद्धि से यही सोचता है कि ये वस्तुएँ हमेशा रहेंगी।

युधिष्ठिर से यक्ष ने पूछा था— "युधिष्ठिर! बताओ

कि संसार में सबसे बड़े आश्चर्य की बात क्या है?" युधिष्ठिर ने कहा था— "यक्ष! दूसरों को मरते हुए देखकर भी मनुष्य यह नहीं सोचता है कि एक दिन उसकी हालत भी यही होने वाली है। यह संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है।" यदि यही बोध हो जाये कि संसार की नश्वरता क्या है, तो निश्चित है कि विवेक दृष्टि जाग्रत हो जाये और मनुष्य कहाँ से कहाँ तक पहुँच जाये।

तात्पर्य क्या है? फरेब की फरेबी ने सबको ग्रस लिया है। यानि माया के आकर्षणों ने सबको अपने जाल में फँसा लिया है। दूसरे शब्दों में कहें, गोविन्द भेड़ा के भूत मण्डल में सभी फँस गये हैं।

इन्द्रावती जी की आत्मा अपने को सम्बोधित करते हुए कह रही हैं कि मेरी रूह! तू फरेबी लिये जाये। यानि इस संसार में आकर तू माया में इतनी गर्क क्यों हो गई

है। जिस व्यक्ति के अन्दर छल, कपट, झूठ, प्रपञ्च है, तो क्या कहते हैं, वह तो बहुत फरेबी है। फरेब का तात्पर्य ही है अज्ञान, मोह, माया, जिसके कारण यह जीव चौरासी लाख योनियों में भटकता है। ऐसा नहीं है कि इन्द्रावती जी के अन्दर फरेबी है। वे तो सुन्दरसाथ को सिखापन दे रही हैं, लेकिन पूरी वाणी में महामति जी ने कहीं भी सुन्दरसाथ को दोषी नहीं बनाया। सारा दोष अपने ऊपर ले लिया और हर जगह कहा कि मेरे अन्दर ये अवगुण हैं, मेरे अन्दर ये अवगुण हैं।

रोम रोम कई कोट अवगुन, ऐसी मैं गुन्हेगार।

ए तो कही मैं गिनती, पर गुन्हें को नहीं सुमार॥

कहीं भी सुन्दरसाथ के लिये सम्बोधन नहीं है कि सुन्दरसाथ के अन्दर कोई अवगुण है। जरूर एक जगह

दुःखी होकर कह दिया—

तुम स्याने मेरे साथ जी, जिन रहो विखे रस लाग।

पांउ पकड़ कहे इन्द्रावती, उठ खड़े रहो जाग॥

उसमें भी एक सिखापन के रूप में। हर जगह पूरे किरन्तन में आप यही देखेंगे। और तो और, रास से लेकर कयामतनमा तक आप यही देखेंगे कि इन्द्रावती जी ने अपने को सम्बोधित करके कहा है। यह सिखापन सब सुन्दरसाथ के लिये है। किरन्तन में कुछ ऐसे प्रकरण हैं, जिसमें इन्द्रावती जी ने इतने मार्मिक शब्दों में कहा है कि पढ़ने वाला ही भावुक हो जाये। कहा है—

अब सरमिंदी साथ में।

इन्द्रावती जी कहती हैं—

बकसों मेरी भूल।

आगे कहते हैं कि मैं तोबा करता हूँ। मैं तो तुम्हारे चरणों में रहने के लिये तैयार हूँ। यह किरन्तन पन्ना जी में उतरे, जब सुन्दरसाथ ने तरह-तरह की बातें की। उसी में यह उतरा—

साथ जी, ऐसी मैं तुमारी गुन्हेगार।

कर कर बानी सुनाई तुमको, किए खलक खुआर॥

अब इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही है कि मेरी आत्मा! तू इस झूठे संसार में फँसकर क्यों इस फरेबी माया को अपने अन्दर आत्मसात् करती जा रही है। क्योंकि दिल अपना होता है, दिल में रहता कोई और है। दिल में दो ही चीजें रहेंगी, या तो अक्षरातीत रहेंगे, या माया रहेगी। हमें चुनाव करना है कि अपने दिल में किसको बिठाना है।

सांसारिक रिश्तों के प्रति स्वाभाविक लगाव होता है। कोई विरला ही होता है, जो इन सारे बन्धनों को तोड़कर अपने दिल में प्रियतम को बसा पाता है। तभी एक सन्त कवि ने कहा है कि जब तक मेरे अन्दर "मैं" थी, तब "तू" नहीं था, और अब "तू" आ गया है, तो मेरे अन्दर "मैं" नहीं रह गई है।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।

प्रेम गली अति सांकरी, तामे दो न समाए॥

मेरे अन्दर जब प्रियतम का वास हो गया, तो मैं समाप्त हो गई, और जब तक मेरे अन्दर मैं थी, तब प्रियतम नहीं था। प्रेम की संकरी गली में दो नहीं रह सकते। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

दिल का स्वाभाविक कार्य है लीला करना। चेतन

जीव की चेतनता को लेकर चित्त में, मन में, बुद्धि में, अहम् में, जिसको अन्तःकरण कहते हैं, उसमें क्रियाशीलता रहती है। कहते हैं, पूरे परमधाम की लीला राज जी के और श्यामा जी के दिल से, पूरे कालमाया के ब्रह्माण्ड की लीला आदिनारायण के दिल से, और आपकी भी एक दुनिया है जिसकी लीला का संचालन आपका दिल स्वयं करता है। अब इस पर निर्भर करता है कि आपने अपने दिल में किसको बसाया है— संसार को या अपने प्रियतम को? इन्द्रावती जी की आत्मा संसार से हटाकर अपने दिल में धनी को बसाने के लिये प्रेरित करते हुए कहती हैं कि मेरी रूह! तू इस फरेबी में क्यों फँसी जा रही है?

मेरी रूह तू आंखा खोल।

आँखें खोलने का तात्पर्य है, सावधान हो जाना। ये

बात उस प्रसंग में कही जाती है, जब भूल ज्यादा हो जाती है। यदि कोई बच्चा बार-बार बिच्छू को पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाता है, तो माँ डाँटते हुए कहती है कि मेरी बात कान खोलकर सुन लो। यदि तूने पकड़ने की कोशिश की, तो मैं चाँटा मार दूँगी। तात्पर्य क्या है? जब किसी बात की अति हो जाती है, तो यह भाव प्रयुक्त किया जाता है।

आँखें बन्द रखने का तात्पर्य क्या है? यह भी आलंकारिक भाव है। जैसे कोई गलत चीज हो रही है, तो बड़े आदमी आकर क्या कहते हैं? क्या तुम्हारी आँखें बन्द थीं जो देख नहीं रहे थे?

आँखें खोलने का तात्पर्य क्या है? सावचेत हो जाना। आँखें बन्द करने का तात्पर्य है, असावधान हो जाना। दोनों विपरीत भाव में कहे जाते हैं। इन्द्रावती जी

की आत्मा कह रही हैं कि मेरी रूह! तू तो आँखें खोल।
 क्या तूने माया में डूबने के लिये ही यह खेल माँगा था?
 क्या माया में डूबना ही तेरे जीवन का वास्तविक लक्ष्य
 है। सब सुन्दरसाथ को छोटे दिन की लीला में यह
 सिखापन है कि अब हमें करना क्या है।

बीच बका के बैठ के।

मेरी आत्मा! तू इस बात को याद कर कि इस खेल
 में आने से पहले तूने परमधाम में अपने धनी से क्या
 वायदे किये थे।

उतरते अरवाहों सों हकें कहा, अलस्तो बे रब कुम।

जब रूहों की नजर इस खेल में आ रही थी, तो
 राज जी ने कहा था कि रूहों! जिस संसार में जा रही
 हो, वह भूल-भुलैया की दुनिया है और उसमें जाने

वाला हर कोई खुद को भुला देता है। क्या तुम मुझे भुला दोगी? रुहों का यही कहना था कि धाम धनी! आप तो हमारे जीवन के आधार हैं। क्या ये कभी सम्भव है कि चाँदनी चन्द्रमा को भुला दे, सूर्य का तेज सूर्य को भुला दे, सुगन्ध फूल को भुला दे, लहरें सागर को भुला दे? जब दोनों में अलगाव हो ही नहीं सकता, तो माया के अन्दर जाने के बाद भी कल्पना में भी हम आपको नहीं भुला सकतीं। उसी बात की याद दिला रहे हैं—

तैं किनसों किया कौल।

मेरी आत्मा! तू उस बात को याद कर। तूने किससे वायदा किया था—

सौ बार देखो आजमाए के, तो भी न भूले हम।

आज स्थिति क्या है? सौ बार आजमाना तो क्या,

व्रज, रास के पश्चात् इस जागनी के ब्रह्माण्ड में वाणी की बाँसुरी बजते हुए तीन सौ साल से ज्यादा समय बीत गया, कौन सावचेत हुआ है? एक तो योगमाया की बाँसुरी बजी थी, जिसमें सबने अपने घर-द्वार को छोड़कर, संसार को छोड़कर, शरीर को छोड़कर अपने प्रियतम से मिलन कर लिया था। उस समय तो प्रश्न था कि प्रियतम को पाना है, तो शरीर छोड़ना पड़ेगा।

आज तो कोई भी शर्त नहीं है। आज तो हमें लम्बी उम्र मिल रही है। गर्मी का कष्ट है नहीं, ए.सी. कमरे हैं, जाड़े का कष्ट नहीं, हीटर लगा है। अच्छे-अच्छे भोजन हम करते हैं, अच्छे-अच्छे कपड़े हम पहनते हैं। केवल राज जी की शर्त यह है कि चौबीस घण्टे में एक घण्टे क्या तुम मेरे लिये नहीं निकाल सकते। तो क्या कहते हैं—

मैं लिख्या है तुमको, जो एक करो मोहे साद।

तो दस बेर मैं जी जी करूं, कर कर तुमको याद॥

एक बार रिझाने में कितना समय लगता है? कुछ मिनट। राज जी का कहना है कि कुछ मिनटों के लिये सबको भुलाकर केवल मेरे बन जाओ। मैं तुम्हारे आगे दस बार जी-जी करने के लिये तैयार हूँ। व्रज की लीला में क्या था? पूरी निद्रा की लीला थी। बाँसुरी बजती थी, सखियाँ घर-द्वार छोड़कर यमुना के किनारे जाती थीं। उसमें भी कितने झंझट झेलने पड़ते थे? सास के अलग ताने, बस्ती वालों के अलग ताने, लेकिन योगमाया के ब्रह्माण्ड में भी जाते समय शरीर छोड़ना पड़ा। इस जागनी के ब्रह्माण्ड में तो कुछ भी नहीं करना है।

जागनी के ब्रह्माण्ड में तो गरिमा के साथ जी रहे हैं।

न शरीर छोड़ने का झंझट है, न यमुना के किनारे भागने का झंझट है। हाँ, अपने सुन्दर सजे-सजाये कमरों में बैठकर केवल प्रियतम को अन्दर की आँखों से निहारना है, उसको पुकारना है, और सारे संसार को कुछ मिनटों के लिये भुला देना है, लेकिन इतनी बड़ी हँसी हो रही है कि हमसे यही काम नहीं हो रहा।

पहले नींद थी, लेकिन अन्दर तड़प थी कि प्रियतम को कैसे पायें, चाहे व्रज हो, चाहे रास हो। इस जागनी के ब्रह्माण्ड में किसी-किसी आत्मा के अन्दर यह तड़प पैदा हो रही है कि हम चौबीस घण्टों में कुछ समय तो उसके लिये निकालें। यह याद रखिये, आपने अठारह-अठारह घण्टे काम करके जो कुछ कमाया है, सब यहीं रह जायेगा। आप एक तिनका भी लेकर नहीं जायेंगे।

एक बार गुरु नानक देव जी एक बहुत बड़े जमींदार

के पास पहुँचे। जमींदार ने दूसरों का धन छीन-छान करके इकट्ठा कर रखा था। गुरु नानक देव जी ने कहा— "जमींदार साहब! यह सुई दे रहा हूँ, यह सुई मुझको भगवान के पास जाने पर दे दीजियेगा।" जमींदार को तो लेने की आदत थी, देने की तो थी नहीं, ले लिया। फिर रात को सोचने लगा कि गुरु नानक देव जी मुझे यह जो सुई दे गये हैं, मैं मरने के बाद कैसे ले जाऊँगा?

सवेरे-सवेरे दौड़े-दौड़े वह आया और नानक देव जी से कहता है— "गुरुदेव! मैं जब मरूँगा तो शरीर को छोड़ जाऊँगा, फिर यह सुई कैसे ले जाऊँगा कि भगवान के सामने आपको दे दूँगा?" नानक देव जी कहते हैं— "रे पागल! जब तुम एक छोटी सी सुई यहाँ से लेकर नहीं जा सकते, तो इतना सब संग्रह किसके लिये कर रहे हो?"

तात्पर्य क्या है? हमारी आत्मा जिसको देख रही है,

वह सत्य नहीं है। हमारी आत्मा माया की फरामोशी के कारण जिसको नहीं देख पा रही है, वह हमारी निसबत के कारण अखण्ड रूप से जुड़ा हुआ है। उससे अनादि का रिश्ता है। धनी यही चाहते हैं कि उस अनादि निसबत को सुन्दरसाथ पहचाने और अपने धाम-हृदय में बैठाकर उसकी छवि को अखण्ड कर ले।

यदि हमारे दिल में संसार की चाहनायें हैं, तो निश्चित है कि शान्ति का सागर हमसे कोसों दूर रहेगा। यदि हमने अपने दिल में उस प्रियतम को बसा लिया, तो प्रेम, शान्ति, और आनन्द का सागर हमारे इस हृदय में उमड़ा करेगा, जिसकी एक बूँद पाने पर संसार तृप्त हो जाता है। लेकिन यही बात है, कबीर जी ने कहा है—

जल बीच मीन प्यासी।

मछली जल में रहने पर भी वैसे ही प्यासी रहती है, जैसे हमारी आत्मा अपने धाम-हृदय में अपने प्रियतम को न बसाने के कारण सांसारिक तृष्णाओं में व्यथित रहती है।

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।

तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती, हम ही बूढ़े हो जाते हैं, और सारा संसार तृष्णा के जाल में फँसा पड़ा है। जब तक तृष्णा के बन्धन समाप्त नहीं होंगे, तब तक किसी को भी शाश्वत शान्ति की आशा नहीं करनी चाहिये। आगे कहते हैं—

अर्स की खिलवत में।

अर्स में खिल्वत है।

पूरा परमधाम अनन्त है और अर्स में खिल्वत है।

खिल्वत किसको कहते हैं? जहाँ आशिक और माशूक की प्रेम की लीला हो, जहाँ अक्षरातीत श्री राज जी अपनी आत्माओं के साथ अभिन्न क्रीड़ा कर रहे हों, जहाँ प्रेम का सागर और आनन्द का सागर अपनी लहरों के साथ क्रीड़ा कर रहे हों, जहाँ सागर की लहरें सागर से अठखेलियाँ कर रही हों, उसको कहते हैं खिल्वत।

प्राचीन काल में राजाओं के अन्तःपुर हुआ करते थे या बादशाहों के हरम हुआ करते थे। उसको खिल्वत शब्द से सम्बोधित किया जाता है।

यदि परब्रह्म आनन्दमयी है, तो आनन्द कैसे है? मौसम्मी में रस है, लेकिन जब तक उसको निचोड़ा न जाये, वह रस द्रवित न हो, बहने न लगे, तब तक उसको कैसे कहा जा सकता है कि इसमें रस भरा है या नहीं। यदि सच्चिदानन्द परब्रह्म आनन्द का स्वरूप है, तो

उसके आनन्द का स्वरूप जब तक क्रीड़ा नहीं करेगा, उसके आनन्द की साक्षी नहीं मिल सकती। जब वह आनन्द का सागर क्रीड़ा करता है, तो उसको कहते हैं खिल्वत प्रगट हो रही है। खिल्वत, वहदत, निसबत, ये सब कुछ क्या है? हकीकत के स्वरूप हैं।

एक प्रश्न आया करता है कि परमधाम में राज जी हैं या राज जी के अन्दर परमधाम है? जब यह बात कही जाती है कि राज जी के स्वरूप का फैलाव ही पच्चीस पक्ष है, तो पच्चीस पक्षों में तो रंगमहल भी आता है, और रंगमहल में राज जी युगल स्वरूप के रूप में विराजमान हैं। सखियों के रूप में भी वही हैं। तो स्वाभाविक ही मन में जिज्ञासा हुई कि राज जी से परमधाम है या परमधाम से राज जी हैं? हमारी भौतिक दृष्टि से यह चीज मन्थन का विषय हो सकती है, लेकिन इसको एक दृष्टान्त से

समझें।

जैसे— एक घड़ा है, आकाश में पड़ा है। लेकिन आकाश इतना सूक्ष्म है कि वह घड़े के अन्दर भी विद्यमान है। यदि यह कहें कि आकाश में घड़ा है तो भी ठीक, घड़े में आकाश है तो भी ठीक।

उसी तरह, जो कुछ लीला रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है, परमधाम के पच्चीस पक्ष, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, सखियाँ, खूब खुशालियाँ, रंगमहल, सब कुछ अक्षरातीत के ही दिल का फैलाव है। अक्षरातीत के दिल में इश्क एवं आनन्द का जो बहता हुआ रस है, वही यमुना जी के रूप में प्रवाहित हो रहा है। अक्षरातीत के दिल का सागर ही आठों सागरों के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है और अक्षरातीत के दिल का फैलाव ही पच्चीस पक्षों के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। जो दिल है, वह है मारिफत का

स्वरूप।

हकीकत और मारिफत में क्या अन्तर है? मारिफत से हकीकत प्रगट होती है। हकीकत है लीला। जब लीला प्रकट होती है, तो कहते हैं कि यह हकीकत है। परमधाम में श्यामा जी हैं, सखियाँ हैं, खूब खुसालियाँ हैं, पच्चीस पक्ष हैं, इसको कहेंगे हकीकत। जैसे, सागर जब अपनी लहरों के साथ क्रीड़ा करता है, तो उसको कहते हैं हकीकत। एक ऐसी स्थिति आ जाये कि लहरें बिल्कुल शान्त हो जायें। ऐसा लगे कि लहरें हैं ही नहीं, उसको कहते हैं मारिफत का स्वरूप। संक्षेप में बस इतना ही समझ सकते हैं। अर्थात् जब राज जी अपने निज स्वरूप में मारिफत के स्वरूप में हैं, तब न श्यामा जी हैं, न सखियाँ हैं, न अक्षर ब्रह्म हैं, न महालक्ष्मी हैं, लेकिन ये सभी अनादि हैं।

पांचों अद्वैत एक ठौर।

परमधाम भी अनादि है, श्यामा जी भी अनादि हैं, अक्षर ब्रह्म भी अनादि हैं, लेकिन ये सब कुछ हकीकत के रूप में राज जी के दिल का ही सारा फैला हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। उसको कहते हैं खिल्वत। अक्षरातीत अनादि है, तो उनकी लीला भी अनादि है। यदि अक्षरातीत का प्रेम अनादि है, तो प्रेममयी लीला भी अनादि है, इसलिये खिल्वत भी अनादि है। खिल्वत भी अखण्ड है। वहदत भी अखण्ड है। निसबत भी अखण्ड है। महामति जी कह रहे हैं—

अर्स की खिलवत में।

मेरी आत्मा! परमधाम के उस खिलवतखाने में, उस मूल मिलावा में, जहाँ प्रेम और आनन्द के सिवाय

कुछ है ही नहीं।

हक की वाहेदत।

"हक की वाहेदत" का तात्पर्य क्या है? अर्स भी राज जी का और वहदत भी राज जी की। खिल्वत, वहदत, निसबत भी राज जी की। निसबत से वहदत है, वहदत से खिल्वत है, और यह सब कुछ कहाँ है? परमधाम में।

"हक की वाहेदत" का क्या तात्पर्य है? अक्षरातीत ने लीला रूप में जितने भी पदार्थ धारण किये हैं, सबमें एक शोभा, एक लीला, एक आनन्द, एक श्रृंगार, एक सौन्दर्य भरा हुआ है। उसको कहते हैं वहदत। प्रश्न यह है कि क्या वहदत का स्वरूप केवल रूहें हैं? जो शोभा श्यामा जी की है, वही शोभा महालक्ष्मी की है, वही

शोभा खूब खुशालियों की भी है। जितना इश्क श्यामा जी के अन्दर है, उतना ही इश्क सखियों के अन्दर है, उतना ही इश्क महालक्ष्मी के अन्दर है, उतना ही इश्क ज़र्रे-ज़र्रे में है। एक हाथी को और एक खरगोश को लड़ा दीजिये, दोनों की ताकत बराबर है। यह मत समझिये कि परमधाम में जो पशु-पक्षी हैं, वे दुनिया के पशु-पक्षियों की तरह हैं। वाणी में जरूर कहा गया है—

एक-एक मोमिन के अलेखे सेवक।

यह भी कहा गया है—

बांदियां बारह हजार की।

मोमिनो के सेवक हैं, सखियों की सेविकायें हैं। ये सारी बातें हमें दुनिया के भावों से समझाई गई हैं। यदि परमधाम में नौकरानियाँ रहती हैं, यदि परमधाम में सेवक

रहते हैं, तो वह परमधाम नहीं है। वहदत का रहस्य ही यही है।

मैं हक अर्स में जुदा जानती, ल्यावती सब्द में बरनन।

जड़ में सिर ले ढूँढती, हक आये दिल बीच चेतन॥

सुन्दरसाथ की यही तो भ्रान्ति है। जब परिक्रमा ग्रन्थ को पढ़ते हैं, तो क्या सुनते हैं कि तीसरी भूमिका की पड़शाल के पश्चात् सुन्दरसाथ वनों में जाता है, साग-सब्जियाँ लाता है, बन्दर टोकरे लेकर आते हैं, और वे फलों, शाक-सब्जियों के टोकरे देते हैं। हम क्या सोचते हैं? बन्दर हमारी सेवा कर रहे हैं। जिसको आप रिझाते हैं, वही तो बन्दर भी बना हुआ है।

खिलोने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।

ये दूसरा तो केहेलाए, जो कोई होए इमदाए॥

जब आप संध्या आरती में गाते हैं कि "पूरण ब्रह्म बिन और न कोई, सच्चिदानन्द बिन और न कोई", तो उस परमधाम में जब अक्षरातीत के सिवाय दूसरा है ही नहीं, तो फिर आपने कहाँ से कल्पना कर ली कि परमधाम में हमारे सेवक हैं। खूब खुशालियों को आप सेविका न समझिये। खूब खुशालियों की वही शोभा है, जो श्यामा जी की शोभा है।

शोभा में, श्रृंगार में, सुन्दरता में, इश्क में, कोई भी खूब खुशाली श्यामा जी से कम नहीं है। यदि परमधाम में विभाजन रेखा खींच दी जाये कि श्यामा जी सखियों से ज्यादा सुन्दर हैं, जैसे यहाँ पटरानी अपनी नौकरानी से अच्छे कपड़े पहनती है, नौकरानी से ज्यादा सुन्दर दिखती है, तो मैं यही कहूँगा कि वह परमधाम नहीं, कालमाया के किसी राजा का कोई महल है।

वाहेदत कहिये इनको, तन मन एक इश्क।

जुदायगी जरा नहीं, वाहेदक का बेसक॥

वहदत उसको कहते हैं, जिसमें सबके तन की शोभा एक, सबके मन में एक बात, सबका इश्क बराबर हो। यदि परमधाम में वहदत है, तभी तो इश्क रब्द का निपटारा नहीं हो सका। यदि किसी का इश्क कम या अधिक हो जाता, तो निर्णय वहीं हो जाता, खेल बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन वहदत में न निर्णय हो सकता था, और न ये बताया जा सकता था कि किसका इश्क घट-बढ़ है। अक्षरातीत बताना चाह रहे हैं कि तुम मेरे ही स्वरूप हो, मेरे और तुम्हारे बीच में कोई भी पर्दा नहीं है, किन्तु लीला में पर्दा बन जाता है।

हम राज जी को रिझाते हैं, और राज जी हमको

रिझाते हैं। हम सोचते हैं कि हम तो सखियाँ हैं, श्यामा जी सोचती हैं कि मैं तो श्यामा जी हूँ, महालक्ष्मी सोचती हैं कि मैं महालक्ष्मी हूँ, यही तो भूल है। अक्षरातीत बताना चाह रहे हैं कि तुम सभी मेरे स्वरूप हो, इसलिये हक की वहदत है। अर्स अक्षरातीत के दिल से है। अर्स में खिल्वत है, और खिल्वत में हक की वहदत है। सभी एक स्वरूप हैं, कहीं कम या अधिक नहीं।

और तो और, चौथी भोम में नृत्य की हवेली में नृत्य होता है। ऐसा न समझिये कि केवल सखियाँ ही आनन्द लेती हैं। जब लन्दन में कुछ होता है, तो टी.वी. के पर्दे से सारी दुनिया देख लेती है। यदि कालमाया के ब्रह्माण्ड में ऐसा होता है, तो क्या परमधाम में परमधाम का नृत्य एक चौथी भूमिका के अन्दर कैद होकर रह जायेगा? जब परमधाम में चौथी भूमिका में नृत्य होता है, तो उस नृत्य

का आनन्द ज़र्रे-ज़र्रे में प्रस्फुटित है और यह सबसे बड़ी चीज ध्यान में रखने वाली होती है कि परमधाम के आनन्द को व्यक्त करने के लिये नृत्य की लीला दर्शायी गई है।

नृत्य किसको कहते हैं? जब हृदय में आनन्द हिलोरें मारने लगे, तो शरीर के अंग-प्रत्यंग स्पन्दन करने लगते हैं, उसको कहते हैं नृत्य। इस दुनिया में कलात्मक रूपों से उसको व्यक्त किया जाता है, तो कहते हैं कि नृत्य हो रहा है। अन्यथा परमधाम के आनन्द का सागर अगर फूट जाये, वह प्रवाहित होने लगे, उसमें सभी ओत-प्रोत हो जायें, तो उसे कहते हैं नृत्य। उस रस में खूब खुशालियाँ, परमधाम के पच्चीस पक्ष सभी डूब जाते हैं। ज़र्रे-ज़र्रे में वह आनन्द फैल जाता है। नृत्य की लीला से यही आशय समझना

चाहिये।

महामति जी कह रहे हैं— अर्स में खिल्वत है और उसके अन्दर हक की वहदत है। खिल्वत केवल श्यामा जी ही नहीं हैं।

खिल्वत किसको कहते हैं? आसिक का दिल ही मासूक का खिल्वत होता है। आसिक के दिल में मासूक की शोभा बसी होती है।

रोम—रोम में रमि रह्या, पिउ आसिक के अंग।

इस्कें ले ऐसा किया, कोई हो गया एकै रंग॥

जब आशिक के रोम—रोम में माशूक की शोभा बसी होती है, तो उसका दिल ही खिल्वतखाने का रूप होता है। राज जी के दिल में श्यामा जी बसी हैं, सखियाँ बसी हैं, खूब खुशालियाँ बसी हैं, ज़र्ज़र राज जी के दिल

से प्रकट हुआ है। तो सबका निवास कहाँ है, राज जी के दिल में। और जो राज जी को रिझाने के लिये जितने हैं, चाहे श्यामा जी हों, चाहे सखियाँ हों, चाहे खूब खुशालियाँ हों, चाहे पशु-पक्षी हों, वे राज जी को रिझा रहे हैं। एक आशिक है, एक माशूक है।

मासूक तुम्हारी अंगना, तुम अंगना के मासूक।

योगमाया के ब्रह्माण्ड में तो विभाजन रेखा खींची जा सकती है कि यह आशिक है और यह माशूक है, लेकिन परमधाम में यह रेखा नहीं खींची जा सकती। इस कारण उस परमधाम की स्वलीला अद्वैत में हर कोई आशिक है और हर कोई माशूक है। इसलिये राज जी का दिल भी खिल्वत है, श्यामा जी का दिल भी खिल्वत है, सखियों का दिल भी खिल्वत है, खूब खुशालियों का दिल भी खिल्वत है। मारिफत की नजर से देखें, तो जो रिझा रहा

है, वह रीझने वाले के लिये अपने दिल में खिल्वत की भूमिका अदा कर रहा है। जाहिरी रूप में आप खिल्वतखाना मूल मिलावा के रूप में मानें, पाँचवीं भूमिका को मानें, हमारी व्यक्तिगत मान्यता हो सकती है। लेकिन, माशूक का निवास तो आशिक के दिल में ही होता है।

कल्पना कीजिये, किसी एकान्त स्थान में दो मित्रों को छोड़ दीजिये, दोनों में यदि प्रेम न हो, तो एक का मुँह पूर्व होगा, एक का मुँह पश्चिम होगा। यदि दिल में प्रेम नहीं, तो एकान्त स्थान से कोई लाभ नहीं। यदि हम कह दें कि मूल मिलावा ही खिल्वत है, तो क्या परमधाम के शेष अन्य स्थानों में प्रेम की लीला नहीं होती?

जब दिल का ही फैलाव है, तो पूरा परमधाम राज जी के दिल से ही है। राज जी के दिल में सम्पूर्ण

परमधाम का अस्तित्व है। दिल ही खिल्वत है। श्यामा जी और सखियों के दिल में अक्षरातीत बसते हैं। जब वे रिझाते हैं, तो उनका दिल भी खिल्वत है। श्यामा जी का दिल भी खिल्वत है, सखियों का दिल भी खिल्वत है, खूब खुशालियों का दिल भी खिल्वत है। यानि आशिक का दिल माशूक की खिल्वत होता है। इसको कहते हैं—

अर्स की खिलवत में, हक की वाहेदत।

मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि श्यामा जी खिल्वत का स्वरूप हैं, सखियाँ वहदत का स्वरूप हैं। लेकिन बातिनी रूप में हमें मानना पड़ेगा कि रिझाने वाले आशिक का दिल ही खिल्वत है, और जितने रिझाने वाले हैं, सबके अन्दर वहदत का स्वरूप है। वहदत के अन्दर सखियाँ हैं, पशु-पक्षी हैं, खूब खुशालियाँ हैं। और तो और, परमधाम का ज़र्रा-ज़र्रा भी राज जी को, युगल

स्वरूप को रिझाता है।

जब राज जी तीसरी भूमिका की पड़शाल पर खड़े होते हैं, तो यमुना जी का जल भी मचलता है कि हम भी धनी का दीदार करें। वहाँ की धरती, वहाँ की हवा, वहाँ का आकाश, अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को रिझाता है क्योंकि ज़र्रे-ज़र्रे में अक्षरातीत के सिवाय कुछ है ही नहीं। इस दुनिया के अनुसार यदि हम सोचें, तो परमधाम और यहाँ की लीला में धरती-आकाश का अन्तर आयेगा।

हक इलम ले देखिये, तो होइये अर्स माफक।

परमधाम में श्री राज जी के जयकारे नहीं बोले जाते, राज जी के चरणों में प्रणाम नहीं किया जाता, लेकिन इस दुनिया में सब करना पड़ता है। राज जी के

जयकारे भी बोलते हैं, राज जी को प्रणाम भी किया जाता है। किसलिये? क्योंकि यहाँ लीला रूप में दिखाना है। परमधाम में कौन किसको बड़ा मानेगा? कौन किसके जयकारे बोलेगा? कौन किसके चरणों में प्रणाम करेगा? जरूर लिखा है—

आये आये के चरणों लागे।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वहाँ भी भक्त और भगवान की लीला चल रही है। एक स्वामी है और एक उसके अधीनस्थ है। स्वलीला अद्वैत वहदत में अक्षरातीत से भिन्न की कल्पना हो ही नहीं सकती। धाम धनी को यही बताना था, जिसके लिये वाणी का अवतरण हुआ, क्योंकि हकीकत में मारिफत के स्वरूप की पहचान नहीं हो सकती। और जब यह मारिफत का इल्म उतरा, सागर, श्रृंगार, खिल्वत की वाणी उतरी, तो

सबने समझा कि परमधाम की मारिफत क्या है, निसबत की मारिफत क्या है, वहदत की मारिफत क्या है, खिल्वत की मारिफत क्या है।

खिल्वत की हकीकत है श्यामा जी। खिल्वत की मारिफत है राज जी का दिल, आशिक का दिल। वहदत की हकीकत हैं श्यामा जी, सखियाँ, महालक्ष्मी। वहदत की मारिफत हैं राज जी, क्योंकि वहदत प्रकट कहाँ से हुई है? राज जी के दिल से।

बैठ के बातें जो करी।

इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि मेरी आत्मा! तू यह तो सोच कि तूने अपने धाम धनी से जो बातें कही थीं कि धाम धनी! आप सौ बार भी आजमाकर देखिये, माया हमारा कुछ भी नहीं कर सकेगी, वे सारी

बातें कहाँ चली गयीं?

सो कहाँ गई मारिफत।

अब मारिफत का स्वरूप क्या है? अक्षरातीत का स्वरूप। मारिफत कौन सी बात है? मारिफत का तात्पर्य है, धनी के स्वरूप की पूर्ण पहचान। रूहों का एक ही कहना था कि धाम धनी! चाहे कुछ भी हो जाये, समुद्र सूख सकता है, चन्द्रमा की किरणें कष्टकारी हो सकती हैं, जलन कर सकती हैं, बालू चीनी हो सकती है, लेकिन हम आत्मायें आपको कभी पल-भर के लिये भी भुला दें, यह कभी सम्भव नहीं है। हमारा और आपका तो अखण्ड नाता है। ये मारिफत की बातें हैं, जिसमें रूहों ने अपने से धनी की पहचान का दावा किया था।

जब लीला होती है तो मारिफत से हकीकत प्रगट

हो जाती है, और लीला छिपेगी तो हकीकत मारिफत में विलीन हो जाती है। इसको कहते हैं मारिफत का स्वरूप। जब रूहों ने अपने को धनी से एकरूप करके बताया कि धाम धनी! हम तो आपके अंग हैं, आपके तन हैं, भला सपने में भी हम आपको भूला सकती हैं। उसी बात को श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरी आत्मा! जो तूने मारिफत की बातें परमधाम में कही थीं, वे बातें कहाँ चली गयीं?

यह हँसी के रूप में सम्बोधन किया गया है, जैसे कोई व्यक्ति कहता है कि मैं यह कर दूँगा, मैं वह कर दूँगा। जब समय आता है, वह काम नहीं करता, तो जिन्होंने वे बात सुनी होती हैं, क्या कहते हैं? पहले तो आप इतनी डींगे मारा करते थे, अब वह बातें कहाँ चली गयीं।

महामति जी वही सम्बोधन कर रहे हैं कि मेरी रूह! तूने तो कहा था कि धाम धनी! किसी भी स्थिति में हम आपको भुला नहीं सकतीं, और राज जी यहाँ कह रहे हैं कि चौबीस घण्टों में कुछ पल भी तुम मुझे अपना बना कर देखो। वेद का एक मन्त्र है—

वयम् तव, त्वम् अस्माकम्।

हम तुम्हारे, तुम हमारे।

लेकिन क्या हम राज जी के लिये ऐसा कह सकते हैं? वाणी पढ़कर कह देंगे, भजन गायेंगे कह देंगे, किसी प्रसंग में कह देंगे। लेकिन हमारा दिल जानता है कि राज जी हमारे लिये या तो दूसरे नम्बर पर होंगे, या तीसरे नम्बर पर होंगे, या चौथे नम्बर पर होंगे, या पाँचवे नम्बर होंगे। कोई विरला सुन्दरसाथ ही होगा, जो राज जी को

पहले नम्बर पर रखता होगा। जो राज जी को पहले नम्बर पर रखेगा, देर-सवेर उसका दिल अवश्य अर्श होगा। देर-सवेर उसको अक्षरातीत का दीदार अवश्य होगा। उसके दिल में युगल स्वरूप की शोभा अवश्य विराजमान होगी।

महामति जी सुन्दरसाथ को प्रेरित करने के लिये यही बात कह रहे हैं कि जो हमने बातें की थीं, वे सारी बातें कहाँ चली गयीं कि यह फरेब की फरेबी हमें व्याकुल कर रही है? कहीं भी जाइये, क्या दिख रहा है? सारे संसार में आप चले जाइये, स्वलीला अद्वैत दर्शन का ज्ञान संसार में कहीं भी नहीं है।

वेदान्त दर्शन की व्याख्या में शंकराचार्य जी ने जीव-ब्रह्म एकता का अद्वैत दर्शन प्रतिपादित किया। माधवाचार्य ने द्वैत का प्रतिपादन किया। वल्लभाचार्य ने

शुद्ध अद्वैत दिया। लेकिन स्वलीला अद्वैत, आज तक संसार में तारतम ज्ञान के बिना कोई बता नहीं सका। जहाँ एक अक्षरातीत ही लीला रूप में असंख्य रूपों में लीला कर रहा हो, जो माया से सर्वथा परे है। द्वैत है यह कालमाया, अद्वैत है योगमाया, और स्वलीला अद्वैत है परमधाम। उस परमधाम का ज्ञान आज तक सृष्टि में कहीं नहीं था।

हक तरफ जाने नूर अक्षर, और दूजा न जाने कोए।

पर बातून सुध तिनको नहीं, हक इलम दिखावे सोए॥

अक्षरातीत की पहचान किसको है? तारतम ज्ञान के बिना सृष्टि में कोई कह ही नहीं सकता कि मैंने अक्षरातीत को जाना है। सारी दुनिया सबलिक को अक्षर मानती है, केवल को अक्षरातीत मानती है। ये तो अक्षर

की पञ्चवासनाओं की बात है। जो माया की सृष्टि है, वह तो निराकार-वैकुण्ठ से आगे कदम बढ़ा ही नहीं पाती।

सुपन बुध बैकुण्ठ लो, या निरंजन निराकार।

सो क्यों सून्य को उलंघ के, सखी मेरी क्यों कर लेवे पार॥

आज आत्म-मन्थन की घड़ी है कि इतने अनमोल ज्ञान को लेकर हमने अभी तक क्या किया? क्या सारी सृष्टि को हमने परमधाम के प्रेम की बातें कहीं? जरूर महामति जी ने बार-बार कहा है—

अब वाणी अद्वैत मैं गाऊँ, निज स्वरूप की नींद उड़ाऊँ।

और यह भी कहते हैं—

प्रेम प्याला भर भर पिऊँ, त्रैलोकी छाक छकाऊँ।

लेकिन प्रेम का रस सुन्दरसाथ में क्यों नहीं बरसता है? इसलिये, क्योंकि जो प्रेम का सागर है, जब तक हम

उसको दिल में नहीं बसायेंगे, हमारे हृदय से प्रेम की धारा कभी भी प्रवाहित नहीं हो सकती। जब तक हमारे हृदय में प्रेम का सागर नहीं विराजमान होगा, तब तक हमारा हृदय तृष्णाओं से अलग होकर कभी निर्विकार भी नहीं हो सकता। जब तक हृदय निर्विकार नहीं होता, हृदय कोमल नहीं होता, तब तक उसके अन्दर आध्यात्मिक जाग्रति भी नहीं आ सकती।

इस कारण सुन्दरसाथ को आध्यात्मिक ज्ञान की ज्योति अपने हृदय में जलानी होगी। केवल अपने लिये नहीं। अपने लिये तो हर कोई खाता-पीता है। संसार में आने के पश्चात् परमधाम के ब्रह्ममुनियों का यह कर्त्तव्य होता है कि जिस आध्यात्मिक आनन्द में हम डूबे हुए हैं, उसका रस संसार के प्राणियों को भी दें।

आप देखते हैं, जहाँ कहीं से शान्ति की एक किरण

दिखाई देती है, दुनिया उस पर पागल की तरह लट्टू होकर टूट पड़ती है। हमारे पास हीरों की एक बहुत बड़ी तिजोरी है, लेकिन उसके ताले बन्द हैं। हमने चाबी को खुद ही अपनी जेब में छिपा रखा है, और कहते हैं कि चाबी खोज रहे हैं, मिल नहीं रही।

तात्पर्य क्या है? जितनी तेजी से हमको ज्ञान फैलाना चाहिये था, इतनी तेजी से हमने फैलाया नहीं। हम सीमित दायरों में बँधकर रह गये। मिशनबद्ध होकर कार्य करना कुछ अलग होता है। बुद्ध के शिष्यों ने शून्यवाद को सारी दुनिया में फैला दिया था, किन्तु आज अफगानिस्तान, ईरान, पाकिस्तान, मध्य एशिया में जाइये। जावा, सुमात्रा, और यहाँ तक कि सिंगापुर, मलेशिया, इण्डोनेशिया, आस्ट्रेलिया में जाइये, बौद्ध दर्शन कहाँ तक है।

भारत के सभी प्रान्तों में तारतम ज्ञान का प्रकाश नहीं है, सभी प्रान्तों में इसकी झलक भी देखने को नहीं मिल पा रही है। केरल में जाइये, तमिलनाडू में जाइये, कर्नाटक में जाइये, वाणी की ज्योति टिमटिमाते हुए दीपक की तरह कहीं देखने को मिल जाये, तो हमारी बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

तीन सौ साल से हमें अनमोल थाती दी गई, किसके लिये? यह नीति का कथन है कि ज्ञान जितना छिपाया जाता है, उतना ही कम होता जाता है, और जितना बाँटा जाता है, उतना ही बढ़ता जाता है। ब्रह्मवाणी के ज्ञान की ज्योति को हम जितना फैलायेंगे, उतना ही बढ़ेगी। धनी ने क्या कहा है—

सो तो दिया मैं तुमको, सो खुले न बिना तुम।

जो मेरी सुध दो औरों को, तित चले तुम्हारा हुक्म॥

हमारे समाज में झगड़े किसलिये चल रहे हैं? केवल हुक्म के नाम पर, हमारा वर्चस्व, हमारा वर्चस्व। आप अपने वर्चस्व को भूल जाइये, धनी के वर्चस्व को प्रकट कीजिये, आपका वर्चस्व संसार में कायम हो जायेगा। जो धनी को करेगा, वह स्वयं उजागर हो जायेगा। लेकिन इस बात को न समझने के कारण सारे समाज में झगड़े, चारों और गुटबँदियाँ, और राग-द्वेष की दीवारें खड़ी होती हैं।

महामति जी कह रहे हैं कि मेरी आत्मा! तूने जो परमधाम में बैठकर धनी से कहा था कि धाम धनी! किसी भी स्थिति में हम आपको नहीं भूलेंगी, मारिफत

की वे बातें कहाँ चली गयीं?

यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि आज सारा संसार शान्ति के लिये छटपटा रहा है। विदेशों में करोड़पतियों के बेटे शान्ति की तलाश में भारत में आकर नंग-धड़ंग घूमा करते हैं। कोई जटा-जूट रख लेता है। कोई समुद्र के किनारे लेटा रहता है। आखिर उनको क्या कमी है? करोड़ों की दौलत तो उनके पास घरों में पड़ी हुई है। वे शान्ति नहीं पा सकते। उपनिषदों में कहा गया है—

तमात्मस्थं ये अनुपश्यन्ति धीराः तेषां शान्तिः शाश्वतम् न इतरेषां।

अपनी आत्मा में स्थित होकर जिन्होंने उस सच्चिदानन्द परब्रह्म का साक्षात्कार किया होता है, केवल उन्हीं के पास शाश्वत शान्ति होती है, अन्य के पास नहीं। सच यह है कि आज हिन्दू समाज में एक हजार पन्थ हैं,

जिनमें से सात सौ का कोई नैतिक आधार ही नहीं है। शेष जो तीन सौ पन्थ हैं, उनमें भी लगभग ढाई सौ वेद के विरुद्ध हैं। सारे हिन्दू समाज के मत-पन्थों को सत्य की ज्योति से आलोकित करना आपका कर्त्तव्य था।

इसके अतिरिक्त जितने अन्य मत-मतान्तर हैं, चाहे इस्लाम मत हो, ईसाई मत हो, मूसा का मत हो, हर मत-पन्थ को आप अपनी तारतम वाणी का रसपान कराकर तृप्त कर सकते थे, लेकिन आप इस गुनाह के दोषी हो गये। जब सातवें दिन की लीला होगी, सारी दुनिया के जीव कहेंगे कि जब हमारे पास तारतम ज्ञान का प्रकाश ही नहीं फैला, तो हम क्या करें? यह तो ब्रह्ममुनियों को चाहिये था कि ब्रह्मवाणी की ज्योति को संसार में फैलाते।

कल्पना कीजिये, आज तो हमारे पास सारे

संसाधन हैं। हम हवाई जहाज से जा सकते हैं, तीव्रगामी ट्रेनों से यात्रा कर सकते हैं, वातानुकूलित बसों में यात्रा कर सकते हैं। कहीं भी जाते हैं, खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था रहती है। महामति जी के उस तन को याद कीजिये, जो अपनी आत्माओं को जगाने के लिये जब दीव बन्दर से निकलता है, तो मस्कत बन्दर होते हुए अब्बासी बन्दर जाता है। रेगिस्तान की तपती दोपहरी में भी घूमता है। वहाँ से लौटने के पश्चात् पाँच सौ की जमात लेकर सूरत से चल पड़ता है और पन्ना जी तक पहुँचते-पहुँचते संख्या पाँच हजार तक हो जाती है।

मन्दसौर में आठ महीने भीख के टुकड़ों पर उस तन को निर्वाह करना पड़ता है। कामा पहाड़ी से उदयपुर तक पहुँचने में भी कई दिनों तक अन्न का एक दाना नहीं पहुँचता। धूप वह झेलता है, शीत लहरी वह झेलता है।

हजारों व्यक्तियों के साथ जब वह भ्रमण कर रहा होता है, तो क्या होता होगा? कहीं पड़ाव पड़ता होगा, टेन्ट लेकर कोई थोड़े ही चलता होगा। वृक्षों के नीचे रात गुजरती होगी, कंपकंपाती ठण्ड और ऊपर से वर्षा की पानी की बूँदें। पेट में कुछ भी नहीं, क्योंकि भिक्षा में जो मिलेगा, वही तो खाना है।

आखिर जिसके आशीर्वाद मात्र से पन्ना की धरती हीरा उगल सकती है, जिनकी चरण-रज पाने के लिये लक्ष्मी जी किलकिला के रूप में बह रही हैं कि कब पूर्णब्रह्म आयें और मेरे अन्दर आकर अपना चरणामृत डालें ताकि मैं शुद्ध हो जाऊँ, आखिर वे भी तो चमत्कार दिखाकर ऐश्वर्य के सारे साधन इकट्ठा कर सकते थे। संसाधनों से रहित होकर महामति जी के उस तन ने सुन्दरसाथ को सिखापन दिया है कि आने वाले समय में

इस ज्ञान की थाती को पाकर, तुम अपने मठों और मन्दिरों में आराम न करने लगना।

यह ध्यान रखिये कि ज्ञान के प्रसार के लिये बुद्ध ने कभी जीवन में आराम नहीं किया। जन्म हुआ वृक्ष के नीचे, देह-त्याग हुआ वृक्षों के नीचे। महावीर स्वामी ने जब एक बार वस्त्र उतारे, तो कभी दुबारा वस्त्र पहना ही नहीं। बुद्ध के शिष्यों ने कभी यह नहीं देखा कि कल भोजन मिलेगा या नहीं। कुछ पाने के लिये कुछ खोना पड़ता है। यदि आप ब्रह्मवाणी की ज्योति को संसार में गुँजाना चाहते हैं, तो कुछ न कुछ कष्ट झेलने के लिये तैयार रहना ही पड़ेगा। इसके लिये मन्दिरों और आश्रमों की दीवारों से कुछ बाहर निकलना ही पड़ेगा। और ये ध्यान रखिये, कष्ट झेले बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

परमधाम की खिलवत, परमधाम की वहदत,

परमधाम की मारिफत की बातें हमारी ब्रह्मवाणी में है। संसार तो तरस रहा है कि इन चीजों को हम आत्मसात् कैसे करें। ये शब्द दुनिया की किताबों में हैं, लेकिन कहाँ हैं, कुछ मालूम नहीं। राधास्वामी मत में जाइये, ये शब्द सुनने को मिल जायेंगे। जो अरबी के विद्वान होंगे, वे खिलवत, निसबत, वहदत, हकीकत, मारिफत शब्द सुना देंगे। संस्कृत का विद्वान भी इनकी व्याख्या कर देगा। लेकिन ये लीला कहाँ घटती है, यह अलौकिक ज्ञान हमारे पास है, लेकिन हम संसार को दे नहीं रहे हैं। कहीं न कहीं हम ऐसे गुन्हेगार हैं, जिनके गुनाहों का कोई भी प्रायश्चित्त आने वाले समय में अक्षरातीत के न्यायालय में तो नहीं होगा।

हकें कहा रुहन को।

अक्षरातीत ने अपनी आत्माओं से कहा था कि मेरी

आत्माओं! जिस दुनिया में तुम जा रही हो, वह माया की भूल-भुलैया वाली दुनिया है, और उस दुनिया में जाने के बाद तुम मुझे भूलना नहीं।

जिन तुम जाओ भूल।

तुम उस दुनिया में जाने के बाद मुझे भूल न जाना। यह बात लौकिक दृष्टि से ऐसी लगती है कि जैसे कोई पति-पत्नी अलग हो रहे हों, तो पति कहता है कि मुझे भूलना नहीं। लीला रूप में यह बात दर्शायी गई है। वास्तविकता क्या है? अक्षरातीत का कथन है कि माया की दुनिया में जाने के बाद, मेरे और तुम्हारे बीच में पर्दा खड़ा हो जायेगा, क्योंकि चेतन जीव को तीन चीज़ें चाहियें। चाहे आत्मा हो या जीव, प्रेम उसको चाहिये, शान्ति उसको चाहिये, और आनन्द भी उसको चाहिये।

पुराण संहिता में इसका बहुत अच्छा चित्रण किया गया है। पुराण संहिता में बताया गया है कि परमधाम की ब्रह्मसृष्टि जब किसी पुरुष के तन में होती है, तो पुरुष अपने साथी से कहते हैं कि देखो! मेरी पत्नी पतिव्रता है, मैं जब तक घर न जाऊँ, वह मेरे बिना भोजन नहीं करेगी, वह तो मेरी प्राणेश्वरी है, मैं तो उसके बिना जीवित ही नहीं रह सकता। कदाचित उसका देह-त्याग हो जाता है, तो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि बिलख-बिलखकर रोती है कि मैं अपनी प्रियतमा के बिना इस दुनिया में कैसे रहूँगा। और यदि परमधाम की ब्रह्मसृष्टि किसी स्त्री के तन में बैठी है, तो वह भी अपने अनादि प्रियतम को तो भूल जाती है। और कहती है कि जब तक मेरे प्राणनाथ पतिदेव नहीं आयेंगे, भोजन नहीं करेंगे, मैं भी भोजन नहीं करूँगी। उनके सिवाय मेरा और कोई है

ही नहीं। अनादि का रिश्ता सबने भुला दिया। नकली पत्नी, नकली पति, नकली रिश्ते बना लिए। धनी ने क्या कहा है—

कर कबीला पार का, अंकुर बल सूर धीर।

लेकिन परमधाम की इस वहदत की पहचान कहाँ है? सुन्दरसाथ की जमात में कितने गुट हैं, नेपाली, पंजाबी, गुजराती, एम.पी. वाले, यू.पी. वाले। क्या परमधाम में भी इस तरह की दीवारें हैं? इसमें भी नगर के आधार पर अलग, गाँव के आधार पर अलग, वर्ग के आधार पर अलग। तात्पर्य क्या है?

आतम सहुनी एकज दीसे, जुजवी ते दीसे देह।

हमने शरीरों को देखा है, संसार को देखा है। जब तक हमारी आत्मिक दृष्टि नहीं खुलती, तब तक

अध्यात्म का वास्तविक आनन्द हमारी आत्मा के अन्दर कभी भी प्रवाहित नहीं होगा। महामति जी कह रहे हैं कि हम इस खेल में आये हैं। अक्षरातीत ने धाम में ही कहा था— "रूहों! तुम उस माया की झूठी दुनिया में जाने के बाद मुझे भूल न जाना।" न भूलने का क्या तात्पर्य है? मेरी तरफ से नजर हटाकर माया की तरफ मुँह न कर देना। यही है संसार में भूलना।

जागने का अर्थ क्या है? जैसे कोई व्यक्ति सो रहा होता है, उसको कुछ भी पता नहीं है कि मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, और कैसा हूँ? बिस्तर छोड़ देता है, तो सोचता है कि मेरा यह नाम है, मेरा यह रूप है, और मैं इस कमरे में इसके पहले सो रहा था। जीवों पर बैठकर परमधाम की आत्मायें इस नश्वर जगत के खेल को देख रही हैं। और इस खेल में आने के बाद आत्मा भुला चुकी

है कि मेरा निज घर कहाँ है, मेरी आत्मा का अखण्ड स्वरूप कहाँ है। वह अपने पाँच तत्व के पुतले को ही अपना रूप मान रही है।

सुन्दरसाथ चितवनि करते हैं, लेकिन उनकी चितवनि क्यों नहीं लगती? क्योंकि वे अपने शरीर को याद किये रहते हैं। कोई साठ साल का है, तो चितवनि में सोचता है कि मैं तो साठ साल का हूँ। कोई चालीस साल की बहन है, तो वह सोचती है कि मैं तो चालीस साल की हूँ। आपकी चितवनि तब लगनी शुरू होगी, जब आप शरीर को भुला देंगे। आप भूल जाइये कि आपकी उम्र सत्तर साल की है, साठ साल की है, या चालीस साल की है, या पचास साल की है। जब तक आपको चितवनि का स्थान मालूम है, शरीर मालूम है, संसार मालूम है, तब तक चितवनि के लगने का प्रश्न ही नहीं है।

चितवनि की पहली कक्षा वहाँ से शुरू होती है, जब आप की आत्मा अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर चितवनि करे।

जो मूल स्वरूप है अपनो, जाको कहिए परआत्म।

सो परआत्म संग लेय के, विलसिए संग खसम॥

परआत्म को संग लेने का तात्पर्य क्या है? आप अपना रूप-रंग सब कुछ परात्म वाला ले लीजिए। आप भूल जाइये कि आप स्त्री हैं या पुरुष हैं। जो श्यामा जी का स्वरूप है, वही सभी परात्म का स्वरूप है। उन भावों में भावित हुए बिना चितवनि की पहली कक्षा भी नहीं पूरी हो सकती। महामति जी के कहने का यही आशय है कि हम प्रियतम को न भूलें, लेकिन हम भुलाये बैठे हैं, क्योंकि हमारी नजरों के सामने संसार दिख रहा है।

जब बालक माता के गर्भ में होता है, सभी माताओं को मालूम होगा कि उसको कितना कष्ट होता है? गन्दगी के ढेर में से वह सना रहता है। लेकिन जन्म लेते ही जब उसको नहला-धुलाकर गोद में खिलाया जाता है, तो वह बालक जो गर्भ में प्रार्थना करता था कि हे परमात्मा! मुझे इस कष्ट से मुक्ति दिलाओ, वह नयी दुनिया में देखने लगता है कि यह मेरी माता हैं, यह पिता हैं, यह भाई-बन्धु हैं, यह मेरा घर-द्वार है। वह परमात्मा को भूल जाता है। वही हाल परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों का हुआ। जीवों पर बैठकर खेल को वे देखने लगीं, तो उनको खेल ही अपना सब कुछ नजर आने लगा।

तुम आईयां छल देखने, भिल गईयां माहें छल।

छल को छल न लागहीं, ओ लहरी ओ जल॥

माया में डूबना ही माया के जीव की वास्तविक प्रवृत्ति है। लेकिन परमधाम की ब्रह्मसृष्टि जब इस संसार को देखने आई है, तो उसे संसार में डूबना नहीं चाहिए। संसार से अलग होने का एक ही तरीका है कि प्रियतम को दिल में बसा लीजिए। जब हृदय में दीपक जलने लगता है, तो अन्धकार का स्वतः ही नाश हो जाता है। ज्ञान का अनन्त स्रोत है अक्षरातीत, प्रेम का अनन्त स्रोत है अक्षरातीत। जब हम अक्षरातीत को ही दिल में बसा लेंगे, तो क्या रहेगा? महामति जी यही बात कह रहे हैं कि राज जी ने हमें याद दिलाया था कि माया में जाने के बाद तुम मुझे भूलना नहीं।

ईशक ईमान ल्याइयो।

ईशक और ईमान लाना।

इश्क किसको कहते हैं?

इस्क को ए लछन, जो नैनों पलक न ले।

दौड़े फिरे न मिल सके, अन्तर नजर पिया में दे।।

आजकल इश्क का लक्षण क्या माना जाता है? जैसे पूर्णब्रह्म बोला जा रहा हो, तो जो खूब नाचता है, वह दावा कर देता है कि मेरे अन्दर राज जी का इश्क आ गया है। वाणी क्या कहती है?

इस्क को ए लछन, जो नैनों पलक न ले।

हमारी आत्मा के चक्षु युगल स्वरूप को इस तरह से देखें कि पलक भी न झपके। यानि हमारी आत्मिक दृष्टि पल-पल प्रियतम की शोभा को निहारती रहे, इसको कहते हैं इश्क।

दौड़े फिरे न मिल सके।

इसका तात्पर्य क्या है? संसार में कोई दौड़ता रहे, फिरता रहे, अन्तःकरण से, इन्द्रियों से, उसको कुछ भी नसीब होने वाला नहीं है।

अन्तर नजर पिया में दे।

हमारी नजर "अन्तर" यानि पिण्ड-ब्रह्माण्ड से अलग होकर, हृद-बेहृद से परे होकर, परमधाम में पहुँच जाये, और अपने प्राणप्रियतम को अपलक नेत्रों से निहारा करे। इसको कहते हैं इश्क का हो जाना।

इश्क ईमान ल्याइयो।

मेरे ऊपर इश्क की राह पकड़ना, ईमान लाना। ईमान का तात्पर्य क्या है? अटूट निष्ठा।

यह राजस्थान की यह धरती वीरों की धरती कहलाती है। सबको विदित है कि यहाँ क्षत्राणियों ने

अपने सतीत्व की रक्षा के लिये जलती चिता में जल जाना स्वीकार किया, लेकिन मुगलों को कभी अपना शरीर नहीं सौंपा। चित्तौड़ में पद्मिनी ने हजारों क्षत्राणियों के साथ जौहर कर लिया। इसके बाद कई जगहों पर ये घटनायें घटीं।

यदि हमारी अँगुली आग में जल जाये, तो कितनी दवा लगाते हैं? सबसे कहते फिरते हैं- "अँगुली में बहुत दर्द हो रहा है।" उस घटना को याद कीजिये जब हजारों क्षत्राणियों ने, जिनकी अवस्था युवावस्था वाली रही होगी, जिसमें छोटी उम्र की बालिकायें भी रही होंगी, अपने सतीत्व की रक्षा के लिये जलती हुई चिता में अपने को झोंक दिया। यह कोई सामान्य बात नहीं है। उनका ईमान किस पर था? अपने लौकिक पति पर। उनको जलती हुई चिता पर भेंट चढ़ जाना स्वीकार था, लेकिन

अपने ईमान पर खतरा लाना मन्जूर नहीं था।

यह परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के लिये चुनौती है। हम सुन्दरसाथ को थोड़ा भी कष्ट आता है, तो कहीं न कहीं ईमान डगमगाने लगता है। सोचते हैं कि राज जी हमारा काम नहीं करते, तो हनुमान जी से करा लेने में क्या दोष है? दुर्गा जी से करा लेने में क्या दोष है? या शंकर जी हमारा काम कर देते हैं, किसी ओझा गुरु से काम हो जाता है, और वे काम भी क्या? थोड़े से पैसे के लिये, थोड़े से लाभ के लिये हमारा ईमान सब कुछ बिक जाता है।

रावण ने सीता से कहा था— "सीता! यदि तुम राम की तरफ देखना छोड़ दो, राम की याद करना बन्द कर दो, मेरी पटरानी बन जाओ, तो मन्दोदरी सहित मेरी सारी पटरानियाँ तुम्हारे चरणों में नतमस्तक रहेंगी। यह

सोने की लंका तुम्हारी सेवा में प्रस्तुत रहेगी। लेकिन यदि तुम मुझे स्वीकार नहीं करती हो, तो एक महीने के बाद तुम्हारे शरीर को भोजनालय में माँस के रूप में पका दिया जायेगा।"

सीता को भोजनालय में माँस के रूप में पक जाना मन्जूर है, लेकिन सीता ने दो टूक उत्तर दिया था— "रावण! सीता के लिये राम के सिवाय संसार का हर पुरुष या तो पुत्र है, या भाई है, या पिता है, पति का स्थान नहीं ले सकता।" यदि माया की सीता इतनी दृढ़ता से उत्तर देती है, तो इसका उत्तर हमें अपनी अन्तरात्मा से पूछना होगा कि हमारी आत्मा राज जी के प्रति कितना ईमान रखती है?

यही परीक्षा की घड़ी है। धनी ने कहा था—

इस्क ईमान ल्याइयो।

मेरे ऊपर अटूट निष्ठा रखना और अपने धाम-हृदय में मेरी शोभा को बसाना। यही है जागनी की मूल जड़। यदि हमारे पास इश्क नहीं, ईमान नहीं, तो हमारी आत्मा की जागनी कभी नहीं हो सकती। इश्क और ईमान के पँखों से ही हमारी आत्मा परमधाम की उड़ान भरती है। सब सुन्दरसाथ के लिये यही अनमोल सम्पदा है कि अपने दिल में इश्क और ईमान की राह पकड़ें।

मैं भेजूंगा रसूल।

मैं तुमको साक्षी दिलाने के लिये रसूल को भेजूंगा। मुहम्मद साहब के माध्यम से मैं कुरआन में साक्षियाँ लिखवाऊँगा, ताकि तुमको विश्वास हो जाये कि मुहम्मद की रूह ने नासूत, मलकूत, जबरूत को छोड़कर कैसे

लाहूत में मेरा दीदार किया था। जब मैं सारी साक्षियाँ दूँगा, तब तुम्हें विश्वास आयेगा, और तुम उस विश्वास को लेकर मेरे प्रेम में अपने को डुबो देना। मेरे स्वरूप पर अपनी अटूट निष्ठा बनाये रखना।

आप जानते हैं कि पतिव्रता के चरण दुनिया छूती है, और जो उस पतिव्रता धर्म से खण्डित हो जाता है, उसको संसार में कोई नहीं पूछता। इसका तात्पर्य मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि यदि आपको कोई किसी मत का प्रसाद देता है, तो उसके सामने उसको फेंक दीजिये या कह दीजिये कि "मैं नहीं लेता।" आप किसी की भावनाओं को आहत न कीजिये। कोई प्रसाद देता है, तो ले लीजिये, स्वयं न खाइये, किसी बच्चे को खिलाइये, लेकिन किसी का दिल दुखाने का अधिकार आपको भी नहीं है।

किसी परिवार में पत्नी अपने पति से प्रेम रखती है, तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि देवर, जेठ, और सास-ससुर को जली-कटी सुनाया करे।

किसी भी महापुरुष की निन्दा किये बिना, कटु शब्द कहे बिना, हमें अपना जीवन व्यतीत करना होगा, लेकिन हमारे दिल में युगल स्वरूप के सिवाय कोई अन्य नहीं बसना चाहिये। यदि सारे ब्रह्माण्ड तो क्या कालमाया के सारे ब्रह्माण्डों का भी राज्य मिले, तो उसको भी युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार के अपेक्षाकृत ठुकरा देना चाहिये। इसी को कहते हैं ईमान। और जब हमारे दिल में धनी की शोभा इस तरह से बस जाये कि—

खाते पीते उठते बैठते, सुपन सोवत जाग्रत।

दम न छोड़े मासूक को, जाकी असल हक निसबत॥

तो इसको कहेंगे इश्क। और जब इश्क और ईमान की राह पर हमारी आत्मा चलेगी, तो पल-पल हमें धनी का दीदार होगा, पल-पल हमारी आत्मा जागनी की तरफ तेजी से कदम बढ़ाती जायेगी, और यह स्थिति बन जायेगी कि—

इतहीं बैठे घर जागे धाम, पूरन मनोरथ हुए सब काम।



खुलासा

बंदगी शरीयत की, और हकीकत बंदगी।

नासूत दुनियां अर्स मोमिन, है तफावत एती॥

खुलासा १०/५५

आप अक्षरातीत धाम के धनी, इस खुलासा ग्रन्थ के अन्दर, शरीयत की बन्दगी और हकीकत की बन्दगी का स्पष्टीकरण कर रहे हैं। मारिफत सागर में छह तरह की बन्दगी का वर्णन है— दो शरीयत, एक तरीकत, एक हकीकत, और दो बका मारिफत।

शरीयत की बन्दगी दो तरह की होती है— जिस्मानी और नफ्सानी।

जो बन्दगी शरीर से की जाये, वह जिस्मानी बन्दगी कहलाती है। जैसे हम परिक्रमा कर रहे हैं, हमारे पाँव

चल रहे हैं। आगे वाले मेहर सागर की चौपाइयाँ बोल रहे हैं, पीछे वाले बातें कर रहे हैं। देखने वाले समझते हैं कि कितनी निष्ठा है, ये राज जी की परिक्रमा कर रहे हैं। पैर तो चल रहा है, मन कहीं और चल रहा है।

दूसरी शरीर की बन्दगी है नफ्सानी, यानि इन्द्रियों से। मुख बोल रहा है, अर्थात् पीछे वाले भी जोर से बोल रहे हैं या तारतम का पाठ करते हुए परिक्रमा कर रहे हैं। ये है नफ्स की बन्दगी— इन्द्रियों से की गई भक्ति जिसमें आँख, कान, नाक, जिह्वा, काम में आ रहे हैं, वाणी द्वारा बोला जा रहा है।

तीसरी तरीकत की बन्दगी है। तरीकत किसको कहते हैं? उपासना। इसमें शरीर का कोई लेना-देना नहीं, इन्द्रियों का राजा मन भक्ति में लग जाता है। आँखें बन्द हैं, स्थिर-शान्त होकर बैठ गये हैं, अपने मन में

अपने प्रियतम को याद कर रहे हैं, या मन में राजश्यामा-राजश्यामा इस प्रकार गुनगुना रहे हैं जिसमें होंठ भी न हिलें, दिल से यह बन्दगी की जा रही है। यह बन्दगी मलकूत तक ले जा रही है।

चौथी हकीकत की बन्दगी है। हकीकत का क्या तात्पर्य है? यह हकीकत की बन्दगी अक्षर धाम, बेहद तक ले जा रही है।

पाँचवीं और छठी बन्दगी मारिफत की होती हैं— एक रूहानी बन्दगी और एक छिपी बन्दगी।

रूहानी का तात्पर्य है कि आत्मा शरीर से, मन से, इन्द्रियों से, सबसे परे होकर अपने प्रियतम की छवि को इस तरह निहारने लगे कि सब कुछ उसमें भुला दे।

दूसरी प्रकार की जो मारिफत की (बातिनी) बन्दगी

कही गई है, उसमें राज जी ही बस रह जायेंगे, श्यामा जी, पच्चीस पक्ष, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, कुछ भी नहीं रहेंगे। मारिफत की अवस्था में आत्मा का अस्तित्व भी समाप्त हो जायेगा। मैं धनी को देख रही हूँ। "मैं" शब्द भी नहीं रहेगा। ये दो बका की बन्दगी हैं, जो मारिफत की बन्दगी कहलाती हैं। इस मन्जिल तक कोई-कोई परमहंस ही पहुँच पाता है, अन्यथा मारिफत की पहली बन्दगी में ही सभी रुक जाते हैं, क्योंकि इस बन्दगी में जाने के बाद बन्दगी करना, पढ़ना-लिखना, सब कुछ बन्द हो जायेगा, तो जागनी का कार्य कैसे होगा?

अब शरीयत और हकीकत की बन्दगी के बाद, धाम धनी विश्लेषण कर रहे हैं कि आज हमारा समाज हकीकत, मारिफत से काफी कुछ दूर है। हकीकत का एक दूसरा पहलू भी है। मारिफत की पहली बन्दगी का

आशय जिसमें परमधाम की हकीकत दृष्टिगोचर हो।

परमधाम के पच्चीस पक्षों की शोभा, अष्ट प्रहर की लीला, युगल स्वरूप का शोभा-श्रृंगार, यह हमारी हकीकत की अवस्था में आता है। जब हम परमधाम की लीला का रसपान करते हैं, शोभा-श्रृंगार का रसपान करते हैं, तो यह सब कुछ हकीकत के अन्दर आ जाता है।

श्रृंगार की वाणी मारिफत की अवस्था की वाणी है। श्रृंगार ग्रन्थ में श्यामा जी का श्रृंगार नहीं है, सखियों का श्रृंगार नहीं है, लेकिन सागर ग्रन्थ में राज जी का श्रृंगार है, श्यामा जी का श्रृंगार है, सुन्दरसाथ का श्रृंगार है।

इस तरह से परिक्रमा ग्रन्थ में परमधाम के पच्चीस पक्षों का वर्णन है। खिलवत, परिक्रमा, सागर ग्रन्थ

हकीकत की अवस्था की वाणी हैं, और महाश्रृंगार की वाणी मारफत की अवस्था की वाणी है।

शरीयत, तरीकत में क्या होता है? सारा संसार, किसी भी पन्थ का अनुयायी क्यों न हो, हिन्दू हो, मुस्लिम हो, ईसाई हो, सभी शरीयत में फँसे हुए हैं। किसी सूफी फकीर ने कहा है—

गंगा गए गल मुक्ति नहीं, जो सौ-सौ डुबकी लगइये।

गया गए गल मुक्ति नहीं, जो सौ सौ पिण्ड पढ़इये।

मक्का गये गए गल मुक्ति नहीं, जो सौ सौ जुम्मे पढ़ आइए॥

कल्पना कीजिये, यदि किसी ने मक्का में जाकर नमाज अदा कर ली, तो वह शेखी बघारेगा कि मैंने तो जन्नत को पा लिया, लेकिन जन्नत थोड़ी मिलने वाली है? वह तो शरीयत की बन्दगी है। कुरआन में लिखा है

कि शरीयत की बन्दगी कभी भी अल्लाह तआला को स्वीकार नहीं होती और खुलासा में इसका स्पष्टीकरण है।

खुलासा ग्रन्थ का अर्थ है स्पष्टीकरण। एक तरफ वेद पक्ष, दूसरी तरफ कतेब पक्ष। वेद पक्ष में जो कहा गया है, कतेब परम्परा में कहाँ और कैसे व्यक्त किया गया है, यह खुलासा ग्रन्थ में विशेष रूप से दर्शाया गया है। और जो खुलासा ग्रन्थ को आत्मसात् कर लेगा, वह हिन्दू और मुस्लिम की परिधि से बाहर हो जायेगा।

कल्पना कीजिये, नमाज़ में क्या होता है? दण्ड-बैठक, दायें-बायें देखना। मुस्लिम भाई जब नमाज़ पढ़ते हैं, तो एक बार दायीं तरफ देखते हैं, एक बार बायीं तरफ देखते हैं। यह भाव किसलिये? कहा जाता है कि राज जी के बायीं तरफ यानि हमारे दायीं तरफ श्यामा

जी विराजमान हैं, उनको दर्शाने के लिये एक बार दायीं तरफ देखा जाता है और एक बार बायीं तरफ देखा जाता है। लेकिन नमाज पढ़ने वालों को पता नहीं कि दायीं और बायीं तरफ क्यों देखते हैं। उनको तो सिखा दिया गया है कि एक बार दायें देखो, एक बार बायें देखो, इतनी बार जमीन पर लेट करके मत्था टेको। यह शरीयत की बन्दगी है। वाणी कहती है—

अर्स बका पर सिजदा, करावसी इमाम।

जब प्राणनाथ जी का स्वरूप प्रकट होगा, तो वे यहीं बैठे-बैठे परमधाम में सुरता लगवायेंगे। परिक्रमा क्या है? जाहेरी परिक्रमा हम पैरों से करते हैं। हमारा पैर चल रहा है। रूह की परिक्रमा है, परमधाम के पच्चीस पक्षों में घूमना, पच्चीस पक्षों की शोभा का रसास्वादन करना। यह हकीकत और मारिफत की बन्दगी के स्तर

पर होती है।

चाहे हिन्दू अपने मन्दिरों की परिक्रमा करें, भोग लगायें, आरती करें, कुछ भी करें, मुसलमान मस्जिद में जाकर नमाज़ पढ़ें, ईसाई गिरजाघर में खड़े होकर प्रार्थना करें, सब कुछ शरीयत के धरातल पर होता है। लेकिन यदि आप शरीयत वालों को कहिये कि यह राह परमात्मा को पाने की नहीं है, तो या तो वे कटु शब्दों में सम्बोधित करेंगे या सिर फोड़ने के लिये तैयार हो जायेंगे। वाणी कहती है—

बंदगी शरीयत की।

शरीयत अर्थात् कर्मकाण्ड की।

पुलसरात कई खांडे की धार, गिरे कटे नहीं पावे पार।

संसार में जो भी झगड़ा मचता है, केवल शरीयत के

नाम पर होता है, चाहे हिन्दू के अन्दर हो, चाहे मुस्लिम के अन्दर हो, चाहे क्रिश्चियन के अन्दर हो। जगन्नाथ पुरी में चले जाइये, दिन-रात पण्डे लोग दक्षिणा लेते हैं और लकड़ी की मूर्ति के ऊपर शीश झुकवाते हैं। वहाँ क्या है? ज्ञान के नाम पर शून्यता। जो पूजा करते हैं, वे भी मछली खाते हैं, शराब पीते हैं। उनका जीवन भी पवित्र नहीं होता। चाहे किसी भी स्थान पर चले जाइये। बनारस के लोगों को देखिये, पण्डों को देखिये, मैं जानता हूँ कि वास्तविकता क्या है? कर्मकाण्ड आज तक किसी का भला न तो कर सका है, न कर सकेगा। शरीयत की बन्दगी से नासूत से ऊपर कभी भी कोई न उठा है, न उठ सकेगा, क्योंकि यह शरीर और इन्द्रियों द्वारा होने वाली बन्दगी है और इस संसार में ही रह जाती है। आगे कह रहे हैं—

और हकीकत बंदगी।

हकीकत की बन्दगी का तात्पर्य है— यथार्थता की बन्दगी, जिसमें हमारे शरीर से कोई लेना-देना नहीं, मन से लेना नहीं, इन्द्रियों से लेना-देना नहीं। हमारी चेतना वास्तव में यथार्थता को देखे, हकीकत की लीला को देखे। यह हकीकत की बन्दगी कहलाती है।

आखिर अनन्त सूर्यों के समान प्रकाशमान उस प्रियतम को कैसे देख सकते हैं? यह तो मिट्टी का पुतला है। यह शरीर परमधाम जा नहीं सकता। मन की गति निराकार को पार कर नहीं सकती। चेतन जो वहाँ से आया है, उसी चेतन की नजर ही वहाँ जा सकती है। इसलिये हकीकत-मारिफत की बन्दगी हमारी आत्मा के लिये जितना आनन्ददायी हो सकती है, उतना शरीर की नहीं हो सकती, लेकिन सबका अलग-अलग महत्व

है। रहीम दास जी ने कहा है—

रहीमन देख बड़न को, लघु न दीजिए डार।

जहां काम आवे सुई, क्या कर सके तलवार॥

यदि कपड़ा फटा हो, तो तलवार से कपड़ा नहीं सिला जायेगा, वहाँ तो सुई ही काम करेगी। शरीयत का अपना महत्व है, लेकिन वह अन्तिम मन्जिल नहीं है। होता यही है कि शरीयत को ही सब कुछ मान लिया जाता है। उम्र के आखिरी पड़ाव पर सुन्दरसाथ या किसी भी मत का अनुयायी होता है, वह शरीयत की जंजीरों से अपने को निकाल नहीं पाता है। यह तो उस अवस्था के लिये है, जब हमारी प्रारम्भिक अवस्था होती है, शुरु-शुरु में तारतम लेते हैं, तो कह दिया जाता है कि नित्यपाठ से इतना पाठ कर लेना है, इतनी बार तारतम

का पाठ कर लेना है। मन्दिर में जाकर चरणामृत-प्रसाद लेना है। ये सारी बातें अच्छी हैं, लेकिन क्या जीवन-भर यही चलता रहेगा?

यदि हमारी आत्मा हकीकत-मारफत की राह नहीं पकड़ती, तो क्या होगा? आत्मा की जागनी का रास्ता कभी भी खुल नहीं सकता। जैसा कि मैंने कहा है कि श्रृंगार ग्रन्थ के अन्दर चौथा प्रकरण है- "आत्मा का फरामोशी से जागने का प्रकरण।" आत्मा कैसे जाग्रत होगी?

ऐसा आवत दिल हुकमे, यों इस्कें आतम खड़ी होए।

जब हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए॥

आत्मा की जागनी का एक ही तरीका है कि जैसे परात्म के अन्दर राज जी की शोभा बसी हुई है-

ज्यों सूरत हक देखत, त्यो रूह जो देखे सूरत।

जैसे हमारी परात्म राज जी को देख रही है, वैसे ही हमारी आत्मा भी राज जी को देखने लगे, ये है जागनी की निशानी। आत्मा तभी जाग्रत होगी और इसके लिये शरीर से अलग होना पड़ेगा, मन से अलग होना पड़ेगा, जीव भाव से अलग होना पड़ेगा। आत्मा अपने प्रियतम का दीदार करे। यह है हकीकत और मारिफत की राह, जो ब्रह्मसृष्टियों के लिये इस संसार में प्रगट हुई है।

जब पद्मावतीपुरी धाम में महामति जी के तन से लीला चल रही थी, उस समय एक सुन्दरसाथ थे। चर्चा में वे आ नहीं पाते थे। सुन्दरसाथ ने बार-बार श्री जी से शिकायत की कि वह सुन्दरसाथ तो चर्चा में आते ही नहीं हैं। श्री जी ने कहा कि वह जिस हाल में है, उसी हाल में उनको रहने दो। लेकिन सुन्दरसाथ की आदत

भी होती है कि कहे बिना रहते नहीं। उनसे भी कहते थे कि आप चर्चा में क्यों नहीं आते? वह चुपचाप मुस्कुरा रहे होते थे।

एक दिन सुन्दरसाथ चर्चा सुनकर आये, उस परमहंस ने पूछा— "आज श्री जी के मुखारविन्द से क्या चर्चा हुई?" सुन्दरसाथ ने कह दिया— "अर्स मिलावा ले चली, अपने संग सुभान।" उनके मन में व्यथा हो गई कि क्या सुन्दरसाथ के साथ श्यामा जी और राज जी चले गये? उसी क्षण उन्होंने शरीर छोड़ दिया। जब श्री जी के पास यह बात गई, तो उन्होंने कहा— "मैंने मना किया था कि तुम उन्हें छोड़ा न करो। वह किस अवस्था में हैं, यह मुझे मालूम है। तुम आते हो चर्चा सुनने के लिये, लेकिन तुमने अपने स्तर पर सबको देखा कि हम सुन रहे हैं तो वे क्यों नहीं सुन रहे?"

यही बात होती है। शरीर की बन्दगी दुनिया में दिखाई दे जाती है कि देखो! कितनी जोर-जोर से ढोलक पीट रहे हैं, कितने जोर-जोर से गा रहे हैं, कितनी रात-रात भर परिक्रमा कर रहे हैं, कितनी माला का जप कर रहे हैं। यह सारी दुनिया जान जाती है, लेकिन रुहानी बन्दगी को कोई जानता नहीं।

सिन्धी ग्रन्थ में कहा है कि जिस तरह से सती अपने प्रियतम के विरह में विलखती है, तो उसकी पड़ोसिन को भी पता नहीं चल पाता कि वह अपने प्रियतम को याद कर रही है। उसी तरह से आत्मा को इस तरह धनी को रिझाना चाहिए कि जो बहुत नज़दीकी हो, उसको भी पता नहीं चले कि हम राज जी को कितना याद करते हैं।

कियामतनामा ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है—

रातों करे उजागरा।

संसार सोता है और परमधाम की ब्रह्मसृष्टि रात्रि को अपने प्रियतम के ध्यान में समय गुजार देती है। शरीर की बन्दगी दिन में होती है, हकीकत और मारिफत की बन्दगी रात्रि में होती है। जो दिन-रात साथ में रहता है, उसको भी पता नहीं चलता कि ये करते क्या हैं। गीता में योगिराज श्री कृष्ण कहते हैं—

या निशा सर्वभूतानां तस्याम् जाग्रति संयमी।

यस्याम् जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने॥

संसार जिस अज्ञानता की रात्रि में सो रहा होता है, संयमी पुरुष उसमें जागरण करता है। रात को तीन जागते हैं— योगी, भोगी, और चोर। चोर का उद्देश्य होता है चोरी करना। भोगी का उद्देश्य होता है संसार के विषय

सुखों का रसपान करना, और योगी का उद्देश्य होता है परमानन्द का रसपान करना। तीनों अपने उद्देश्य के लिये जागते हैं, शेष सारा संसार सोया रहता है। महामति जी कहते हैं—

नासूत दुनी अर्स मोमिन।

नासूत की बन्दगी कहाँ तक होती है? दुनिया तक। जितना अन्तर नासूत में और परमधाम में है, उतना ही अन्तर शरीयत की बन्दगी और हकीकत की बन्दगी में है। अर्थात् शरीयत की बन्दगी आपको दुनिया में ही रखे रहेगी। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप परिक्रमा बन्द कर दीजिये, आप आरती-पूजा बन्द कर दीजिये। लेकिन जो सच है वह यही है कि यदि हम अपनी आत्मा को जाग्रत करना चाहते हैं, तो हमें हकीकत की राह पर चलना ही पड़ेगा।

जैसे कोई दस साल का बच्चा तारतम लेता है। वह ध्यान तो लगा नहीं सकता। उसको क्या कहेंगे? यही कहेंगे कि पहले मेहर सागर का पाठ करो, राजश्यामा-राजश्यामा का जाप करो। उसकी मन्जिल यहीं तक है। आगे और बढ़ता है, तो कहेंगे कि भाई! अब उछल-कूद बन्द करके, आँखें बन्द करके मन में राजश्यामा-राजश्यामा जपो, तारतम जपो। और आगे बढ़ता है, अठारह-बीस साल का हो जाता है, तो क्या कहेंगे? अब आँखें बन्द करके मूल मिलावा का ध्यान करो।

ए मूल मिलावा अपना, नजर दीजे इत।

पलक न पीछे फेरिये, ज्यों इस्क अंग उपजत।।

और यहाँ स्थिति और आगे बढ़ती जायेगी। जैसे-जैसे आत्मा जागनी के सोपानों पर चढ़ती जायेगी,

हकीकत भी पार करके मारिफत की अवस्था में पहुँच जायेगी, उस समय सब कुछ छूट जाता है। जब आपने वह स्थिति प्राप्त कर ली कि—

मैं हक देखूँ हक देखें मुझे, यों दोऊ अरस परस भइयां।

तो कौन किसके जयकारे लगायेगा, कौन किसको नहलायेगा, कौन किसको दीपक दिखायेगा, कौन किसको खिलायेगा, कौन किसको सुलायेगा? क्या अक्षरातीत को इन चीजों की आवश्यकता है? लेकिन शरीयत में इसकी आवश्यकता है, क्योंकि शरीयत में आत्मा ज्ञान की उस मन्जिल पर नहीं पहुँची। तरीकत में आवश्यकता है। हकीकत और मारिफत में सारे बन्धन टूट जाते हैं। इसलिये हकीकत और मारिफत की बन्दगी शरीयत और तरीकत के विपरीत होती है।

है तफावत ए तीन।

इतना अन्तर है। जो अन्तर नासूत में और परमधाम में है, वही अन्तर हकीकत की बन्दगी और शरीयत की बन्दगी में है। धाम धनी कह रहे हैं कि परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के लिये हकीकत और मारिफत की बन्दगी है। मोमिनों की शरीयत, हकीकत, इश्क रब्द का वर्णन श्रृंगार ग्रन्थ में है। मोमिनों की शरीयत क्या है? दुनिया वाले शरीयत के नाम पर वजू करते हैं, शरीर को धोते हैं। ब्रह्मसृष्टियों का स्नान क्या है? हौज कौसर में स्नान करना।

मोमिन उजू तब करे, जब पीठ देवे दोउ जहान को।

कालमाया, योगमाया से हमारी सुरता परे हो गई। यमुना जी में झीलना किया, हौज कौसर में स्नान किया,

तो समझ लीजिये कि हमने स्नान कर लिया। परिक्रमा क्या है? आप किसी भी मन्दिर की जाहिरी परिक्रमा कर सकते हैं। हम अपनी आत्मिक नजर से पच्चीस पक्षों में घूम आयें, यह हकीकत की परिक्रमा है, और जो हकीकत की अवस्था है—

पहले पी तूं सरबत मौत का, कर तहकीक मुकरर।

मुए पीछे हो मुकाबिल, पीछे जीवित रहो या मर।।

खिलवत में जाकर साक्षात् अक्षरातीत से बातें करना।

एही मोमिनो मारफत, खिलवत कर साथ हक।

यह मारिफत की अवस्था है। उसमें कुछ भी करने की जरूरत नहीं। शरीयत के नाम पर हमें आरती जलानी ही पड़ेगी, घी लाना ही पड़ेगा, भोग की सामग्री इकट्ठा

करनी ही पड़ेगी, लेकिन मारिफत की अवस्था में आप बैठे हैं, किसी को कुछ भी पता नहीं कि क्या कर रहे हैं। एक सन्त ने कहा है—

सोवन तो सबसे भला, जो जग जाने सोए।

अंतर लौ लागी रहे, सहजहिं सुमिरन होए॥

यदि आप आरती-पूजा करते हैं, तो सबको पता चल जायेगा, लेकिन यदि आप आँखें बन्द करके ध्यान में हैं या लेटे-लेटे उसकी शोभा में खो गये हैं, तो किसको पता? लेकिन मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि मन्दिरों में होने वाली आरती-पूजा का मैं विरोध कर रहा हूँ। हर चीज का अलग-अलग महत्व है। मन्दिर में जाना प्रारम्भिक कक्षा है, श्रद्धा भाव से श्री राज जी के चरणों में प्रणाम करना, मेहर सागर का पाठ करना। और

आगे कदम बढ़ायेंगे, तो आँखें बन्द करके उसको दिल में याद करेंगे।

हमारी आत्मा और आगे कदम बढ़ायेगी, हकीकत की राह पर चढ़ेगी, तो चितवनि में बैठकर प्रियतम की छवि को देखने लगती है, और मारिफत में डूबकर सबको भुला देती है। खुद को भुला देगी, पच्चीस पक्षों को भुला देगी, केवल राज जी के नख से शिख तक की शोभा में डूब जायेगी, जो मारिफत की अवस्था है। इस अवस्था में आने के बाद अन्तरात्मा से यही आवाज आयेगी, जो पाना था पा लिया, जो देखना था देख लिया। सब सुन्दरसाथ को धाम धनी उसी राह पर ले जाना चाह रहे हैं। इसलिये खुलासा में स्पष्टीकरण किया गया है।

अरब के लोगों को मुहम्मद साहब का आदेश था कि जब तक श्री जी का स्वरूप प्रगटता नहीं है, तब तक तुम

शरीयत की नमाज़ अदा करते रहना। केवल अली को तरीकत की बन्दगी बताई गई। जो सच्चा सूफी फकीर होगा, वह रोज़ा नहीं रखेगा, नमाज नहीं पढ़ेगा। कलमा से भी उसको लेना-देना नहीं। मक्का-मदीना की यात्रा नहीं करेगा। एक सूफी फकीर ने कहा है—

न रख रोजा न मर भूखा, न सिजदा कर तू मस्जिद में।

किताबें फेंक तसबी तोड़,

लगाकर इश्क की झाडू हिरसे दिल को सफा कर॥

कल्पना कीजिये, ये बातें किसी मस्जिद में जाकर कह दी जायें, तो सारे मौलवी लोग सिर फोड़ने के लिये तैयार हो जायेंगे कि हमारा इस्लाम खतरे में है। शरीयत और तरीकत में मेल नहीं हो सकता। तरीकत की राह पर चलने वाले सूफी फकीर कर्मकाण्ड कभी नहीं कर

सकते। पहले कोई भी सूफी फकीर नमाज़ नहीं पढ़ा करता था, लेकिन औरंगज़ेब ने सबको पकड़वाकर फाँसी पर चढ़ाना शुरू कर दिया, तो डर के मारे ऊपर से दिखाने के लिये वे नमाज़ पढ़ने भी लगे कि पहले हमारे प्राण तो बचें। हकीकत और मारिफत में तो इन चीजों का प्रश्न ही नहीं होता।

एक बार औरंगज़ेब बादशाह ने एक सूफी फकीर को बुलवाकर कहा— "तुम नमाज़ क्यों नहीं पढ़ते?" उसने कहा— "ठीक है, मैं पढ़ लेता हूँ।" जैसे ही सिजदा में औरंगज़ेब ने सिर झुकाया, वह खड़े-खड़े हँसने लगा। औरंगज़ेब को बहुत गुस्सा चढ़ा। उसने नमाज़ पूरी होने के बाद फाँसी का फन्दा दे दिया। रात को जब फाँसी हो जाती है, फकीर कहता है— "बादशाह! तूने मुझे तो फाँसी पर चढ़ा दिया, लेकिन ये तो बता, तू उस समय

काबुल में घोड़े खरीद रहा था। सिजदा में सिर झुकाये था, लेकिन तुम्हारे मन में यह बात चल रही थी कि फौज के लिये कितने काबुली घोड़े मँगवाने हैं?" औरंगज़ेब को बहुत पश्चाताप हुआ कि वह सच्चा फकीर था, वह खुदा का बन्दा था। भले ही नमाज नहीं पढ़ रहा था, लेकिन उसके पाक दिल में मेरे मन की सारी बातें गूँज रही थीं। इतना अन्तर होता है शरीयत में और तरीकत में।

केवल मारिफत का भजन गा लेने से मारिफत की अवस्था में पहुँचा हुआ नहीं माना जायेगा। मारिफत का तात्पर्य यह है कि हमारी आत्मा शरीर और संसार से परे होकर अपने धाम-हृदय में प्रियतम को बसा चुकी है, और उसके लिये शरीर और संसार का कुछ भी महत्व नहीं है। तब यह मारिफत की अवस्था मानी जायेगी। यह

अवस्था बौद्धिक ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं होती। यह अनुभूति का क्षेत्र है कि हमारी आत्मा अपने धाम-दिल में धनी को इस तरह से बसा ले कि न उसे शरीर दिखे और न संसार दिखे।

लगी वाली कछु और न देखे, पिण्ड ब्रह्माण्ड वाको है री नाहीं।

ओ खेलत प्रेमे पार पिया सों, देखन को तन सागर माहीं॥

भले ही उसका शरीर इस संसार में दिखता है, लेकिन उसकी आत्मा अपने प्रियतम में, पच्चीस पक्षों में, युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार में डूबी रहती है।

नासूत बीच फना के।

नासूत की बन्दगी इस संसार में ही रह जाती है। कल्पना कीजिये कि सभी ग्रन्थों का कथन है कि जो परमात्मा है, वह मन से, वाणी से, बुद्धि से, इन्द्रियों से

परे है, तो उसको इन साधनों से कैसे पाया जा सकता है? आप जो कुछ प्रार्थना कर रहे हैं, वह वाणी द्वारा कर रहे हैं। सुन्दरसाथ के लिये कुछ विशेष बातें हो जाती हैं, जो दुनिया वालों पर लागू नहीं होतीं। खिल्वत में कहा है—

हक उपजावे देवे को, सोई देवनहार।

इसी प्रकरण में इन्द्रावती जी की आत्मा कहती हैं कि मेरे धाम धनी! मेरे मन में संशय रहता था कि आपका नूरी स्वरूप तो परमधाम में है। इस झूठी दुनिया में बैठकर, मेरे मन में जो कुछ भाव आता है, तो आप तक बात पहुँचती है या नहीं पहुँचती? ब्रह्मसृष्टि की बात राज जी तक इसलिये पहुँचती है क्योंकि उसकी निसबत का अखण्ड सम्बन्ध है।

योगमाया में बाँसुरी बजी। उस बाँसुरी को सबने सुना, लेकिन ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरीसृष्टि के सिवाय कोई भी योगमाया में पहुँच नहीं सका। ब्रह्मा ने सुनी, विष्णु ने सुनी, आदिनारायण ने सुनी, शंकर ने सुनी, लेकिन किसी को भी पता नहीं चल पाया कि यह आवाज कहाँ से आ रही है। उसी तरह, अनादि सम्बन्ध होने के कारण, अखण्ड निसबत के कारण, रूहों की हर बात अक्षरातीत तक पहुँचती है। पहली बात तो यह है कि यदि हम बातिनी रूप से देखें तो—

हक नजीक सेहेरग से, आड़ो पट न द्वार।

राज जी जब शाह-रग (प्राण नली) से भी नजदीक हैं, तो दूरी की कल्पना नहीं है। राज जी तक अपनी बात पहुँचाने के लिये जोर-जोर से लाउड स्पीकर पर चिल्लाने आवश्यकता नहीं है। कबीर जी ने कहा है—

कंकड़ पत्थर जोड़कर, मस्जिद लिया बनाय।

तापर मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाए॥

क्या परमात्मा को सुनायी नहीं पड़ता है कि जोर-जोर से बोलने पर ही वह सुनेगा? सभी मन्दिरों में जाइये। हर पन्थ के मन्दिर में क्या होता है? सवेरे-सवेरे तीन-चार बजे लाउडस्पीकर जोर-जोर से बजाना शुरू कर देते हैं कि हमारे इष्ट तक हमारी आवाज पहुँच जाये। वह तो दिल के भीतर रम रहा है। हमारे दिल में कोई बात आती है, उसके पहले उसको मालूम होता है कि यह सोच क्या रहा है। उसी तरह से अक्षरातीत का, प्रियतम परब्रह्म का साक्षात्कार चेतन आत्मा ही कर सकती है।

चेतन का मेल चेतन से होगा। मन और इन्द्रियों की

पहुँच वहाँ तक नहीं है। इसलिये संसार में जो बड़े-बड़े भक्त हो गये, किसी ने शरीयत की बन्दगी की, किसी ने तरीकत की बन्दगी की, लेकिन वे शरीयत और तरीकत से वैकुण्ठ-निराकार को पार करके बेहद में नहीं जा सके। अक्षर की पञ्चवासनाओं ने इनसे भिन्न मार्ग अपनाया।

सब दरवाजे खोजे कबीरे, बैकुण्ठ सून्य सब देख्या।

आखिर जाये के प्रेम पुकारया, तब जाये पाया अलेखा॥

प्रेम द्वारा शरीर के पर्दे से दूर होना पड़ता है। "मैं" हूँ, इसको भी भूला देना पड़ेगा। जब तक मैं का अस्तित्व है, तब तक तू का अस्तित्व नहीं होगा, और यह केवल प्रेम की राह पर चलने से होगा। संसार शरीयत और तरीकत की राह अपनाता रहा। भक्त और भगवान के

बीच दूरी बनी रही, लेकिन प्रेम ही वह विधा है जिसके द्वारा वह दूरी मिट जाती है और अन्दर बैठी हुई चेतना अपने प्रियतम को पा लेती है। धाम धनी कह रहे हैं—

नासूत बीच फना के।

नासूत के अन्दर होने वाली बन्दगी, जो शरीर और इन्द्रियों के धरातल पर होती है, उस बन्दगी का फल भी सार्थक नहीं हो पाता।

अर्स कायम हमेसगी।

नासूत नष्ट होने वाला है, और परमधाम हमेशा से, अनादि काल से है, अनन्त काल तक रहेगा। जो शरीयत की बन्दगी है, वह नासूत तक ले जाती है। पृथ्वी लोक से ऊपर शरीयत का फल नहीं। कल्पना कीजिये, यदि किसी व्यक्ति ने हनुमान जी के मन्दिर में दिन-रात

परिक्रमा की, हनुमान जी प्रकट हो गये, तो क्या फल मिलेगा? केवल इस संसार की कोई उपलब्धि होगी।

दिल से जो बन्दगी करेंगे, तो वैकुण्ठ तक हमारी अवस्था पहुँच जायेगी। और यदि हमने चेतना के धरातल पर बन्दगी शुरू की, तो निश्चित है कि परमधाम भी दिखेगा, युगल स्वरूप भी दिखेंगे, और हमारी आत्मा हकीकत को पार करके मारिफत की अवस्था में विहार कर सकती है। इसलिये यदि प्रियतम को पाना है, तो शरीयत और तरीकत को छोड़कर हकीकत तथा मारिफत की राह अपनानी ही पड़ेगी।

दुनियां तालुक दिल की।

दुनिया क्या चाहती है? ताल्लुक दिल की। संसार की बन्दगी दिल से जुड़ी हुई होती है। यानि दुनिया अपने

दिल की ख्वाहिशों को पूरा करना चाहती है। इसलिये वह शरीयत और तरीकत की राह अपनाती है।

आपने अष्ट प्रहर की बीतक में सुना होगा। जब छठा प्रहर बीत जाता है, नौ से बारह तक का, जीव सृष्टि पहले ही सोचती है कि कब चर्चा खत्म हो और हम निद्रा देवी की गोद में जायें। कभी-कभी तो चर्चा के बारह बजने के बाद दो भी बज जाते हैं, किसी दिन तीन भी बज जाते हैं, यानि सातवें प्रहर तक भी चर्चा होती रहती है।

जब चर्चा खत्म हो जाती है, ब्रह्मसृष्टि सुन्दरसाथ जो संसार के सारे सुखों से नाता तोड़ चुके होते हैं, वे बारह से तीन बजे तक चर्चा की अर्चा करते हैं, जिससे कि श्री जी के मुखारविन्द से जो कुछ सुना है, उन्हें हमेशा के लिये अपने हृदय में कण्ठस्थ कर लें। इसके

बाद, आठवें प्रहर में भी कुछ सुन्दरसाथ ऐसे होते हैं, जो परमधाम की चर्चनी दोहराते रहते हैं कि आज हमने लीला सम्बन्धित कौन-सी बात सुनी। श्री जी लेटे-लेटे सबकी चर्चा-अर्चा सुनते रहते हैं।

बीतक में स्पष्ट लिखा है, कभी दस, कभी बीस, कभी पच्चीस, कभी चालीस, पचास, सौ तक की संख्या पहुँची। पाँच सौ सुन्दरसाथ तक कभी नहीं पहुँची। पाँच हजार की जमात में पाँच सौ ब्रह्मसृष्टि हैं, डेढ़ हजार ईश्वरी सृष्टि हैं। कयामतनामा में कहा है—

पाँच सौ जुलजुलाहटू, संग रसूल के इत।

यानि पाँच सौ की संख्या पन्ना जी में ब्रह्मसृष्टि के रूप में पहुँची थी। ईश्वरी सृष्टि में ईमान की दृढ़ता है, बन्दगी की प्रबलता है, लेकिन परमधाम का वह प्रेम नहीं

है। अष्ट प्रहर की बीतक में स्पष्ट कह दिया—

अग्यारही जोलों रही, तोलों बहुत चाह धरे।

फेर ठंडे पड़ते गये, लाल कहे अंग ठरे॥

यह ग्यारहवीं सदी कब तक रही? सम्वत् १७४५ में ग्यारहवीं सदी पूरी हो जाती है, लेकिन यहाँ ग्यारहवीं सदी का भाव संवत् १७५१ तक से लिया जायेगा। जब तक हकी सूरत के तन से जाहिरी रूप से लीला चलती रही, तब तक सुन्दरसाथ में दिन-रात चर्चा-चितवनि के सिवाय कोई बात नहीं रही। यह आप पन्ना जी में जो मुरली-मुकुट आदि देखते हैं, पहले नहीं था। सुन्दरसाथ दिन-रात चितवनि में डूबे रहते थे, परमधाम के ध्यान डूबे रहते थे। यानि सम्वत् १७५१ तक जब तक लीला चली, तब तक बहुत चाह धरे। "चाह धरे" का आशय है

कि सबके अन्दर यह तमन्ना बनी रही कि हम परमधाम को देखें। पाँच सौ ब्रह्ममुनियों में से एक भी सुन्दरसाथ ऐसा नहीं था, जिसने परमधाम में भ्रमण न किया हो, युगल स्वरूप को न देखा हो। जैसा कि मैंने कल भी कहा—

जाको दिल जिन भांत सों, तासों मिले तिन विध।

मन चाह्या सरूप होए के, कारज किए सब सिध॥

सुन्दरसाथ इसी तन से, यहीं बैठे-बैठे, युगल स्वरूप के भी दीदार करता था, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का भी दीदार करता था, इच्छा होने पर ब्रज-रास का भी स्वरूप दिखाई देता था, अरब का भी रूप दिखाई देता था। राज जी सबकी चाहना के अनुसार उनकी इच्छाओं को पूर्ण करते थे। लेकिन जैसे-जैसे

समय बीतता गया, सम्वत् १७५१ के बाद—

तीसैं सृष्ट विष्णु सौ बरसे, प्रेमे पीवेगा सब्दों का सार।

श्री जी का अन्तर्धान होने के पश्चात्, जागनी लीला के तीस वर्ष, यानि सम्वत् १७४५ के बाद तीस साल जोड़ेंगे, तो सम्वत् १७७५ होता है। वि.सं. १७४५ के बाद तीस साल तक ईश्वरी की जागनी लीला चली।

ग्यारहवीं के दस, बारहवीं के तीस, ईसा पातसाही बरस चालीस।

यह अलग प्रसंग है। सम्वत् १७४५ के बाद तीस साल तक, सम्वत् १७७५ तक, ईश्वरी सृष्टि का बोलबाला था। यानि जो बड़े-बड़े ब्रह्ममुनि थे, उनसे तो श्री जी की जुदायगी सहन नहीं हुई और उन्होंने तन छोड़ दिया। ईश्वरी सृष्टि का जब राज हुआ, तो ईमान और बन्दगी की महत्ता ज्यादा बढ़ गई, चितवनि किनारे

हो गई। और जब जीव सृष्टि का राज हो गया, तो आप जानते ही हैं, हकीकत की बन्दगी भी समाप्त हो गई, और केवल शरीयत तथा तरीकत रह गई। वही छूत-छात, वही सारे बन्धन। तात्पर्य क्या है?

जब हकीकत और मारिफत की अवस्था होती है, तो प्रियतम के दीदार के सिवाय अन्य कोई भी कामना नहीं होती। शरीर और इन्द्रियों से भक्ति नहीं हो पाती। शरीर और इन्द्रियों से जो कुछ होता है, वह मात्र कर्मकाण्ड होता है। दिल से तरीकत की बन्दगी होती है। अन्तर की चेतना के धरातल पर ही हकीकत और मारिफत की बन्दगी होती है, जो ब्रह्मसृष्टि की राह है। और इसी के द्वारा इस दुनिया में बैठे-बैठे परमधाम को देखा जा सकता है। धनी ने बीतक में कहा है—

आप देखो औरों को देखाओ।

लेकिन यह कब होगा? जब हम शरीयत और तरीकत की राह छोड़ेंगे। बार-बार धनी ने एक ही बात कही है—

ए मूल मिलावा अपना, नजर दीजे इत।

एक पल के लिये भी हमारी नजर मूल मिलावा से हटनी नहीं चाहिये—

खाते पीते उठते बैठते, सुपन सोवत जाग्रत।

दम न छोड़े मासूक को, जाकी असल हक निसबत।।

जब अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ी हमारी सुरता युगल स्वरूप के ध्यान में खोई रहेगी, तो उसमें शरीयत और तरीकत के नियमों के पालन का प्रश्न ही कहाँ होता है? लेकिन मेरे कहने का कोई यह आशय न समझे कि मैं इसका खण्डन कर रहा हूँ कि मन्दिर में मत्था टेकना

बन्द कर दो, प्रसाद लेना बन्द कर दो। जिसकी जो अवस्था है, वह करेगा, लेकिन यदि हमें वास्तव में अपनी आत्मा को जाग्रत करना है, तो अपने दिल में धनी को बसाने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

रूह मोमिन खुदायगी।

परमधाम की ब्रह्मसृष्टि केवल अपने प्राणप्रियतम को पाना चाहती है, इसलिये वह रूहानी बन्दगी करती है। अपनी आत्मा के धाम-दिल में धनी को बसाना चाहती है और यह सबसे सरल और सबसे कठिन है। यदि मन चंचल है, तो ध्यान में नहीं बैठ सकते। मुहम्मद साहब ने केवल अली को तरीकत की बन्दगी सिखाई थी, क्योंकि उनको पूरे अरब में अली के सिवाय कोई योग्य नहीं दिखा, जिसको तरीकत बता सकें। इसलिये जाहेरी मुसलमानों को कह दिया कि पाँच बार नमाज पढ़ो। एक

बार हज भी कर लिया करो, और जकात अर्थात् अपनी आय का चालीसवाँ हिस्सा दान दे दिया करो। इससे तुम कहीं न कहीं बहिश्तों में अखण्ड हो जाओगे। लेकिन यह कहा कि जब इमाम महदी का स्वरूप प्रगट हो, तो ये सब कुछ तुम्हें छोड़ देना है, तब तुम्हें हकीकत और मारिफत की राह अपनानी है।

जो भी सूफी फकीर हुए हैं, उनमें से किसी भी सूफी फकीर ने सच्चे दिल से नमाज नहीं पढ़ी। शरीयत वाले नमाज को ही सब कुछ मानते हैं। वे कहते हैं कि जो नमाज नहीं पढ़ेगा, वह काफिर है। तरीकत वाले कहते हैं कि ये सब कुछ झूठ है। तो कल्पना कीजिए कि आज धाम धनी ने हमें कौन-सी नेमत दी है? सारी दुनिया तो शरीयत और तरीकत में टिकी रह गई। अक्षर की पञ्चवासनायें हकीकत में जाकर रुक गयीं।

हमें तो मारिफत की राह दी गई है, लेकिन मारिफत की राह का तात्पर्य गाना-बजाना नहीं है। मारिफत का मतलब उछल-कूद मचाना नहीं है। मारिफत का मतलब है कि हमारे लिये शरीर का अस्तित्व समाप्त हो जाये, संसार का अस्तित्व समाप्त हो जाये। हमारी आत्मा चौदह लोक युक्त अष्टावरण, शून्य, आदिनारायण, निराकार को पार करते हुए, बेहद को पार करते हुए, परमधाम में श्री राजश्यामा जी की शोभा में डूब गई। आँखों की तरफ नजर गई, तो आँखों में डूब गई। मुखारविन्द की शोभा में गई, मुखारविन्द की शोभा से हट नहीं रही है। हृदय कमल में नजर गई, तो केवल हृदय में डूब गई। खुद का अस्तित्व भुला गई। यह है मारिफत की बन्दगी, जिसमें भोग आदि कुछ इकट्ठा करना नहीं पड़ता। न घण्टी बजाना पड़ता है, न जोर-जोर से परिक्रमा करनी पड़ती

है, न ढोलकी बजानी पड़ती है, केवल आत्मा जानती है और उसका प्रियतम जानता है, तीसरे को कुछ भी खबर नहीं पड़ती है कि क्या हो रहा है।

ऐसा लिखिया बेवरा।

धाम धनी कह रहे हैं कि यह विवरण सभी धर्मग्रन्थों के अन्दर लिखा हुआ है।

सब किताबों मिने।

सभी धर्मग्रन्थों के अन्दर ये विवरण लिखा हुआ है कि शरीयत की बन्दगी क्या है और हकीकत-मारिफत की बन्दगी क्या है।

नुकसान नफा दोऊ देखत।

सबको मालूम है कि किसको अपनाने में हमारा क्या नुकसान है और किसको छोड़ने में हमारा क्या लाभ है।

हर कोई जानता है कि किस कार्य में अपना लाभ है, किसमें हमारी हानि है। मन तो कहता है, लेकिन छोड़ना सरल नहीं होता।

तो भी छोड़े न हठ अपने।

यह खुलासा ग्रन्थ है। हिन्दू और मुस्लिम दोनों को सम्बोधित किया जा रहा है। मुसलमान अपनी शरीयत नहीं छोड़ सकते, हिन्दू अपना कर्मकाण्ड नहीं छोड़ सकते, क्योंकि दोनों ही अज्ञान के बन्धन में फँसे हैं। श्री जी कहते हैं—

ब्राह्मण कहे हम उत्तम, मुसलमान कहे हम पाक।

दोऊ मुड़ी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक।।

दोनों अपने को पाक कह रहे हैं, लेकिन पाक कौन हो सकता है?

पाक न होईये इन पानिए, चाहिये अर्स का जल।

नहाइये हक के जमाल में, तब होईए निरमल॥

हिन्दू कहेगा कि मैं गंगा जल से अपने को पवित्र करता हूँ, मुसलमान कहेगा कि मैं जमजम के पानी से अपने को पवित्र करता हूँ। इस दुनिया में जल से तो केवल शरीर शुद्ध हो सकता है, मन और आत्मा को शुद्ध करने के लिये कुछ और चीज चाहिये। मनुस्मृति में मनु जी ने कहा है—

अद्भिः गात्राणि शुद्ध्यति मनः सत्येन शुद्ध्यति।

विद्या तपोभ्याम् भूतात्मा बुद्धि ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

जल से शरीर शुद्ध होता है, सत्य के आचरण से मन शुद्ध होता है। विद्या और तप से जीव शुद्ध होता है, और ज्ञान द्वारा बुद्धि शुद्ध होती है। जब तक आत्मा

प्रियतम के प्रेम में नहीं डूबती, तक तक वह माया के विकारों को अपने जीव से अलग नहीं कर पायेगी, इसलिये यदि इस संसार में रहते हुए प्रियतम का दीदार करना है, तो हकीकत की राह अपनानी ही पड़ेगी।

इश्क बन्दगी अल्लाह की।

उस प्रियतम की बन्दगी क्या होती है? इश्क में शरीर का कोई लेना-देना नहीं, मन और इन्द्रियों का कोई लेना-देना नहीं। जैसे कि मैंने कल की चर्चा में भी कहा—

इस्क को ए लछन, जो नैनो पलक न ले।

हमारी आत्मा के नेत्र प्रियतम को उस तरह से देखें कि एक पल के लिये भी अवरोध पैदा न हो।

दौड़े फिरे न मिल सके, अन्दर नजर पिया में दे।

हमारी नजर हृद-बेहृद को छोड़कर परमधाम पहुँचे और पल-पल धनी का दीदार करती रहे, इसको इश्क कहते हैं। इश्क का भाव कभी जोर-जोर से गाने या नाचने से नहीं लेना चाहिए। इश्क का तात्पर्य है—आत्मिक दृष्टि से उस प्रियतम को अपलक नेत्रों से देखना। इसमें शरीर का कोई बन्धन नहीं, इन्द्रियों का कोई बन्धन नहीं, मन का कोई बन्धन नहीं, और जीव का भी कोई बन्धन नहीं।

सो होत है हुजूर।

आपके अन्दर कितना प्रेम है और आप प्रेम से धनी को कैसे रिझाते हैं, यही चीज स्वीकार की जाती है। आज सारी दुनिया परमात्मा को खुश करने के नाम पर खून बहाती है। हिन्दू क्या करते हैं? पशुओं की बलि देते हैं। मुस्लिम भी कुर्बानी करते हैं। कुरआन की एक आयत

में लिखा है कि अल्लाह तक पशुओं का रक्त, माँस, और हड्डियाँ नहीं पहुँचते, वहाँ तक पाक बन्दगी पहुँचती है। लेकिन इस आयत को कौन मुस्लिम पढ़ेगा? उसने तो यही सुन लिया है कि अल्लाह तआला को खुश करने के लिये इन-इन जानवरों की गर्दन काटनी है, अल्लाह मियाँ खुश हो जायेंगे।

हिन्दू सोचते हैं कि हम बकरे काटकर देवी को खुश कर लेंगे। यह सब अज्ञानता की बातें हैं। आपके दिल में अपने प्राणवल्लभ प्रियतम के लिये कितना प्रेम है? प्रेम की यह बन्दगी ही स्वीकार की जाती है, जिसमें शरीर से होने वाली बन्दगी का कोई महत्व नहीं है। इन्द्रियों द्वारा, अन्तःकरण द्वारा होने वाली बन्दगी का कोई विशेष महत्व नहीं है, यह रूह जानती है या धाम धनी जानते हैं।

फर्ज बन्दगी जाहेरी।

एक है फर्ज बन्दगी। फर्ज बन्दगी का क्या तात्पर्य है? यह नियम बना लिया है कि एक माला करनी है, दस माला करनी है, यह फर्ज बन्दगी है।

एक महात्मा जी थे। माला का जप करते-करते एक कुँए के पास गये। उनको प्यास लगी थी। दो मातायें वहाँ पानी भर रही थीं। दोनों आपस में बात कर रही थीं कि तुम पतिदेव को कितनी बार याद करती हो? एक ने कहा— "मैं गिन्नू क्यों? वह तो मेरे रोम-रोम में, मेरे दिल में बसा ही रहता है। मैं कितनी बार उसको गिनती रहूँ?"

महात्मा जी ने तुरन्त अपनी माला कुँए के अन्दर फेंक दी। दोनों माताओं ने पूछा— "महात्मा जी! आप तो पानी पीने आये थे, आपने माला क्यों फेंक दी?"

महात्मा जी कहने लगे- "आप दोनों मेरे गुरु हैं। मैं तो अपनी आत्मा के प्रियतम का नाम लेता हूँ, तो गिनता रहता हूँ कि आज एक हजार बार जप कर लिया, आज दस हजार बार कर लिया। मेरे से अच्छे तो आप लोग हैं कि अपने सांसारिक पति को भी दिल में इस तरह से बसाये रहती हैं कि गिनने की आवश्यकता ही नहीं है।"

तात्पर्य क्या है?

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।

करका मनका डार दे, मन का मनका फेर॥

धनी ने स्पष्ट कह दिया-

सौ माला वाओ गले में, द्वादस करो दस बेर।

लेकिन हमें क्या करना है?

नाम माला उर धारो।

प्रियतम के नाम को यदि हम दिल में गुनगुना लेती हैं, तो वह होता है तरीकत। प्रियतम की शोभा को दिल में बसाते हैं, तो वह हो गयी हकीकत, और उसमें डूब जाते हैं, तो हो गई मारिफत की अवस्था। इस कारण हमें अपने वर्तमान स्वरूप को बदलना होगा। जागनी की राह पर चलने के लिये हमें मारिफत की राह पकड़नी पड़ेगी, जिससे हमारी आत्मा पल-पल धनी की सान्निध्यता का अनुभव कर सके। वही कह रहे हैं—

फर्ज बन्दगी जाहेरी।

यानि संसार को जो बन्दगी मालूम पड़ जाती है, दिखाई देती है—

सो लिखी हक से दूर।

वह बन्दगी धाम धनी को कभी स्वीकार नहीं होगी।

धनी को क्या चाहिए? प्रेम। राज जी को खुश करने के लिये यदि आप दस करोड़ का मन्दिर बनवा दें, तो खुश होकर बैठ जायेंगे, किन्तु राज जी को प्रेम चाहिए। परमधाम के एक-एक कण में करोड़ों सूर्यों का प्रकाश है। हम जितनी स्वादिष्ट से स्वादिष्ट मिठाई की कल्पना कर सकते हैं, परमधाम में उससे अनन्त गुना मिठाइयाँ हैं। अच्छी से अच्छी सुख शय्या हम राज जी के लिये तैयार कर सकते हैं। ये हमारे व्यक्तिगत मन की भावनायें हैं। लेकिन इन सबसे क्या होना है? यदि हृदय में प्रेम नहीं, तो श्री राज जी को रिझाया नहीं जा सकता। और भले ही हमारे पास भौतिक द्रव्य नहीं है, हम झोंपड़ी में रहते हैं, लेकिन यदि दिल में लबालब प्रेम झलक रहा है, तो धाम धनी को उस दिल में आकर वास करना ही पड़ेगा।

ऊपर तले अर्स न कहा, अर्स कहा मोमिन कलूब।

ब्रह्मसृष्टि का दिल ही धनी का अर्स है, जिसमें धाम धनी अपनी बैठक करते हैं। इसलिये सुन्दरसाथ को चाहिये कि जो ब्रह्मवाणी का कथन है, उसे अन्तिम सत्य माने। किसी व्यक्ति विशेष के कथन में मतभेद हो सकता है कि ऐसा हो सकता है, ऐसा नहीं हो सकता। लेकिन ब्रह्मवाणी के कथन को अक्षरातीत का कथन मानकर सब सुन्दरसाथ को अंगीकार करना चाहिए।

जैसा कि आपने अब तक सुना, फर्ज बन्दगी (शरीयत की बन्दगी) नासूत तक ले जाती है। हकीकत की बन्दगी जबरूत तक ले जाती है, और मारिफत की बन्दगी अक्षरातीत की शोभा में डुबो देती है। हर सुन्दरसाथ का उत्तरदायित्व है कि अपने को हकीकत और मारिफत की राह पर ले चलकर धनी को दिल में बसाये, और "इतहीं बैठे घर जागे धाम, पूरन मनोरथ हुए

सब काम" की स्थिति को प्राप्त करे, तथा जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य प्राप्त करे।



खिल्वत

आसिक मेरा नाम, रूह-अल्ला आसिक मेरा नाम।

इस्क मेरा रूहन सों, मेरा उमत में आराम॥

खिल्वत १५/१

आप अक्षरातीत धाम के धनी खिल्वत की इस वाणी में बता रहे हैं कि मेरा नाम "आशिक" है। खिल्वत का तात्पर्य है, जहाँ आशिक अक्षरातीत अपनी माशूक स्वरूपा आत्माओं के साथ प्रेम और आनन्द की लीला कर रहा हो।

खिल्वत के सम्बन्ध में सामान्य रूप से एक दृष्टान्त से जाना जा सकता है कि एक बार अकबर बादशाह अपने हरम में गया। वहाँ उसकी जो सबसे बड़ी पत्नी थी, अपनी सहेली के साथ बात कर रही थी। उसने

बादशाह को देखते ही कहा— "आइये मूर्खराज।" अकबर बादशाह का चेहरा तमतमा उठा कि मेरे सामने आँख मिलाने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती और मेरी बेगम अपनी सहेली के सामने मुझे मूर्खराज कहे। चुपचाप वापिस लौट आये।

बीरबल ने देखा कि बादशाह का चेहरा तो लाल हो रहा है। पूछा— "बादशाह! क्या मामला है?" अकबर अपनी कोई भी बात बीरबल से छिपाते नहीं थे। बीरबल से कहा कि मेरी बेगम ने अपनी सहेली के सामने मूर्खराज कहकर मेरा अपमान किया। बीरबल को सुनते हुए हँसी आ गई। अकबर ने कहा— "बीरबल! मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ और तुझे हँसी आ रही है? यदि मैं फाँसी पर चढ़ाता हूँ, तो भी दुनिया में मेरी बदनामी होगी कि अकबर ने अपनी सबसे बड़ी बेगम को फाँसी पर चढ़ा

दिया, और उसको सजा नहीं देता हूँ तो मेरे मन में पीड़ा है कि मेरी बेगम मुझको मूर्खराज कहकर इस दुनिया में रह जाये, यह कैसे सम्भव है।"

बीरबल ने हँसते हुए कहा— "बादशाह! उसने जो किया, ठीक किया। पहली बात तो यह है कि आप सत्ता के स्वरूप में गये थे। जब आप सिंहासन पर बैठे होते हैं, तो उस समय आप बादशाह हैं। खिल्वतखाने में आप बादशाह नहीं हैं। वहाँ आप अपनी बेगम के मात्र पति हैं, और उसको अधिकार है कि वह आपको खिल्वतखाने में मूर्खराज कह सकती है। हाँ, जब आप सिंहासन पर बैठे होंगे, उस समय यदि वह आपका अपमान करती है, तो निश्चित रूप से वह दण्ड की अधिकारिणी है।"

अब आप खिल्वत का अर्थ समझ गये होंगे। जहाँ सत्ता का नामोनिशान नहीं है।

इस दुनिया में जो कुछ भी ज्ञान प्रगट होता है, वह सब कुछ अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत से आता है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ ज्ञान है, वह अव्याकृत के अन्दर मूल रूप से स्थित है। अक्षर ब्रह्म जो अक्षरातीत के स्वयं सत् अंग हैं, उस खिल्वतखाने की लीला के भागी क्यों नहीं बनते? वे स्वयं अक्षरातीत के सत् स्वरूप हैं, लेकिन प्रेम और आनन्द की लीला से वंचित हैं।

यदि हमने संसार वालों की तरह ही नवधा भक्ति का सहारा लिया, संसार वालों की तरह ही कर्मकाण्ड का आचरण करते रहे, तो निश्चित है कि हम खिल्वत के रसपान से वंचित रह जायेंगे। खिल्वत वह है, जहाँ स्वयं का अस्तित्व समाप्त कर दिया जाये।

जब अक्षर की सुरता अरब में आयी और धाम धनी ने अपने जोश का स्वरूप देकर नासूत, मलकूत से परे

जबरूत में बुलाया, तब एक बार अक्षर की आत्मा खिल्वतखाने में पहुँची। नासूत से मलकूत में तो जिब्रिल के साथ उनकी सुरता चली गई। जब योगमाया में प्रवेश करती है, तो अक्षर की आत्मा को जाग्रति होती है कि यह तो मेरा ही फरिश्ता है। और जो अक्षर की आत्मा पहले नासूत, मलकूत को पार करने में जिब्रिल के रहम-ओ-करम पर निर्भर थी, अब अपने ब्रह्माण्ड में जाकर कह रही है- "जिब्रिल! तुम मेरे आदेश से आगे चलो।" लेकिन वही जिब्रिल सत् स्वरूप में जाकर कह देता है- "हुजूर! इसके आगे जाने का मेरा सामर्थ्य नहीं है।" अब अक्षर की आत्मा के अन्दर इश्क भर जाता है और अक्षर की आत्मा इश्क का स्वरूप, जिसको कतेब की भाषा में "रफ-रफ का तख्त" कहते हैं, लेकर मूल मिलावा में पहुँचती है, धनी का दीदार करती है। नब्बे

हजार हरुफ बातें भी सुनती है।

कल्पना कीजिये, इस दुनिया का कोई भी ऋषि, मुनि, योगी, यति आदिनारायण से ज्यादा निर्मल नहीं हो सकता। कदाचित् मान लीजिये कि आदिनारायण से भी ज्यादा निर्मल हो जाये, तो अक्षर ब्रह्म से तो ज्यादा निर्मल नहीं हो सकता जिसके एक इशारे से करोड़ों ब्रह्माण्ड एक पल में बनते और लय को प्राप्त होते हैं, जो अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत का ही साक्षात् स्वरूप है, जिनके बारे में कहा जाता है कि "स्वरूप एक है लीला दोए"। यदि हम उस परमधाम को दिल में बसाना चाहते हैं, तो विचार कीजिये कि हमें अपने हृदय को देह-अभिमान से रहित करना पड़ेगा। जहाँ "मैं" और "मेरा" है, वहाँ "तू" और "तेरा" नहीं हो सकता। प्रेम ही वह मन्जिल है—

पन्थ होवे कोट कल्प, प्रेम पहुँचावे मिने पलक।

खिल्वत का तात्पर्य ही है, जहाँ अक्षरातीत के अन्दर का इश्क प्रवाहित हो रहा हो। पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र में दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं— द्रवीभूत और घनीभूत। इनका तात्पर्य क्या है? जब बर्फ के रूप में पानी जमा हुआ है, तो इसको कहते हैं घनीभूत। और जब सूर्य की गर्मी से वह बर्फ पिघलने लगे, तो उसको कहते हैं द्रवीभूत।

अक्षरातीत के हृदय में इश्क का गंजानगंज सागर है और जब वह गंजानगंज सागर प्रवाह में आ जाये, श्यामा जी और सखियों के रूप में प्रवाहित होने लगे, इश्क के अन्दर से आनन्द का स्वरूप लीला रूप में दृष्टिगोचर हो, इश्क और आनन्द की लहरें क्रीड़ा करने लगे, तो उसको कहते हैं खिल्वत।

खिल्वत का तात्पर्य यह नहीं कि हम मूल मिलावा

में जाकर बैठ गये और कह दिया कि यही खिलवत है। जहाँ आशिक और माशूक बैठे हैं, उस स्थान को खिलवत की शोभा दे दी गई है, अन्यथा आशिक का दिल ही वह खिलवत है, जिसमें माशूक बसा होता है।

अब अक्षरातीत धाम धनी कह रहे हैं—

आसिक मेरा नाम।

इस दुनिया में मेरा नाम आशिक है। आशिक गुण हो सकता है, किसी का नाम नहीं हो सकता। जैसे किसी के अन्दर राज जी के लिये बहुत इश्क आ जाये, तो क्या कहते हैं? यह सुन्दरसाथ राज जी का आशिक है। उसका नाम लेकर सम्बोधित कर रहे हैं। राज जी कहते हैं, "मेरा नाम आशिक है।"

असल अर्स के बीच में, हक का नाम आसिक।

मासूक उलट आसिक हुआ, जो वाहेदत में सुभान।

अब प्रश्न यह है कि यहाँ "नाम" शब्द का क्या अर्थ लें? नाम का अर्थ होता है पहचान। जैसे कई लोग आ रहे हैं, उसमें किसी व्यक्ति का नाम लेकर पुकारते हैं, तो वह समझ जाता है कि मुझे ही पुकारा जा रहा है। इस नाम शब्द से बहुत विवाद खड़ा हो गया है। एक चौपाई आती है—

निजनाम सोई जाहेर हुआ, जाकी सब दुनी राह देखत।

मुक्त देसी ब्रह्माण्ड को, आए ब्रह्म आत्म सत॥

कौन सा निजनाम जाहिर हुआ? कोई कहेगा "श्री कृष्ण जी", कोई कहेगा कि "राज जी", कोई कहेगा "श्री जी साहब जी", कोई कहेगा "प्राणनाथ जी", कोई कहेगा "वाला जी"। ये शब्द तो पहले से हैं। क्या दुनिया ने

कृष्ण शब्द नहीं सुना था या प्राणनाथ शब्द नहीं सुना था? दुनिया वालों को ये शब्द तो पहले से ही मालूम थे। नाम का तात्पर्य है पहचान। पहचान में चार चीजें छिपी हुई हैं— धाम, स्वरूप, लीला, और उसे पाने का मार्ग।

परब्रह्म सच्चिदानन्द कहाँ है, कैसा है, उसकी लीला कैसी है, उसको पाने का मार्ग क्या है? इन चारों की पहचान आज तक दुनिया में नहीं थी। दुनिया यह बाट देख रही थी कि कब पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द अपने परमधाम का ज्ञान लेकर आयें, और उनके ज्ञान को आत्मसात् कर हम उस अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, लीला, और आनन्द रूप की पहचान पाने का मार्ग प्राप्त करें। ब्रह्मसृष्टियों के माध्यम से यह ज्ञान सारी दुनिया में फैलना है। इसलिये कहा है कि जब ब्रह्ममुनि आयेंगे, तो उनके माध्यम से फैलने वाले ज्ञान द्वारा सारे ब्रह्माण्ड को

अखण्ड मुक्ति मिलेगी, जिस ज्ञान में परब्रह्म की पहचान जाहेर होगी। अब तारतम में भी कह दिया है—

सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहित।

परमधाम के सारे ज्ञान के साथ जाहिर हुए, न कि कोई शब्द। आप कोई भी शब्द उच्चारित कीजिए, यदि लक्ष्य अक्षरातीत की तरफ नहीं है, तो कुछ भी लाभ नहीं। शक्कर-शक्कर कहने मात्र से मुख मीठा नहीं हो सकता। इसलिये शब्दों के विवाद में आज सारा संसार पड़ा है, यहाँ चौपाई कह रही है—

आसिक मेरा नाम, रूह अल्लाह आसिक मेरा नाम।

श्यामा जी! मेरा नाम आशिक है।

"आशिक" क्यों कहा गया? जैसे कि मैंने अभी कहा कि अक्षरातीत के दिल में प्रेम के लबालब अनन्त सागर

भरे हैं। इतने सागर हैं कि हमारी बुद्धि कल्पना नहीं कर सकती। सागर की गहराई नापने के लिये नमक का एक ढेला डाल दिया। उसने सोचा कि मैं देखूँ, सागर कितना गहरा है? थोड़ी देर में वह गलकर सागर में विलीन हो गया। परमधाम की आत्मा नहीं जान सकती कि अक्षरातीत के दिल में इश्क का भण्डार कितना है।

रब्द भी क्यों हुआ? रब्द से अर्थ लगाया जाता है कि परमधाम में झगड़ा हो गया। राज जी कह रहे हैं कि मैं आशिक हूँ। श्यामा जी कह रही हैं कि मैं आशिक हूँ। सखियाँ कह रही हैं कि हम आशिक हैं। यदि परमधाम में भी झगड़े होने लगे, तो उससे अच्छा तो कालमाया की ही दुनिया बन जायेगी। रब्द का अर्थ झगड़ा नहीं है। अपने प्रेम की अभिव्यक्ति को इस दुनिया में "रब्द" शब्द से सम्बोधित किया गया है।

कल्पना कीजिये, परमधाम में तो कोई झूठ नहीं बोलेगा। श्यामा जी कह रही हैं कि मैं आशिक हूँ, सखियाँ कह रही हैं कि हम आशिक हैं, राज जी कह रहे हैं कि मैं आशिक हूँ। तीनों सच बोल रहे हैं, क्योंकि जो सखियों का स्वरूप है, वह राज जी से अलग नहीं है। श्यामा जी का जो स्वरूप है, वह राज जी से अलग नहीं है। हकीकत में राज जी ही श्यामा जी और सखियों के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं, पशु-पक्षियों के रूप में वही दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

आशिक ही अपने अन्दर के प्रेम और आनन्द को निकालकर पच्चीस पक्षों, सखियों, और श्यामा जी के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। हकीकत के रूप में वही माशूक बना है, वही आशिक बना है। वही खुद रीझता है, वही खुद रिझाता है। यह बात परमधाम में हम समझ

नहीं पा रहे थे, क्योंकि वाणी के ज्ञान का अवतरण परमधाम में सम्भव नहीं था। जैसे जब आनन्द की लीला होती है, उस समय सत्ता की लीला समाप्त हो जाती है।

परमधाम में वहदत है, जितना इश्क राज जी के अन्दर है, उतना ही इश्क श्यामा जी के अन्दर है, उतना ही इश्क सखियों के अन्दर है, उतना ही इश्क खूब खुशालियों और पशु-पक्षियों के अन्दर है। जर्रे-जर्रे के अन्दर बराबर का तेज है, बराबर की शोभा है। ऐसा नहीं कह सकते कि परमधाम में कहीं ज्यादा सुन्दरता है, कहीं कम सुन्दरता है। कहीं ज्यादा आनन्द है, कहीं कम आनन्द है।

राज जी मूल मिलावा में रहते हैं, तो मूल मिलावा में ज्यादा आनन्द है, शेष हवेलियाँ ऐसे ही वीरान पड़ी हुई हैं, यह न समझिये। परमधाम में हवेली नाम की कोई

चीज नहीं, परमधाम में यमुना जी नाम की कोई चीज नहीं, परमधाम में पुखराज नाम की कोई चीज नहीं। आपको ये बातें अटपटी लग रही होंगी।

यमुना जी क्या है? अक्षरातीत के हृदय का इश्क और श्यामा जी के आनन्द का बहता हुआ जो रस है, वही यमुना जी है।

यमुना जी में दस धारायें क्यों दर्शायी गई हैं? यदि इस संसार में बैठकर हमें प्रियतम को पाना है, तो प्रेम की दस अवस्थायें आती हैं। उनको ही जानने के पश्चात् प्रियतम को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये यमुना जी की दस धारायें दर्शायी गई हैं।

यमुना जी के किनारे सात घाट ही क्यों दर्शाये गये हैं? मन की सात वृत्तियाँ होती हैं। पूरे परमधाम की

लीला राजश्यामा जी के दिल से संचालित होती है। सखियों का दिल भी वही है, जो राज जी और श्यामा जी का दिल है। कोई अन्तर नहीं, क्योंकि वहदत में तन एक, मन एक, आनन्द एक, इश्क एक, शोभा एक, श्रृंगार एक, कोई भी रंचमात्र भी अन्तर नहीं है। मन की सात वृत्तियों को दर्शाने के लिये सात घाटों की कल्पना वर्णित की गई है, शोभा दर्शायी गई है। यह नहीं समझ लेना चाहिए कि केवल सात ही घाट हैं।

केले का वृक्ष कुछ विशेषता लिये हुए होता है। केले का वृक्ष अपने अन्दर सौन्दर्य और कोमलता को छिपाये होता है। अनार के दाने को आप देखिये। अनार के दाने में आप सुई घुसेड़िये, तो क्या होगा? रस निकलना शुरू हो जायेगा। यानि अनार के दाने वहदत के प्रतीक हैं। अनार के दानों में सफेदी और लालिमा मिश्रित श्रृंगार

होता है। अनार का दाना लालिमा और सफेदी लिये होता है। तात्पर्य क्या है, वह किस बात का प्रतीक है? श्यामा जी का रंग सफेदी में लालिमा मिश्रित किस रूप में है, यह दर्शाया जा रहा है। उसी तरह से अमृत है। अमृत किसको कहते हैं, आम को। परमधाम की शोभा में सुगन्धि कैसे छाई है? इसको दर्शाने के लिये अमृत है। आम का वृक्ष दर्शाया गया है। आम के पत्ते को सूंघिये, छाल को सूंघिये, फल को सूंघिये, सबमें उसकी सुगन्धि आती है। इसी तरह से हर चीज का रूपक है। यह नहीं समझ लेना चाहिए कि परमधाम में केले का पेड़ है, लिबोई का पेड़ है।

हमारी बुद्धि इस चीज को ग्रहण कर सके, इसलिये ये सारी चीजें दर्शायी गई हैं। अन्यथा हिमालय पर चले जाइये, देवदार का वृक्ष कितना सुन्दर होता है? ईरान में

एक वृक्ष बहुत ही सुन्दर होता है, कश्मीर में भी उसकी कुछ नस्ल होती है। जो परमधाम के सात घाट बताये गये हैं, जिन वृक्षों का वर्णन किया गया है, उससे भी सुन्दर-सुन्दर वृक्ष इस पृथ्वी पर पाये जाते हैं, उनका नाम क्यों नहीं लिया गया? क्योंकि ये रूपक के तौर पर प्रयुक्त किये गये हैं। उसी तरह से अनन्त परमधाम को सीमाबद्ध कर दिया गया है, ताकि किसी भी तरह से हमारी सुरता इस नश्वर जगत को छोड़कर परमधाम में विचरण कर सके। धनी कहते हैं—

आसिक मेरा नाम, रूह अल्लाह आसिक मेरा नाम।

श्री राज जी कहते हैं कि श्यामा जी! मैं आशिक हूँ, यह मेरी पहचान है। क्योंकि जैसा मैंने कहा, नमक का ढेला सागर से बना है। यदि वह सागर की गहराई को नापने का प्रयास करेगा, तो अपने अस्तित्व को भुला

देगा। इसी तरह, मारिफत के स्वरूप को तब तक नहीं जाना सकता, जब तक हकीकत से पूरी तरह से अलग न हो जायें। हकीकत में रहकर न तो हकीकत की पूरी स्थिति को जाना जा सकता है और न मारिफत को ही जाना जा सकता है। वहाँ से नजर कालमाया के ब्रह्माण्ड में आई और तब सबने समझा कि खिलवत क्या है, निसबत की मारिफत क्या है, इश्क की मारिफत क्या है, वहदत की मारिफत क्या है।

सुख हक इश्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सों करो विचार॥

सुन्दरसाथ को जरा सा भी कष्ट होता है, आँसुओं में अपना चेहरा डुबो लेते हैं कि राज जी ने मुझे बहुत कष्ट दे दिया, बहुत कष्ट दे दिया। जिसके पास कष्ट है ही

नहीं, वह देगा कैसे? यदि हम अक्षरातीत को आरती करते समय "सुख को निधान" कहते हैं, फिर उनको "दुख को निधान" कहने का अधिकार हमें किसने दे दिया? जब वे आनन्द के सागर हैं, प्रेम के सागर हैं, तो क्या आपको दुःखी देखकर उन्हें खुशी होती है? वाणी कहती है—

सुख हक इश्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सों करो विचार॥

आपको किसी ने बहुत अच्छा कह दिया, आपकी स्तुति गा दी, तो आप खुश हो गये, और किसी ने यदि आपको बुरा कह दिया, आपमें कुछ खोट निकाल दी, तो आपका चेहरा तमतमा उठा। यह किसका खेल है? ये मन खुश हो रहा है, मन दुःखी हो रहा है। जो आपके

अन्दर की चेतना का स्वरूप है, वह इन दोनों से अलग है। आत्मा की दृष्टि से देखेंगे कि यह खेल श्री राज जी ने आपको आनन्द में डुबोने के लिये बनाया है।

मेहेर का दरिया दिल में लिया,

तो रूहों के दिल में खेल देखने का ख्याल उपज्या।

परमधाम में भी अक्षरातीत अपना आनन्द उड़ेलते हैं।

मासूक तुम्हारी अंगना, तुम अंगना के मासूक।

ए हुकमें इलमें दृढ़ किया, रूह अजूं क्यों न होत टूक टूक॥

राज जी आशिक भी हैं, राज जी माशूक भी हैं। तात्पर्य क्या है? राज जी आशिक के रूप में हर जगह लीला कर रहे हैं। चाहने वाला एक है। आशिक यानि चाहने वाला, जिसको हिन्दी में प्रेमी कहते हैं। और एक

होता है प्रेमास्पद, जिसको अरबी में कहते हैं माशूक, जिसको चाहा जाये। एक चाहने वाला है और एक वह है जिसको चाहा जाता है। हकीकत की लीला में दो चीजें होती हैं। मारिफत में दोनों एक स्वरूप हो जाते हैं। अब प्रश्न यह है कि कौन आशिक है और कौन माशूक है? यही शुरु से लेकर आखिर तक की वाणी में हर जगह सुनने को मिलेगा। किरन्तन में सुन्दरसाथ कहते हैं—

हम आसिक नाम धराय के, मासूक करें हैं तुम।

यहाँ खिलवत में राज जी कह रहे हैं—

आसिक मेरा नाम, रूह अल्लाह आसिक मेरा नाम।

मेरा नाम आशिक है। सखियाँ कह रही हैं कि "हम आशिक हैं, आप माशूक हैं।" दोनों सच बोल रहे हैं। झूठ का तो प्रश्न ही नहीं होता। इन्सान झूठ बोल सकता है,

असुर झूठ बोल सकते हैं, देवता झूठ बोल सकते हैं, लेकिन परमधाम में रहने वाले अक्षरातीत और अङ्गरूपा आत्मायें क्या झूठ बोलेंगे? सपने में भी नहीं। लीला रूप में राज जी ही बन्दर बने हैं, राज जी ही पशु-पक्षियों के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं, राज जी ही श्यामा जी के रूप में हैं, राज जी ही सखियों के रूप में हैं। और जब तक इस भेद को न समझा जाये, सखियाँ सोचती हैं कि हम तो राज जी को रिझाती हैं। श्यामा जी सोचती हैं कि मेरा काम तो दोनों को प्रेम देना है, अतः आशिक मैं हूँ। जब हम इस दुनिया के भाव से समझते हैं, तो आशिक की व्याख्या यह होती है कि आशिक प्रेम के लिये तड़पता है। बात ये नहीं होती।

रोम-रोम में रम रह्या, पिउ आसिक के अंग।

इस्कें ले ऐसा किया, कोई हो गया एके रंग॥

आशिक के रोम-रोम में माशूक की शोभा बसी होती है। तात्पर्य क्या है? यदि राज जी कहते हैं कि मैं आशिक हूँ, तो उनके रोम-रोम में पूरा परमधाम बसा हुआ है। वे आशिक किस प्रकार से हैं—

अल्लाह मुहब्बा मासूक, सो खासी खसम अपना दिल।

राज जी के दिल के स्वरूप क्या हैं? श्यामा जी। पूरा परमधाम राज जी के दिल का स्वरूप है और राज जी के दिल से ही सारी लीला होती है। राज जी ने अपने दिल के प्रेम और आनन्द को जो प्रकट किया है, वे हैं परमधाम के पच्चीस पक्ष। श्यामा जी, सखियाँ, महालक्ष्मी, और अन्य जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, राज जी के अन्दर के इश्क का लबालब सागर अपने द्वारा प्रकट रूपों से ही इश्क कर रहा है।

हम इस दुनिया के भावों से समझेंगे, तो यही सोचेंगे कि राज जी इश्क चाहते हैं। राज जी में इश्क की कमी नहीं है। इस दुनिया का आशिक इश्क का रसपान करना चाहता है, तो अपने माशूक के लिये तड़पता है। ये भाव परमधाम में नहीं घट सकता। परमधाम में कमी नाम की कोई चीज नहीं। न श्यामा जी के पास इश्क की कमी है, न सखियों के पास इश्क की कमी है, और न राज जी के पास इश्क की कमी है।

इस दुनिया में तो कोई कह सकता है कि तुम मेरे लिये तड़पते हो, मैं तुमको इश्क देता हूँ तो तुम्हारे इश्क की पूर्ति हो पाती है। यानि कोई भी माशूक दावा कर सकता है कि मेरा इश्क तुम्हारे से ज्यादा है। राज जी के अलावा परमधाम में जब कोई दूसरा है ही नहीं, रिझाने वाला भी वही है, जिसको रिझाया जा रहा है वह भी वही

है, श्यामा जी भी वही है, सखियाँ भी वही है, महालक्ष्मी भी वही है। श्री राज जी के हृदय का स्वरूप सारी लीला कर रहा है, इसलिये यहाँ राज जी कह रहे हैं—

आसिक मेरा नाम, रूह अल्ला आसिक मेरा नाम।

श्यामा जी! तुम मेरा ही रूप हो। मेरा ही रूप सखियाँ हैं, मेरा ही रूप परमधाम के पच्चीस पक्ष हैं।

अंग और तन की बात आती है। राज जी ने क्या कहा है—

तुम रूहें मेरे तन हो, तुमसों इश्क जो मेरे दिल।

तन का तात्पर्य क्या है? सखियों के जो तन हैं, वे राज जी के तन हैं। उन तनों में कौन बैठा हुआ है? राज जी। जब उन तनों के अन्दर राज जी ही बैठे हुए हैं, फिर उन तनों के राज जी से अलग होने की कल्पना कैसे की

जा सकती है। श्यामा जी को दिल का स्वरूप कह दिया गया। दिल ही तो सब कुछ है। कल्पना कीजिये कि आपके शरीर से दिल निकाल दिया जाये, तो आपके शरीर में क्या बचेगा? बिना दिल के तो कोई सोच नहीं सकता, बिना दिल के तो कोई मनन नहीं कर सकता, बिना दिल के तो पानी का गिलास भी आप नहीं पी सकते। आप खुद को भूल जायेंगे कि मैं कौन हूँ। परमधाम की सारी लीला राज जी के दिल से है, कालमाया की सारी लीला आदिनारायण के दिल से है, और बेहद की सारी लीला अक्षर के हृदय से है।

श्यामा जी का स्वरूप ही राज जी के दिल का स्वरूप है और श्यामा जी के दिल का स्वरूप ही सखियों के दिल का स्वरूप है। सखियों का दिल ही खूब खुशालियों का स्वरूप है। राज जी, श्यामा जी के इश्क

का बहता हुआ रस ही यमुना जी और परमधाम के पच्चीस पक्ष हैं, तो राज जी और श्यामा जी से भिन्न कल्पना ही क्या है कि कौन आशिक और कौन माशूक? ये तो लीला रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। और सभी स्वरूप, चाहे श्यामा जी का स्वरूप हो, चाहे सखियों का स्वरूप हो, या राज जी का स्वरूप हो, सभी कह रहे हैं कि हम आशिक हैं। सब सच बोले रहे हैं। रात्रि में शयन आरती होती है। शयन आरती में जब स्वरूप पढ़ा जाता है, तो क्या कहा जाता है—

श्री राजश्यामा जी अपने मन्दिरों पधारे।

सब सखियाँ अपने मन्दिरों में पधारीं॥

रंग प्रवाली मन्दिर में राज जी, श्यामा जी का शयन कराया जाता है। लीला रूप में, जब हम यहाँ की दृष्टि से

सोचें, तो हर आत्मा के साथ राज जी का स्वरूप कहाँ से आ जाता है? जो सखियों का स्वरूप होता है, उनके अन्दर से ही राज जी का स्वरूप प्रकट होता है। सखियों के हृदय में जो राज जी का स्वरूप होता है, और श्यामा जी के हृदय में जो राज जी का स्वरूप होता है, दोनों में कोई भी अन्तर नहीं होता है। स्पष्ट है कि सखियों के रूप में राज जी विराजमान होकर लीला कर रहे हैं। इसलिये यदि परमधाम में सखियाँ कह रही हैं कि हमारा इश्क बड़ा है, हम आपको रिझाती हैं, तो कोई झूठी बात नहीं है। श्यामा जी कहती हैं कि मेरा इश्क बड़ा है, तो कोई झूठ नहीं है। "बड़ा" शब्द क्यों कहा जा रहा है? वहदत के अन्दर तो छोटे-बड़े की बात नहीं है, लेकिन यहाँ बड़ा कहने का तात्पर्य क्या है? यह स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। प्रेम करने वाला कभी भी अपने प्रेम को

छोटे रूप में नहीं कह सकता।

घर-घर झगड़े होते हैं। पति का कहना होता है— "तुम तो घर बैठी रहती हो। मैं आठ घण्टे, दस घण्टे, बारह घण्टे धूप में पसीना बहाता हूँ।" पत्नी का कहना होता है— "आप तो बिस्तर पर सोये रहते हैं। मुझे चार बजे उठकर चूल्हा-चक्की करना पड़ता है। बच्चों को सम्भालना पड़ता है।" दोनों अपनी-अपनी कुर्बानी की महत्ता को दर्शाते हैं। आशिक कभी कह ही नहीं सकता कि मेरा प्रेम छोटा है। इस दुनिया के शब्दों में यही भाव दर्शाया गया है कि परमधाम में रब्द हुआ। परमधाम में विवाद नाम की कोई चीज नहीं। यहाँ के भावों से हम रब्द कह सकते हैं, वह तो प्रेम की अभिव्यक्ति है।

राज जी ही रीझने वाले, राज जी ही रिझाने वाले हैं, और राज जी ही माशूक का स्वरूप बने हैं, जिनको

आशिक के रूप में खुद रिझाते हैं। उस स्वलीला अद्वैत को न समझने के कारण ये सारी बातें होती हैं और हमारी बुद्धि वहाँ की लीला को आत्मसात् कर सके, इसलिये ये सारी बातें कहनी पड़ती हैं कि राज जी कहते हैं कि मेरा इश्क बड़ा, श्यामा जी कह रही हैं कि मेरा इश्क बड़ा, और सभी रब्द कर रहे हैं। रब्द का अर्थ, झगड़ा कर रहे हैं। क्या परमधाम में झगड़ा होता है? वहदत में झगड़ा! इश्क का सागर क्या झगड़ा करेगा, जो कहता है—

दुख न देऊं फूल पांखड़ी, देखूं शीतल नैन।

उपजाऊं सुख सब अंगों, बोलाऊं मीठे बैन॥

जो इस माया की दुनिया में भी महामति जी के तन से यह कहलवा रहा है, क्या वह अपनी अँगरूपा

आत्माओं के साथ झगड़ा करेगा?

हम रूहें बका मिने, सो सब रूह अल्लाह के तन।

सखियों को श्यामा जी का तन कहा गया, राज जी का भी तन कहा गया। सखियों को राज जी का अंग कहा गया, श्यामा जी का भी अंग कहा गया। इसलिये अंग और तन से किसी भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। अंग और तन का तात्पर्य यही है कि राज जी ही सखियों के रूप में हैं, राज जी ही श्यामा जी के रूप में हैं।

रंगमहल कहने के लिए रंगमहल है, रंगमहल पूरा चेतन है। वह इस दुनिया के भवन जैसा नहीं है, जो ईंटों और पत्थरों से चुनकर बना और रख दिया गया। पूरा परमधाम इश्क का स्वरूप है, पूरा परमधाम आनन्द का स्वरूप है, पूरा परमधाम चेतन है। एक-एक कण

अक्षरातीत का स्वरूप है। इसीलिये तो धर्मग्रन्थों में कहा—

सर्वम् खल्विदं ब्रह्म।

परमधाम में परब्रह्म के सिवाय किसी अन्य वस्तु की कल्पना भी अन्धेरे को जन्म देती है। जब अक्षरातीत धाम धनी कह रहे हैं कि श्यामा जी! आशिक मैं हूँ। मेरी पहचान ही आशिक है। नाम का तात्पर्य क्या है? पहचान। आप नाम से कभी विवाद में न पड़िये कि राज जी का क्या नाम है? यह ब्रज का नाम श्री कृष्ण जी का है, जागनी वाले ब्रह्माण्ड में हम श्री जी कह देते हैं। अपने-अपने भावों की अभिव्यक्ति है। लक्ष्य रखिये अक्षरातीत धाम धनी पर। जिन्हें ब्रज का नाम प्रिय हो, वे श्री कृष्ण जी कहें, जिन्हें जागनी का स्वरूप प्रिय हो, वे श्री जी कहें, इसमें किसी विवाद में पड़ने की

आवश्यकता नहीं है।

हाँ, यह जरूर है कि इस जागनी के ब्रह्माण्ड में जो श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान नहीं करेगा, उसको पश्चाताप् अवश्य करना पड़ेगा। इन्द्रावती जी भी कहती हैं—

साहेब चले वतन को, केहे केहे बोहोतक बोल।

मेरे धाम धनी मेरी आँखों के सामने से चले गये, लेकिन मेरी आँखें उनको पहचान न सकी। जिसने ब्रह्मवाणी दी, उस अक्षरातीत को यदि आप पहचानेंगे नहीं, तो प्रायश्चित्त तो करना ही होगा।

तुम हीं उतर आये अर्स से, इत तुम हीं कियो मिलाप।

तुम हीं दर्ई सुध अर्स की, ज्यों अर्स में हो आप।।

परमधाम में राज जी नूरी स्वरूप से हैं, यहाँ आवेश

स्वरूप से महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान हुए हैं। इसलिये जागनी का वह स्वरूप जो श्री प्राणनाथ जी के रूप में जाहिर हुआ है, उसकी तो पहचान करनी ही पड़ेगी, तभी आत्मा अपने को जाग्रत होने का दावा कर सकती है। अब कह रहे हैं- "रुहों! मेरा नाम आशिक है, मेरी पहचान ही आशिक की है। मेरे दिल में जो इश्क का गंजानगंज सागर उमड़ रहा है, उससे ही तुम्हारा भी स्वरूप है। मैं तुमको रिझाता हूँ, तुम मुझे रिझाते हो, लेकिन असल बात यह है कि तुम्हारे स्वरूप में मैं ही हूँ। इसलिये एकमात्र आशिक कौन है? मैं। इश्क का गंजानगंज सागर कौन है? मैं।"

यदि परमधाम की वहदत की दृष्टि से देखें, तो सभी इश्क के सागर हैं। मेहर के सागर से पहले निसबत का सागर आता है। सातवाँ सागर निसबत का है। उसकी

आखिरी चौपाई है—

श्री महामति कहे ऐ मोमिनोँ, ए निसबत इस्क सागर।

ल्यों प्याले हक हुकमें, पियो फूल भर भर॥

राज जी इश्क के सागर हैं, तो यहाँ निसबत के स्वरूप कौन हैं? रूहें। रूहों को इश्क का सागर कहा गया है। इस संसार में हमारी स्थिति क्या है—

सब अंग हमारे हक हाथ में, इस्क मांगे रोए—रोए।

सब अंग हमारे बांध के, हक आप करे हांसी सोए॥

इश्क हमारे पास है नहीं। हम तो शरीयत और तरीकत की दीवारों से अपना सिर टकरा रहे हैं। अक्षरातीत धाम के धनी परमधाम की तरफ हमारी सुरता को ले चलने के लिये कहते हैं—

ल्याओ प्यार करो दीदार।

इश्क लाओ तो मैं तुमसे मिलूँगा।

इस्क बिना न पाइये, ए जो नूरतजल्ला हक।

हमारा इश्क कहाँ गया? क्योंकि हमारी नजर उन जीवों पर पड़ गई है, जो जन्म-जन्मान्तरों से माया के अन्दर भटकते रहे हैं। उनको कुछ भी पता नहीं है कि परमधाम कैसा है, परमधाम के दीदार के लिये, युगल स्वरूप के दीदार के लिये, हमें किस तरह से माया की तृष्णाओं को छोड़ना पड़ेगा। धाम धनी अपनी पहचान बता रहे हैं कि श्यामा जी! मेरा नाम ही आशिक है।

इस्क मेरा रुहन सों।

मेरा इश्क किससे है? आत्माओं से। आत्मा किसको कहते हैं? कल्पना कीजिये कि मैं हूँ यहाँ। यदि मेरे शरीर से रुह निकल जाये, तो मेरा शरीर कैसा हो

जायेगा, जिन्दा रहूँगा या मुर्दा? हम अक्षरातीत को कहते हैं कि आप हमारे प्राणनाथ हो। राज जी क्या कहते हैं—

प्रीतम मेरे प्राण के, अंगना आतम नूर।

मन कलपे खेल देखते, सो ए दुख करुं सब दूर॥

प्राणों के प्रियतम और प्राणनाथ में क्या अन्तर है? यदि हम अक्षरातीत को प्राणनाथ कहते हैं, तो वे भी हमें प्राण प्रियतम प्राणनाथ कहते हैं। उनका यह भाव है। रूह कोई भिखारिन नहीं है, जो राज जी से भीख माँगा करे कि राज जी! कृपा कर दो, हमें तो निसबत की पहचान भी नहीं है। निसबत की पहचान जागनी ब्रह्माण्ड का सबसे बड़ा मुद्दा है। वाणी का ज्ञान आना भी सरल हो सकता है, राज जी का दीदार भी सरल हो सकता है, अन्दर बैठक हो जाये यह कार्य भी सरल हो सकता है,

लेकिन निसबत की पहचान बहुत कठिन है।

श्यामा जी को राज जी ने तीन बार दर्शन दिया, उनके अन्दर बैठकर जागनी का कार्य शुरू हुआ, आड़िका लीला होने लगी। जब श्री देवचन्द्र जी चर्चा करते हैं, तो श्री राज जी का आवेश उनके अन्दर से प्रगट होकर ब्रज-रास की लीलाओं को दिखाता है, यमुना जी का खलखलाता हुआ जल दिखाता है, लेकिन श्यामा जी को खुद निसबत के स्वरूप की पूर्ण पहचान नहीं है।

यों उनहत्तर पातियां, लिखियां धाम धनी पर।

तब सैयां हम भी लिखी, पर नेक न दई खबर॥

श्यामा जी इन्द्रावती से, सुन्दरसाथ से सिफारिश करती हैं कि जब राज जी प्रगट हों, तो आप मेरी

सिफारिश उन तक पहुँचा देना कि जागनी का कार्य मेरे तन से करवायें। इसका मतलब क्या है? निसबत के स्वरूप की पहचान का न होना। जब इन्द्रावती जी की आत्मा हब्शा में जाग्रत होती है, तो क्या कहती है—

मैं तो अपना दे रही, पर तुम ही राख्यो जीउ।

बल दे आप खड़ी करी, कछु कारज अपने पीउ।।

एक तन में जब श्यामा जी की आत्मा है, तो होड़ पड़ी हैं कि मेरे तन से जागनी करवाई जाये। जब दूसरे जामे में बैठती हैं, तो इन्द्रावती की आत्मा कहती हैं कि मुझे जागनी कार्य नहीं करना, मुझे तो आपको रिझाना है। इन्द्रावती की आत्मा ने निसबत के स्वरूप की पहचान कर ली और पहले जामे में श्यामा जी की आत्मा पूर्ण रूप से जाग्रत नहीं हुई। इसी को कहा है—

बरस निन्यानबे लो रही हुरम।

निन्यानबे साल तक श्यामा जी पर्दे में रहीं। १६३८ में जन्म होता है, उसमें ९९ जोड़ देंगे, तो होगा १७३७। १७३५ के बाद ही श्यामा जी की पातसाही के चालीस वर्ष शुरू होते हैं। १७३५ के पहले श्यामा जी ने अपनी असल पहचान नहीं की थी।

आप वाणी पढ़कर कह देंगे कि हम तो परमधाम से आये हैं, हमारे मूल तन नूरी हैं, परात्म के जो तन हैं और राज जी के अंग हैं। पढ़ी-पढ़ाई बातें हर कोई कह सकता है, लेकिन क्या किसी ने उस परात्म के भाव में डूबकर अपनी जीवनचर्या बनायी? यह तो केवल कुछ क्षणों के लिये होता है, कुछ समय के लिये होता है, जब आत्मा शरीर को छोड़कर, संसार को छोड़कर प्रियतम का एकटक दीदार कर रही होती है। उस समय शरीर का

भाव समाप्त हो गया होता है, संसार का भाव समाप्त हो गया रहता है, और केवल किसी-किसी परमहंस के अन्दर यह भावना होती है कि मैं वही हूँ जो मूल मिलावा में बैठी हैं। यह राज जी की अपनी मेहर के ऊपर है। श्यामा जी के अन्दर बैठ गये हैं, श्यामा जी के तन से जागनी हो रही है, सुन्दरसाथ उनको राज जी का ही स्वरूप मान रहा है, फिर भी निसबत की पूर्ण पहचान नहीं है। इसलिए—

जित निसबत तित सब।

जिन्होंने निसबत को जाना, उन्होंने सब कुछ जाना। कल्पना कीजिए कि यदि आपने निसबत की पहचान कर ली है, तो राज जी के आगे कटोरे लेकर भीख क्यों माँगते हैं कि राज जी! आप हमारा काम कर दीजिए, हमारा बिज़नेस ठीक चला दीजिए, हमारे बेटे की

नौकरी लगा दीजिये, तो हम पाठ रख लेंगे। यह भीख माँगने की आदत क्यों? क्या आपने निसबत के अधिकार को समझा? निसबत का क्या कर्त्तव्य है, क्या हमने यह समझा?

यदि निसबत के कर्त्तव्य को हमने समझ लिया, तो राज जी हमारे दिल में पहले नम्बर पर होने चाहियें। हम उन्हें दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे नम्बर पर रखते हैं, और पाठ रखकर, मेहर सागर का पाठ कराकर, जाप कराकर, हमने अक्षरातीत को दुनिया के भगवानों की तरह बना दिया। स्पष्ट है कि न हमें निसबत की पहचान है, न निसबत के अधिकार की पहचान है, और न निसबत के कर्त्तव्य की पहचान है। अक्षरातीत कह रहे हैं—

इश्क मेरा रूहन सों।

मेरा इश्क आत्माओं से है। वे आत्मायें, जिनके बिना मेरा भी अस्तित्व नहीं है। जैसा मैंने अभी कहा, यदि मेरे शरीर से मेरी आत्मा निकल जायेगी, तो मेरे शरीर को या तो जलाया जायेगा, या तो मिट्टी में दफन कर दिया जायेगा। मेरा अस्तित्व आत्मा से है, उसी तरह से अक्षरातीत को सच्चिदानन्द तभी कहा जा रहा है, जब वे आनन्द की क्रीड़ा करते हैं। यदि आनन्द रूप आत्माओं के बिना उसकी लीला नहीं हो सकती, तो संसार को क्या पता चलेगा कि अक्षरातीत कौन सी बला है, कौन सत्-चित्-आनन्द है? यदि अक्षरातीत परमधाम में अकेले बैठे रहा करें, तो उनको सच्चिदानन्द कैसे कहा जा सकता है? इस प्रकार जो रूहें हैं, जो श्यामा जी हैं, उनके प्राणनाथ अक्षरातीत हैं, और राज जी के प्राणनाथ श्यामा जी तथा सखियाँ हैं। यहाँ

प्राणनाथ शब्द से तात्पर्य किसी व्यक्ति विशेष से मत समझिये। प्राणनाथ का तात्पर्य है, जो हमारे जीवन का सर्वस्व है।

आसिक इन चरण की, आसिक की रूह चरण।

रूहें क्या हैं? धनी के चरणों की आशिक हैं, और आशिक की रूह चरण, धनी के चरण ही रूहों के जीवन के आधार हैं। यानि परमधाम की ब्रह्मसृष्टि धनी के चरणों के बिना रह ही नहीं सकती। चरणों का तात्पर्य, केवल ये पैर का भाव नहीं, यहाँ लाक्षणिक भाव दर्शाया गया है। जैसे कोई व्यक्ति किसी पूज्य के पास आता है, तो पूछता है कि कैसे आये हो? वह कहता है कि हम तो आपके चरणों में आये हैं। भाई! चरण तो अधिक से अधिक किसी का एक फीट लम्बा होगा। छह फीट का आदमी चरणों में थोड़े ही आयेगा। आया तो कमरे में है, लेकिन

पास आने के लिये कहा जाता है कि हम आपकी सान्निध्यता में आये हैं।

उसी तरह, यदि हम कहते हैं कि हम तो चाहते हैं कि आपके चरणों में रहें, आपके चरणों में बसे रहें, यानि चरण का तात्पर्य स्वरूप से है। परमधाम की ब्रह्मसृष्टि युगल स्वरूप को एक पल के लिये भी अपने दिल से अलग नहीं कर सकती।

पाव पल छोड़े नहीं, भला चाहे आपको जे।

जो अपना भला चाहते हैं, इस संसार में उनके लिये राज जी की तरफ से एक ही सिखापन है कि एक पल के चौथाई हिस्से के लिये भी अपने दिल से युगल स्वरूप की छवि को न भुलायें।

मेरा उम्मत में आराम।

धाम धनी कहते हैं कि मेरा आराम किसमें है, मेरा सुख किसमें है? ब्रह्मसृष्टियों में। ब्रह्मसृष्टियों के रूप में कौन है? मैं ही तो ब्रह्मसृष्टियों के रूप में हूँ, मैं ही तो श्यामा जी के रूप में हूँ। लीला रूप में कोई कुछ बनता है, कोई कुछ बनता है। जब दुनिया के भावों से सोचेंगे, तो क्या होगा? बन्दर साग-भाजी के टोकरे ले जाकर पहुँचा देते हैं और सखियाँ पशु-पक्षियों पर बैठकर सवारी करती हैं, क्योंकि इस दुनिया में ऐसा होता है। यही भाव परमधाम की लीला को समझने के लिये केवल दर्शाया गया है।

यदि हम परमधाम की वहदत की दृष्टि से देखें, तो जो बन्दर बने हैं वे कौन हैं? जो पशु-पक्षी सखियों को अपने ऊपर बैठाकर उड़ते हैं, चलते-फिरते हैं, वे पशु-पक्षी कौन हैं? श्री राज जी के सिवाय जब कोई दूसरा है

ही नहीं, तो लीला रूप में वही दृष्टिगोचर हो रहा है। यदि हम उसे आत्मिक नजर से देखें, तो स्थिति कुछ और हो जायेगी।

हकें इल्म ऐसा दिया, हुआ इश्क चौदे तबक।

मूल डाल पात पसरया, नजरोँ आया सबन॥

यह इल्म की महिमा है। इस खुदाई इल्म ने हमें यहाँ बैठे-बैठे परमधाम के पच्चीस पक्षों में घुमा दिया। युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार को दिल में बसा दिया। यदि हमने अपने दिल में इश्क के सागर को बसा लिया, तो स्थिति ऐसी भी बन सकती है कि जिस प्रकार आँखों पर हरे रंग का चश्मा लगाने से हर वस्तु हरे रंग की दिखती है, उसी प्रकार चौदह लोक भी हमें इश्क से लबालब दिखने लगेगा। लेकिन यदि हमने अपने दिल में प्रेम के

स्वरूप को नहीं बसाया, तो यह संसार श्मशान की तरह कष्टकारी प्रतीत होगा। कलश हिन्दुस्तानी के अन्दर कहा है—

इस्क बड़ा रे सबन में, ना कोई इस्क समान।

एक तेरे इस्क बिना, उड़ गई सब जहान।।

धाम धनी! यदि आपका इश्क मेरी आत्मा के अन्दर नहीं आया, "तो उड़ गई सब जहान", यानि संसार हमारे लिये निरर्थक है और इश्क आ गया तो भी निरर्थक है। इश्क आ जायेगा तो दो बातें होंगी। इश्क आ जाने पर जब दिल में युगल स्वरूप बस जायेंगे, तो संसार का मोह नहीं रहेगा। संसार रहते हुए भी हमारे लिये नहीं रहेगा, लेकिन इसमें प्रियतम के प्रति इश्क की छाया हमें दिखाई पड़ेगी।

दोनों में अन्तर है। इश्क नहीं है, तो हमारा जीवन वीरान हो जायेगा। हमारी आत्मा वीरानगी का अनुभव करेगी कि संसार में क्या है। जब प्रियतम दिल में बस जायेगा, तो निश्चित है कि "जित देखूं तित श्याममयी" की स्थिति बन जायेगी। महामति जी के धाम-हृदय में बैठकर अक्षरातीत अपनी पहचान दे रहे हैं—

इस्क मेरा रूहन सों, मेरा उम्मत में आराम।

ब्रह्मसृष्टियों को आनन्द के सागर में डुबोने में ही मुझे आनन्द आता है। अक्षरातीत के पास सिफारिश करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। हम सिफारिश किससे करवाते हैं? किसी बड़ी हस्ती को देखते हैं, तो उससे सिफारिश करवाते हैं कि मेरी आत्मा की बात राज जी तक पहुँच पा रही है या नहीं। कहीं मध्यस्थता हो जाये, तो राज जी हमारी बात सुन लें। याद रखिये, निसबत का

सम्बन्ध सबसे जुड़ा हुआ है। आवश्यकता यही होती है कि हम ज्ञान के प्रकाश में अपने को डुबोयें। यदि किसी महान विभूति से हमें ज्ञान का प्रकाश मिलता है, तो उस ज्ञान के प्रकाश को लें। यदि हमें परमधाम के दीदार की राह मिलती है, तो हम उसको लें। यदि ध्यान-चितवनि की बारीकियाँ मिलती हैं, तो उसे लें। लेकिन यह ध्यान रखिये, परमधाम में सिफारिश नहीं चला करती। हाँ! शुभकामना जरूर होती है।

जाको मेहर करे मोमिन, ताए सुपने नहीं होए दोजख।

जिस पर किसी ब्रह्मसृष्टि की कृपा हो जाती है, कोरे से कोरे जीव पर, उसको स्वप्न में भी जन्म-मरण का चक्र नहीं होगा और ये बात धाम धनी ने कही है—

हकें दोस्त कहे औलिये, भए ऐसे जो बुजरक।

इनों को देखे से सबाब, जैसे याद किये होए हक।।

ब्रह्ममुनियों के दर्शन से जीवों को परमात्मा की भक्ति करने जैसा फल प्राप्त होता है। किसी ब्रह्ममुनि परमहंस की सान्निध्यता में आप रहेंगे, तो उसका परिणाम यह होता है कि आपके जीव का कठोर स्वभाव धीरे-धीरे नर्म पड़ना शुरू हो जाता है। जिस तरह से कबीर जी ने कहा है—

कबीरा संगत साध की, जो गंधी का वास।

जो कुछ गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास।।

कहीं इत्र बिक रहा हो, यदि इत्र बेचने वाला इत्र की एक बूँद न भी दे, तो सुगन्धि को रोक नहीं सकता। सुगन्धित गुलाब के फूलों के पास खड़े हो जाइये, तो

हवा के झोंके उसकी सुगन्धि आप तक पहुँचा ही देंगे। इसलिये किसी महान विभूति की सान्निध्यता में रहकर, उसके गुणों को आत्मसात् करने के बाद भी उस मन्जिल तक पहुँचा जा सकता है। इसलिये यह तो जरूर करना चाहिये कि जहाँ से ज्ञान का प्रकाश मिले, प्रेम की राह मिले, परमधाम की ज्योति मिले, वहाँ से उस लाभ को अवश्य लेना चाहिये।

लेकिन यह सोचना कि राज जी सिफारिश पर खुश हो जाया करते हैं, निसबत के अधिकार को, निसबत के कर्त्तव्य को गँवाना होता है। यह सुन्दरसाथ पर निर्भर करता है कि कौन कितना निसबत की पहचान करता है। देखना है कि निसबत की पहचान कर कौन इश्क-ईमान लेकर दौड़ लगाता है और अपने दिल में धनी को बसाता है।

इलम ले चलो अर्स का।

धाम धनी क्या कह रहे हैं? हमें कौन सा इल्म लेकर चलना है? परमधाम का अलौकिक ज्ञान। उस परमधाम के अलौकिक ज्ञान द्वारा हमारी आत्मा संसार से किनारा कर लेगी। विचार कीजिये, आप जितने भी सुन्दरसाथ यहाँ बैठे हैं, जब तक वाणी आपको नहीं मिली थी, तारतम का प्रकाश आपके हृदय में आलोकित नहीं हुआ था, तब तक सम्भव है आप सब भी मूर्तियों की उपासना करते होंगे, देवी-देवताओं की पूजा किया करते होंगे, शालिग्राम के ऊपर मत्था टेकते होंगे, पेड़-पौधों की पूजा आप भी कर रहे होंगे।

लेकिन उस परमधाम के ज्ञान ने आपके अन्दर निष्ठा भर दी है कि सारी दुनिया का राज भी मिल जाये, तो भी राज जी को छोड़कर किसी अन्य को अपनी

आत्मा का प्रियतम बनाने के लिये कोई जागरूक सुन्दरसाथ तो मेरी समझ से तैयार नहीं होगा। एक तरफ सारे ब्रह्माण्ड का राज और एक तरफ राज जी का प्रेम। जागरूक आत्मा राज जी के प्रेम को ही सब कुछ मानेगी, संसार के सुखों को ठोकरें मार देगी। वही कह रहे हैं—

इलम ले चलो अर्स का, खोल दियो हकीकत।

यह खुदाई इल्म हकीकत को स्पष्ट करेगा। परमधाम में यथार्थता क्या है? परमधाम में किसका इश्क बड़ा है? क्या परमधाम में इश्क भी बड़ा हो जायेगा और किसी के पास कम इश्क होगा? यदि इश्क छोटा और बड़ा है, तो वहदत की बात करना अनुचित है। जब हम खिल्वत के अन्दर वहदत को मानते हैं, निसबत के साथ खिल्वत को जोड़ते हैं, खिल्वत के साथ वहदत को जोड़ते हैं, निसबत, खिल्वत, वहदत में युगल स्वरूप की छवि को

देखते हैं कि किस प्रकार सारा परमधाम राज जी से ही है, तो वहाँ छोटे और बड़े का प्रश्न ही नहीं होता।

हम इस दुनिया में साहेब की भावना कर सकते हैं। इस दुनिया में वे साहेबी दिखाने आये हैं, तो कह सकते हैं कि राज जी हमारे साहेब हैं। परमधाम में तो सभी एक स्वरूप हैं। सभी लीला के सागर में डूबे हुए हैं और उस लीला रस को इस दुनिया के किसी भी शब्द से व्यक्त नहीं किया जा सकता, न किसी भाषा में इतना सामर्थ्य है कि वह स्वलीला अद्वैत को किसी शब्द में व्यक्त कर सके।

आप अक्षरातीत धाम के धनी इस खिल्वत की वाणी में स्पष्टीकरण बता रहे हैं कि परमधाम का इश्क क्या है? खिल्वत से तो अभी परमधाम की एक सुगन्धि दी जा रही है। जैसे कोई इत्र बेचने वाला इत्र की खुशबू

की झलक देता है कि देखो! मेरे पास कितना सुगन्धित इत्र है। कीर्तन (किरन्तन) द्वारा हमें ज्ञान का प्रकाश दिया गया। खुलासा द्वारा स्पष्टीकरण दिया गया, वेद-कतेब का एकीकरण किया गया, वर्गवाद की परिधि से हमें निकाला गया, और खिल्वत से परमधाम की झलक दिखलाई जा रही है।

उसके बाद परिक्रमा द्वारा परमधाम के पच्चीस पक्षों में हमें घुमाया जायेगा। कल्पना कीजिये, यदि हम स्विज़रलैण्ड के सुन्दर दृश्यों को देखें, हिमालय के सुन्दर दृश्यों को देखें। कश्मीर का दृश्य हो, बद्रीनाथ, फूलों की घाटी, जहाँ बर्फीली चोटियों पर सूर्य की रोशनी पड़ती है, तो लगता है कि सूर्य का पहाड़ उग आया है। जब इन चीजों में हमारा मन रम जाता है, तो राज जी हमें हौज कौसर दिखाना चाह रहे हैं। पूरे हीरे का बना

हुआ हौज कौसर। पुखराज का बना हुआ पुखराज पहाड़ दिखाना चाहते हैं। यमुना जी के सातों घाट दिखाना चाहते हैं, जिसके एक-एक कण में करोड़ों सूर्यों की आभा विद्यमान है। तात्पर्य क्या? किसी भी तरह से हम इस झूठी दुनिया की सुन्दरता को, कोठी-बँगलों को, अपने शरीर को भुलाकर परमधाम में रमाना शुरू कर दें।

और जब यह स्थिति बन जाये, तो सागर ग्रन्थ में युगल स्वरूप के श्रृंगार द्वारा हमें डुबो दिया जायेगा, और बाद में बताया जायेगा कि अपने इस मिट्टी के पुतले को भुला दो और देखो तुम्हारा स्वरूप भी श्यामा जी जैसा ही है। इसलिये सुन्दरसाथ का भी श्रृंगार लिख दिया गया है। अब यह हकीकत की अवस्था आ गई।

इसके पश्चात् मारिफत की अवस्था में डुबोने के लिये राज जी का श्रृंगार नख से शिख तक चार बार

श्रृंगार ग्रन्थ में वर्णित किया गया है, ताकि आत्मा यहीं बैठे-बैठे मारिफत की अवस्था में पहुँच जाये। यह है वाणी का क्रमबद्ध तरीके से अवतरित होना, जिससे आत्मा की अलग-अलग स्थितियाँ आयें।

रास ग्रन्थ का जो अवतरण हुआ, अलग परिस्थितियों में हुआ। प्रकाश ग्रन्थ का अलग उद्देश्य है, षट्क्रतु का अलग उद्देश्य है। इसी प्रकार कलश, सनन्ध, किरन्तन का अलग-अलग उद्देश्य है। सिन्धी का भी अलग भाव है। मारफत सागर और कयामतनामा के अवतरित होने का अलग लक्ष्य है।

धाम धनी इस खिल्वत की वाणी द्वारा हमें अपने दिल के स्वरूप की पहचान करा रहे हैं कि रूहों! मैं आशिक हूँ। मेरी पहचान ही आशिक है। मेरा नाम आशिक है। मेरा रोम-रोम नख से शिख तक इश्क का

है। मैं तुमसे इश्क करता हूँ, तुमको इश्क देता हूँ, तुमसे इश्क लेता हूँ। तुम्हारे स्वरूप में मैं ही हूँ और तुमको आनन्द देने में ही मेरा आनन्द है। इस खुदाई इल्म द्वारा तुम सारे रहस्यों को जान सकते हो, जो परमधाम में भी कभी तुमने नहीं जाना था।

भूल गईयां आप अर्स को।

धाम धनी कहते हैं कि रुहों! तुमने इस संसार में आने के बाद स्वयं को भुला दिया और अपने परमधाम को भुला दिया। क्या आप जानते हैं कि आप कौन हैं? हम वाणी पढ़ते हैं। पढ़ते समय कह देंगे, हम परमधाम से आये हैं, खेल देखकर जायेंगे। लेकिन जहाँ विद्वत मण्डल भी बैठा होगा, समाज की बड़ी-बड़ी महान विभूतियाँ भी बैठी होंगी, वे भी वर्ग के नाम पर, समाज के नाम पर, क्षेत्रीयता के नाम पर कहीं न कहीं मतभेदों में खोई रहेगी।

सबने किसको पहचाना है?

क्या किसी ने अपनी आत्मा के स्वरूप की पहचान की? सबने तो अपने शरीर को पहचाना। यह शरीर किस कफल-खानदान से जुड़ा हुआ है? किन सामाजिक परिस्थितियों में पल रहा है? गरीब है, धनी है, ऊँचे खानदान का है, नीचे खानदान का है, किस प्रान्त का रहने वाला है? हमने पहचान तो इतनी ही सीमित कर दी है।

धाम धनी कह रहे हैं— "रूहों! माया की फरामोशी में तुम अपने को भूल गई हो और परमधाम को भी भूल गई हो।" वाणी पढ़ने से तो मालूम हो जाता है कि परमधाम ऐसा है, लेकिन परमधाम को देखने की ललक कितनों को रहती है?

इस दुनिया में यदि आप कोठी खरीदते हैं, तो आपका मन कितना व्याकुल हो जाता है। यदि आपके मित्र ने आपसे पैसे लेकर कोई कोठी खरीदी, तो आप सारा काम छोड़कर अपनी कोठी को देखने के लिये बेचैन हो जायेंगे। वह कोठी भी कुछ सालों के बाद खण्डहर में तब्दील हो जायेगी, लेकिन आपका परमधाम, जिसका एक-एक कण करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान है, करोड़ों सूर्यों की आभा को भी लज्जित करने वाला है, कितने सुन्दरसाथ हैं, जिनके अन्दर यह तड़प पैदा होती है कि हम अपने परमधाम को देखें, अपने प्राणवल्लभ को देखें। हाँ, यदि बच्चे का जन्म हो, पोते का जन्म हो, तो उसे हर कोई देखना चाहेगा। युगल स्वरूप की छवि को देखने के लिये किसके अन्दर व्याकुलता होती है? धाम धनी ने यही बात दोहराई है।

स्याबास तुम्हारी अरवाहों को, स्याबास हैड़े सखत।

स्याबास तुमारी बेसकी, स्याबास तुमारी निसबत॥

तुम्हारे कठोर हृदय को स्याबासी है कि तुम्हारे हृदय में मेरी छवि बसती नहीं। वाणी के ज्ञान को पाकर तुम बेशकी का दावा करते हो, लेकिन न तुमने निसबत को पहचाना और न अपने दिल को इतना कोमल बनाया कि मेरी छवि तुम्हारे हृदय में बस सके। तीर जब पत्थर से टकराता है तो गिर जाता है, लेकिन वही तीर जब केले के पेड़ पर लगता है तो उसमें चुभ जाता है। यदि हमें केल के पुल से होते हुए यमुना जी को पार करके पाट घाट में स्नान करना है, तो पहला घाट केल का पुल होता है।

यह मर्यादाओं का संसार है। कोई आशिर्वाद देता

है, तो कोई चरण छूता है। कोई ज्ञान लेता है, तो कोई ज्ञान देता है। ये चीजें इस दुनिया में चलती रहती हैं, लेकिन आत्मिक दृष्टि से सभी एक स्वरूप हैं। यदि हमने निसबत की पूरी पहचान कर ली, तो याद रखिये, यहीं बैठे-बैठे हमें लगेगा कि मेरी आत्मा का प्रियतम तो मेरे धाम-हृदय में विराजमान है। इसी को कहा है—

सेहेरग से हक नजीक, आड़ो पट न द्वार।

खोली आंखें समझ की, देखती न देखे भरतार।।

मैंने ज्ञान दृष्टि से समझ की आँखें तो खोल ली हैं, लेकिन देखती हुई भी मैं नहीं देख पा रही हूँ कि मेरा परमधाम कैसा है, मेरी निसबत का अखण्ड स्वरूप कैसा है, मेरे प्रियतम की छवि कैसी है? और अभी तो खिल्वत में केवल उन बातों की याद दिलाई जा रही है

कि हम किसी तरह संसार को छोड़कर परमधाम की तरफ बढ़ें। आगे जब चलेंगे, सागर और श्रृंगार में, तो यह रस और गहराता जायेगा। श्रृंगार में तो अन्तिम अवस्था आ जायेगी, केवल तू रह जायेगा।

"तू" में सब कुछ समाया हुआ है। आप पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द कहिये, सर्वशक्तिमान कहिये, सकल गुण निधान कहिये, सारे ब्रह्माण्डों को मुक्ति देने वाला कहिये, अक्षर का भी प्रियतम कहिये, धाम धनी कहिये, लेकिन सारे शब्द एक "तू" में समाहित हो जाते हैं। जब तू की भावना आ जायेगी, उस समय मैं का प्रश्न ही नहीं रहेगा। मैं और मेरा नहीं रहेगा, केवल तू और तेरा रहेगा। इसलिये खिल्वत के प्रारम्भिक प्रकरणों में मैं खुदी के त्याग का वर्णन है कि हमारे शरीर की मैं, जीव की मैं, संसार की मैं, सब कुछ समाप्त हो जाये और हमारे

हृदय-मन्दिर में केवल तू रह जाये। जब "तू" रह जायेगा, तब समझ लीजिये कि परमहंस अवस्था प्राप्त हो गई, मारिफत की अवस्था प्राप्त हो गई। उसके बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रहता।



परिक्रमा

तुमको इस्क उपजावने, करुं सो अब उपाए।
पूर चलाऊं प्रेम को, ज्यों याही में छाक छकाए।।

परिक्रमा ४/१

आप अक्षरातीत धाम के धनी, श्री महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान होकर परिक्रमा ग्रन्थ में प्रेम का वर्णन कर रहे हैं। परिक्रमा का तात्पर्य यह होता है, जैसे आप किसी मन्दिर में परिक्रमा कर रहे होते हैं तो लक्ष्य आपका इष्ट होता है। वह पल-पल आपकी नजरों के सामने आता है। आप मन्दिर के चारों तरफ घूमते रहते हैं, आपकी नजर अपने इष्ट पर होती है। उसी तरह, परिक्रमा ग्रन्थ का तात्पर्य है कि युगल स्वरूप को केन्द्र बनाकर परमधाम के पच्चीस पक्षों में घूमना।

जाहेरी परिक्रमा हम इन पैरों से करते हैं, बातिनी परिक्रमा में हमारी आत्मा की नजर परमधाम के पच्चीस पक्षों में घूमती है। कभी रंग महल को देखती है, कभी हौज कौसर को देखती है, कभी पुखराज को देखी है, कभी पश्चिम की चौगान को देखती है, कभी सातों घाट को देखती है। यह सारा वर्णन परिक्रमा ग्रन्थ में किया गया है, किन्तु वह कैसे दर्शन में आये? इसके लिये प्रेम जरूरी है। महामति जी कहते हैं—

तासों महामति प्रेम ले तौलती, तिनसों धाम दरवाजा खोलती।

यदि आपके अन्दर प्रेम नहीं है, तो आपके लिये परमधाम का दरवाजा बन्द है। धनी ने पहले ही कह दिया—

ल्याओ प्यार करो दीदार।

प्रेम का तात्पर्य लौकिक आकर्षण नहीं है। किसी के पास धन होता है, तो हमारा आकर्षण बढ़ जाता है। किसी के पास सौन्दर्य होता है, तो भी आकर्षण बढ़ जाता है। किसी के पास सामाजिक प्रतिष्ठा होती है, तो उससे हमारा लगाव बढ़ जाता है। इसको प्रेम नहीं कहते हैं। तमोगुण में मोह होता है, रजोगुण में राग होता है, सतोगुण में स्नेह होता है, लेकिन प्रेम शब्दातीत है—

प्रेम तो शब्दातीत कहा, जो हुआ ब्रह्म के घर।

सो तो निराकार के पार के पार, इत दुनी पावे क्यों कर॥

रजोगुण, तमोगुण के बन्धन में फँसा हुआ जीव भला कहाँ से प्रेम पा सकता है, जब—

चौदे भुवन में न पाइये, सो बसत गोपियन मांहे।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव के पास प्रेम नहीं है,

आदिनारायण के पास प्रेम नहीं है, तो उनकी सृष्टि में प्रेम कहाँ से आ जायेगा? जो लोग सवेरे से लेकर शाम तक धन कमाने में, नम्बर दो के काम में, दूसरों का धन छीनने में खुशी महसूस करते हैं, उनके पास तो प्रेम के सागर की एक बूँद भी नहीं आ सकती। प्रेम किसी पर मुग्ध होना नहीं है। प्रेम की मन्जिल वहाँ से शुरू होती है, जहाँ से शरीर और संसार समाप्त हो जाये।

पुराण संहिता में वर्णन आता है कि राधा श्री कृष्ण को देखते-देखते श्री कृष्ण के रूप में बदल गई और श्री कृष्ण राधा को देखते-देखते राधा के रूप में परिवर्तित हो गये। भेद समाप्त। कौन स्त्री है और कौन पुरुष? जब यह मन्जिल आ जाये, तो समझना चाहिये कि आपके अन्दर अब प्रेम आ रहा है। कबीर जी ने कहा है—

नैनों की कलि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।

नैनों की चिक डार के, पिउ को लिया रिझाय।।

कबीर जी अक्षर की पञ्चवासनाओं में हैं। जो प्रेम की मन्जिल में पहुँचते हैं, उनके लिये शरीर के बन्धन समाप्त हो जाते हैं। वे अपने को कबीर जी नहीं मानते। "नैनों" का तात्पर्य हृदय। वे कहते हैं कि मैं अपनी आत्मा के नेत्रों के पलकों को बन्द करके अपने प्रियतम को बसा लूँ।

जब शुकदेव जी महारास का वर्णन करते हैं, तो उस अवस्था में वर्णन करते हैं जहाँ स्त्री और पुरुष का भेद समाप्त हो जाता है, संसार दिखाई नहीं देता है। जब तक हमारी भौतिक दृष्टि है, तब तक शब्दातीत प्रेम के बारे में कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

किसी को अपनी पत्नी से लगाव हो सकता है, किसी को पति से लगाव हो सकता है, किसी को मित्र से, किसी को बच्चे से, ये आकर्षण हो सकते हैं, लेकिन इनको "प्रेम" की संज्ञा नहीं दी जा सकती। प्रेम तो आत्मा का उस प्रियतम से हो सकता है। श्रृंगार में एक चौपाई आती है—

हक जात वाहेदत जो, सो छोड़े न एक दम।

प्यार करे माहों माहें, वास्ते प्यार खसम॥

इसका शाब्दिक अर्थ हम जरूर लेंगे कि सुन्दरसाथ में आत्मिक प्रेम हो, यह बात बिल्कुल ठीक है।

जो जो प्रीत होत है साथ में, त्यों त्यों मोहे को होत है सुख।

ज्यों ज्यों ब्रोध करत है साथ में, अन्त वाही को है जो दुख॥

यहाँ प्रेम और प्रीति का अर्थ क्या करेंगे? प्रेम के

अन्दर बीज रूप से प्रीति छिपी है। प्रीति का परिपक्व रूप ही प्रेम है। प्रेम चन्द्रमा है और प्रीति उसकी चाँदनी। सुन्दरसाथ में प्रीति होनी चाहिये। सुन्दरसाथ में प्यार होना चाहिये। लेकिन प्यार आत्मिक प्यार है, जो धन के आकर्षण पर न हो, शरीर के आकर्षण पर न हो, सामाजिक प्रतिष्ठा के आकर्षण पर न हो। परमधाम के सम्बन्ध से हम एक-दूसरे से प्रेम करें, तब तो ठीक है, लेकिन किसी लौकिक आकर्षण से यदि हम प्रेम करते हैं, तो उसको प्रेम की संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि प्रेम परम पवित्र है, प्रेम अक्षरातीत का स्वरूप है।

प्रेम और वासना में छत्तीस का आँकड़ा है। जहाँ वासना है वहाँ प्रेम नाम की कल्पना भी नहीं की जा सकती, और जिस हृदय में प्रियतम का प्रेम है, वहाँ से वासना करोड़ों कोस दूर रहती है। वाणी में क्या कहा—

वचने कामस धोए काढ़िये, राखिए नहीं रज मात्र।

जोगबाई सर्वे जीतिये, त्यारे थैये प्रेम ना पात्र॥

प्रेम की पात्रता कब होगी? जब हम वाणी के ज्ञान से अपने अन्दर के काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार को समाप्त कर लेंगे। तब हमारे अन्दर प्रेम की पात्रता आयेगी कि हम प्रेम की पहली सीढ़ी अब चल सकते हैं। जहाँ मनोविकार है, वहाँ सपने में भी प्रेम आ नहीं सकता। अब अक्षरातीत धाम के धनी सुन्दरसाथ को कह रहे हैं कि प्रेम द्वारा ही हम परमधाम का दरवाजा खोल सकते हैं और स्थिति ऐसी आयेगी कि—

सैयां जाने धाम में बैठियां, ए तो घर ही में जाग बैठियां।

इस संसार में रहते हुए लगेगा कि हम तो परमधाम के पच्चीस पक्षों में घूम रहे हैं। हर कोई चाहता है कि

हमारे अन्दर प्रेम आ जाये। इस प्रकरण का विषय ही है—

सूरत इस्क पैदा करने की।

हमारे अन्दर प्रेम कहाँ से पैदा होगा? प्रेम माला के जप से नहीं पैदा होगा, प्रेम परिक्रमा करने से नहीं होगा, प्रेम ढोलक पीटने से नहीं होगा। आखिर प्रेम आयेगा कहाँ से? इस प्रकरण का मूल लक्ष्य है— यदि अक्षरातीत प्रेम का सागर हैं, हमारे मूल तन प्रेम के सागर हैं, वहदत के सम्बन्ध से हमारे तनों में लबालब इश्क भरा है, तो इस माया के संसार में जब हमारी आत्मा इस खेल को देख रही है तो हमारे अन्दर प्रेम क्यों नहीं है? धनी ने कहा है—

हक सुपने में भी संग कहे, रूहें इन विध अरस परस।

परमधाम में तो धाम धनी पल-पल हमारी नजरों के

सामने हैं। यहाँ भी जब हमारे साथ हैं, तो हमारे अन्दर इश्क (प्रेम) क्यों नहीं आता? हम प्रेम की सुगन्धि से कोसों दूर क्यों हैं?

इसका एक कारण है, हम सबकी आत्मा तो एक जैसी है, चाहे बिहारी जी की आत्मा हो, चाहे लालदास जी की आत्मा हो, चाहे इन्द्रावती जी की आत्मा हो, चाहे शाकुमार की आत्मा हो, आत्मा में कहीं भेदभाव नहीं। विचार कीजिये, एक नाटक की मण्डली है सब आपस में एकसाथ रहते हैं। उस नाटक की मण्डली में एक राम बनता है, एक रावण बनता है, तो जब तक मंच पर अभिनय चल रहा है तब तक राम और रावण का युद्ध होगा, और जब अभिनय समाप्त हो जायेगा तो जो राम और रावण एक-दूसरे को मार रहे थे, आपस में गले लगाकर बैठ जाते हैं। उसी तरह से यह मंच चल रहा है।

एक तमाशा हो रहा है।

हमारी आत्मा भिन्न शोभा वाले जीवों पर बैठकर खेल को देख रही है। रावण का स्वभाव अलग है, राम का स्वभाव अलग है। आत्मा में कोई दोष नहीं, दोष है जीवों पर। बिहारी जी के जीव का स्वभाव अलग है, मिहिरराज जी का स्वभाव अलग है, औरंगज़ेब के जीव का स्वभाव अलग है, छत्रसाल जी के जीव का स्वभाव अलग है, लालदास जी के जीव का स्वभाव अलग है।

हर ब्रह्ममुनि के जीव का स्वभाव अलग होता है, उसी के अनुसार वह व्यवहार करता है, लेकिन एक चीज मूल में रह गई इश्क और ईमान। जो जीव जितना ही इश्क और ईमान की दौड़ लगायेगा, उतनी ही तेजी से अपनी मन्जिल को प्राप्त करेगा। जिसने रजोगुण और तमोगुण को दूर करके अपने प्रियतम के प्रेम में अपने को

डुबो लिया, निश्चित है कि उसकी मन्जिल जल्दी से प्राप्त होने वाली है।

मैंने कई बार दृष्टान्त दिया है कि आत्मा और जीव में इस खेल में अन्धे और लंगड़े का सम्बन्ध है। आत्मा देखती है, परन्तु चल नहीं सकती। जैसे एक अन्धे और एक लंगड़े को कहीं जाना है। अन्धे को दिखाई नहीं देता, तो वह बढ़िया से चल नहीं पा रहा। लंगड़े को दिखाई तो देता है, लेकिन उसमें चलने की शक्ति नहीं है।

उसी तरह, आत्मा को निसबत के सम्बन्ध से परमधाम का ज्ञान है। वह जानती है कि संसार झूठा है और प्रियतम का प्रेम ही सब कुछ है, लेकिन वह स्वयं लंगड़ी है, चल नहीं सकती, रास्ता दिखा सकती है। जीव माया से पैदा हुआ है। उसको परमधाम की कुछ भी

सुध नहीं। उसको माया में ही रहना अच्छा लगता है। सागर की मछली को निकालकर मीठे पानी में डालिये, दूध में डालिये, तो वह चाहती है कि जल्दी से जल्दी मैं अपने खारे जल में चली जाऊँ। उसी तरह से जीव अन्धा है, उसे दिखाई नहीं देता है।

यदि दोनों का मेल हो जाये, लंगड़ा अन्धे के कन्धे पर सवार हो जाये और रास्ता बताता चले कि देख भाई, तू इधर से चलता चल, और अन्धा, जिसको दिखाई नहीं दे रहा है, उसके पाँव मजबूत हैं, वह तेजी से चलता जाये, तो लंगड़ा और अन्धा दोनों अपनी मन्जिल पर पहुँच जायेंगे। यानि जीव को भी प्रियतम मिल जायेंगे, और आत्मा को भी प्रियतम मिल जायेंगे।

आत्मा निसबत के सम्बन्ध से परमधाम का ज्ञान रखती है। कुर्बानी तो जीव को करनी ही पड़ेगी। जीव को

ही अपने गुण, अंग, इन्द्रियों के विकारों को दूर करना पड़ेगा। जीव को ही अपने हृदय को निर्मल करना पड़ेगा। तभी कहा है—

एही रस तारतम का, चढ़या जेहेर उतारे।

निरविख काया करे, जीव जागे करारे॥

जीव की जाग्रति का तात्पर्य क्या है? अपने को माया के विष से रहित कर ले। प्रकाश हिन्दुस्तानी के अन्दर एक प्रकरण ही आया है कि माया का विष क्या है? ये गुण, अंग, इन्द्रियाँ विष के हैं, शरीर विष का है, अन्तःकरण विष का है। जीव भी उसी के अन्दर फँसा हुआ है। जब तक जीव को विवेक पैदा नहीं होता कि मुझे ये सब कुछ छोड़कर प्रियतम के प्रेम में लगना है, तब तक जीव अध्यात्म की मन्जिल पर कहाँ जा पायेगा।

महामति जी कहते हैं—

मेरे जीव सोहागी रे, जिन छोड़े पिउ कदम।

तात्पर्य क्या है? इन्द्रावती जी की आत्मा कहती हैं—

जानो तो राजी रखो, जानो तो दलगीर।

या पाक करो हादीपना, या बैठाओ माहें तकसीर।।

या तो मुझे अपने आनन्द में डुबोकर आनन्दित कर दो, या मुझे गुन्हेगारों की पंक्ति में खड़ा करके शर्मिंदगी झिला दो, या मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर मुझे हादी की शोभा दिला दो। यह सब कुछ आपके ऊपर है। कहने का भाव क्या है? जो जीव जितना ही इश्क-ईमान की राह में तेजी से दौड़ लगायेगा, उसको उतनी ही शोभा मिलने वाली है।

परमधाम की नजर से देखें, तो सब बराबर हैं। ऐसा नहीं है कि केवल नवरंगबाई ही नृत्य में प्रवीण हैं। हर आत्मा के अन्दर वही कला है, चाहे शाकुण्डल की आत्मा हो, चाहे शाकुमार की आत्मा हो। सबको समान अवसर है। इन्द्रावती जी ने कहा है कि मेरे पास वशीकरण मन्त्र है और मैं सबको सिखा भी देती हूँ, लेकिन दावा करती हूँ कि कोई मेरी बराबरी नहीं कर पायेगा, क्योंकि मेरे बराबर कुर्बानी कोई कर ही नहीं पायेगा।

छठे दिन की लीला में भी सबको समान अवसर है। हर सुन्दरसाथ इश्क, ईमान की दौड़ में तेजी से जाकर वही शोभा पा सकता है, जैसा कि पूर्व के ब्रह्ममुनियों ने पाया है। लेकिन हमारा जीव निष्ठुर है। हमारे जीव के अन्दर न तो इतनी निर्मलता है और न हमने पूर्वकाल के

ब्रह्ममुनियों की तरह ध्यान-साधना में अपने को डुबोया ही है। ब्रह्ममुनियों ने अपने जीव की जन्म-जन्मान्तरों की वासनाओं को हटाया, हृदय की कठोरता को दूर किया, तथा प्रियतम का प्रेम भरा। उनके दिल में धाम धनी बस गये, तो सारे सुन्दरसाथ ने उन्हें परमहंस कहा, सद्गुरु कहा, राज जी ने उन्हें तरह-तरह की शोभा प्रदान की। आत्मा तो सबकी एक जैसी है। अब वही कह रहे हैं—

तुमको इश्क उपजावने।

यदि हमें परमधाम का दरवाजा खोलकर आनन्द में अपने को डुबोना है, तो हमारे अन्दर इश्क चाहिये। जब तक प्रेम नहीं आता, तब तक हमारी आत्मा कभी भी परमधाम के आनन्द का रसपान नहीं कर सकती। वह प्रेम कैसे आयेगा? हर सुन्दरसाथ चाहता है कि मेरे अन्दर प्रेम आ जाये। यही तरीका बताया गया है—

करुं सो अब उपाय।

महामति जी कहते हैं कि अब मैं उपाय करता हूँ, क्योंकि किसी भी तरह से सुन्दरसाथ के अन्दर प्रेम पैदा हो। खिल्वत में तो एक सुगन्धि दी गई है, परमधाम के आनन्द की झलक दिखाई गई है। अब परिक्रमा द्वारा परमधाम के पच्चीस पक्षों में घुमाया जायेगा। सागर द्वारा हमें युगल स्वरूप के नख से शिख तक की शोभा में डुबो दिया जायेगा, और श्रृंगार में मारिफत की अवस्था में भी खड़ा कर दिया जायेगा, जिसमें केवल तू ही तू रह जाता है। धाम धनी कहते हैं कि अब मैं कुछ न कुछ उपाय करूँगा, जिसके द्वारा सबके अन्दर प्रेम आ जाये।

कोई भी अपना बुरा नहीं चाहता। दुर्योधन भी कहता है—

जानामि धर्म न च मे प्रवृत्तिः जानामि अधर्म न च मे निवृत्तिः।

मैं जानता हूँ कि धर्म किसको कहते हैं, लेकिन उसमें मेरा मन ही नहीं लगता, और मैं यह भी जानता हूँ कि अधर्म किसको कहते हैं, लेकिन अधर्म छोड़ने का मेरा मन नहीं करता। यही संसार की प्रवृत्ति है। उसी तरह से हर सुन्दरसाथ जानता है कि "माया तो दुख निधान जी" और प्रियतम "सुख को निधान" हैं, लेकिन इस दुःख के निधान को छोड़कर सुख के निधान में कोई डूबना ही नहीं चाहता। इसका कारण क्या है? हमारे जीव के संस्कार।

एक शराबी है। शराब पीता है, लेकिन जिस दिन वह शराब छोड़ देगा, उसको घृणा हो जायेगी, वह शराब की तरफ देखना भी नहीं चाहेगा। उसी तरह से ये माया की शराब है। इस माया की शराब में जीव न जाने कितने

जन्मों से नशे में धुत्त चला आ रहा है। जब ज्ञान का प्रकाश मिलता है, प्रियतम के प्रेम की सुगन्धि की एक झलक मिलती है, तो वह सब कुछ छोड़कर उसमें डूब जाना चाहता है। धाम धनी कहते हैं कि माया का विष एक तरफ, माया के सारे हथियार एक तरफ, और सारे हथियारों को नष्ट करने के लिये प्रियतम का प्रेम ही ब्रह्मास्त्र है।

एहेना आउध अम्रत रूप रस, छल बल वल अकल।

अग्नि कुटिल ने कोमल, चंचल चतुर चपल।।

माया के सारे हथियार आपके ऊपर हमला कर रहे हैं। यदि आपने धनी का प्रेम ले लिया, तो सब कुछ समाप्त हो गया। तभी तो कहा है—

अब कहूं रे इस्क की बात, इस्क शब्दातीत साक्षात्।

जो कदी आवे मिने सब्द, तो चौदे तबक करे रद।।

प्रेम शब्दातीत है। आज तक शब्दों में इसकी व्याख्या नहीं हो पाई। परमधाम में प्रेम है। परमधाम शब्दातीत है। बेहद शब्दातीत है।

बेहद को सब्द न पोहोंचहीं, तो क्यों पोहोंचे दरबार।

लुगा न पोहोंचा रास लो, तिन पार के भी पार।।

इस दुनिया का कोई भी शब्द बेहद में नहीं जा सकता, तो परमधाम में कैसे जायेगा? परमधाम के प्रेम को शब्दों में, व्याख्यान में नहीं लाया जा सकता। लेकिन कहते हैं—

जो कदी आवे मिने सब्द, तो चौदे तबक करे रद।

इसका तात्पर्य क्या है? प्रेम शब्दों में आ नहीं

सकता। कदाचित किसी ब्रह्ममुनि के धाम-हृदय में अक्षरातीत मेहर की वर्षा करके उसके अन्दर प्रेम का रस उड़ेल दें, तो उसके लिये चौदह तबक रद्द हो जाते हैं। चौदह लोकों का राज्य भी उसके लिये श्मशान के समान लगने लगता है।

सुन्दरसाथ में ऐसा कोई भी नहीं है, जिसको अकेले पृथ्वी का राज्य प्राप्त है। पृथ्वी तो दूर की बात है, एक प्रान्त का भी राज्य किसी सुन्दरसाथ के पास नहीं है। पृथ्वी के सुख से ज्यादा सुख स्वर्ग में है, स्वर्ग से भी ज्यादा सुख वैकुण्ठ में है, लेकिन जिसके हृदय में प्रेम की रसधारा बह जायेगी, उसके लिये चौदह लोक का राज्य भी कुछ महत्व नहीं रखता है।

एक चक्रवर्ती सम्राट है, जो सोने के महल में रह रहा है। वह छप्पन प्रकार के व्यञ्जन खाता है, फूलों की

शय्या पर सोता है, किन्तु चिन्ता से ग्रस्त है। एक ऐसा परमहंस है, जो वृक्ष के नीचे शयन कर रहा है, कमर में लंगोट है या नहीं, कोई गारण्टी नहीं, हाथ में कोई भिक्षा पात्र भी नहीं, मिल गया तो खा लिया, नहीं मिला तो भी मस्त है। नदियों का बहता हुआ जल पान कर लेगा। लेकिन उसके हृदय में आनन्द का सागर प्रियतम बैठा है। इस प्रकार, उसके पास जो आनन्द है, उस चक्रवर्ती सम्राट के पास नहीं है। कहा है—

चाह गई चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह।

जाको कछु नहिं चाहिये, सोई शहंशाह॥

संसार का प्राणी तो सांसारिक द्रव्यों के पीछे भाग रहा है, किन्तु जिसने अनन्त ब्रह्माण्डों को बनाया है, वह स्वयं उसके दिल में बसा है, तो उससे ज्यादा

आनन्दमय कौन होगा? धाम धनी यही कहते हैं कि इस माया के संसार में बैठाकर भी तुम्हारे अन्दर में प्रेम पैदा करना चाहता हूँ, ताकि यहीं बैठे-बैठे तुम परमधाम के पच्चीस पक्षों में विहार किया करो।

पूर चलाऊँ प्रेम के।

मैं तुम्हारे अन्दर प्रेम के पूर चलाना चाहता हूँ। एक तो होता है कि प्रेम की कुछ बूँदे चखा देना। धाम धनी कहते हैं कि तुम्हारे मूल परात्म के तनों में तो प्रेम ही प्रेम है, इश्क ही इश्क है।

इश्क और प्रेम के सम्बन्ध में सुन्दरसाथ में एक भ्रान्ति चल गई है। इश्क को माना जाता है कि वह परमधाम में है तथा प्रेम योगमाया में है। बात यह नहीं है। यह भाषा भेद है। परिक्रमा ग्रन्थ में यह वर्णन है—

याके प्रेम के वस्तर, याके प्रेम के भूखन।

प्रेम बसे पिया के चित।

यदि ब्रह्मसृष्टियों के वस्त्र-आभूषण प्रेम के हैं, गुण-अंग-इन्द्री प्रेम के हैं, उनका सारा स्वभाव प्रेम का है, तो परमधाम में प्रेम होगा या नहीं। प्रेम संस्कृत का शब्द है और इश्क अरबी का शब्द है, बस यही अन्तर है।

इश्क के भी चार भेद होते हैं। पहला भेद है इश्के मजाजी और इश्के हकीकत। इश्के मजाजी के दो भेद होते हैं- इश्के नफ्सी और इश्के हिरसी। आखिर इश्के नफ्सी और इश्के हिरसी तो कालमाया की दुनिया में मृत्युलोक में ही होता है। इश्के हकीकत के भी दो भेद होते हैं- इश्के हकीकत, वह जो बेहद से सम्बन्धित है, और इश्के मारिफत जो परमधाम से सम्बन्धित है।

आखिर इश्क शब्द तो यहाँ भी जुड़ता है। हाँ, संस्कृत में या हिन्दी में बेहद के प्रेम को प्रेम शब्द से सम्बोधित करते हैं, लेकिन काव्य की तुकबन्दी के लिये "अनन्य प्रेम" न कहकर "प्रेम" शब्द से सम्बोधित कर दिया जाता है। प्रेम की व्याख्या ही है कि जहाँ स्वयं का अस्तित्व मिट जाये।

मासूक तुम्हारी अंगना, तुम अंगना के मासूक।

जब तक आशिक और माशूक हैं, तब तक स्वयं का अस्तित्व है कि मैं उनकी आशिक हूँ या माशूक हूँ। प्रेम कहता है कि जहाँ तुम भी समाप्त हो जाये, मैं समाप्त हो जाये, केवल तू ही तू रह जाये, वही मारिफत का प्रेम है। इसको आप इश्क कहिये या प्रेम कहिये, कोई भी अन्तर नहीं पड़ता। लेकिन यह कहना कि परमधाम में प्रेम नहीं, केवल योगमाया में प्रेम है, वाणी और धर्मग्रन्थों का

उल्लंघन है। अब कह रहे हैं—

पूर चलाऊं प्रेम को, ज्यों याहीं में छाक छकाय।

मैं तुम्हारी आत्मा के हलक में केवल कुछ बूँदे ही नहीं डालना चाहता, पूर के पूर चलाना चाहता हूँ। पूर के पूर चलाने का तात्पर्य क्या है? जब हमारी आत्मा का सम्बन्ध युगल स्वरूप के प्रेम और आनन्द के सागर से हो जाता है, तो पूर के पूर चलने लगते हैं।

जैसे, आपके कमरे में एक छोटा-सा पतला तार पड़ा हुआ है। उस तार का सम्बन्ध ट्रांसफार्मर से कर दिया जाता है, तो क्या होता है? पावर हाउस से जो विद्युत ट्रांसफार्मर में आ रही होती है, ट्रांसफार्मर की वह विद्युत आपके घर में लगी हुई तार में भी आ जाती है, और उससे बल्ब जलने लगते हैं। जरा सोचिए, यदि उस

तार का सम्बन्ध पावर हाउस से न जोड़ा जाये, ट्रांसफार्मर से न जोड़ा जाये, तो विद्युत कहाँ से आ सकती है? वहाँ तो अन्धेरा ही बना रहेगा। बल्ब का बटन दबायेंगे, बल्ब जलेगा नहीं। उसी तरह से परमधाम में विराजमान अक्षरातीत प्रेम का सागर है, उसको आप दिल में बसा लीजिये, तो उसके दिल का प्रेम आपके हृदय में प्रवाहित होने लगेगा। इसको कहते हैं—

पूर चलाऊं प्रेम को, ज्यों याहीं में छाक छकाय।

श्री राज जी सुन्दरसाथ को प्रेरणा दे रहे हैं कि मैं तुमको परमधाम का आनन्द देने के लिये तुम्हारे अन्दर प्रेम भरूँगा। सुन्दरसाथ के मन में यह संशय होता है कि हमारा जीव तो काम, क्रोध, मद, मोह, अहंकार से ग्रसित है, इसके अन्दर प्रेम कहां से पैदा हो सकता है? आप देखे होंगे, कबाड़ी की दुकान पर जंग लगे लोहे होते

हैं, उन काले-कलूटे लोहे के टुकड़ों का रूप कितना भद्दा सा लगता है? वे जंग से चकनाचूर हो रहे होते हैं, मिट्टी की मैल से भरे होते हैं। जब उन्हें आग में डाल देते हैं, तो क्या होता है? पहले वे गर्म होता है, फिर दहकने लगता है, जंग निकल जाती है, मिट्टी की मैल भी हट जाती है, और थोड़ी देर में वे भी आग की तरह दहकने शुरू हो जाते हैं। उनमें और आग में कोई अन्तर नहीं रह जाता। अक्षरातीत का दिल प्रेम का अनन्त सागर समेटे हुए है, और यदि आप उस अक्षरातीत को अपने दिल में बसा लेंगे तो आपके अन्दर भी प्रेम के पूर के पूर बहने लगेंगे। ब्रह्ममुनियों ने यही किया कि अपने दिल में धाम धनी को बसाया।

धनी के दिल में क्या है? इल्म। धनी के दिल में क्या है? इश्क। धनी के दिल में क्या है? वहदत का

सुख, निसबत का सुख, आठों सागरों का सुख तो राज जी के दिल में बसा हुआ है। जब उसको ही बसा लेंगे, तो बाकी क्या रह गया?

तुम आये सब आइया, दुःख गया सब दूर।

और यदि आपने प्रियतम से पीठ मोड़ लिया, तो क्या होगा? कुछ मिलने वाला नहीं।

एक राजा था। उसने ढिंढोरा पिटवाया कि कल मैं अपने महल के बाहर बैठूँगा। मेरा खजाना खुला रहेगा, जिसकी जो इच्छा हो वह ले जाये। राजा सिंहासन लगा कर बैठ गया। उसने अपने खजाने के जितने हीरे, मोती, हार थे, सब निकलवाकर रखवा दिये। देख रहा है कि सारी प्रजा आ रही है और अपने मनपसन्द हीरे-मोती उठा-उठाकर ले जा रही है। राजा की तरफ कोई देख

भी नहीं रहा है। एक बुढ़िया आई और उस राजा का हाथ पकड़कर कहती है— "चल बेटे, मेरे साथ चल।" उस बुढ़िया ने राज्य के मालिक को ही पकड़ लिया। जब राजा ही बेटा हो गया, तो सारे धन पर अधिकार किसका होगा?

कोई सुन्दरसाथ राज जी से हुक्म माँगता है, कोई जोश माँगता है, कोई इल्म माँगता है, कोई कुछ माँगता है, कोई मेहर के रूप में कुछ और माँगता है। राज जी से राज जी को कोई-कोई माँगता है। इन्द्रावती जी ने कुछ नहीं माँगा राज जी से—

ना चाहूं मैं बुजरकी, ना चाहूं खिताब खुदाए।

इश्क दीजो मोहे आपनों, मेरा याही सो मुद्दाए॥

हम सुन्दरसाथ भी राज जी के सामने मत्था टेकते

हैं, तो क्या माँगते हैं? राज जी! हमारा काम बिगड़ गया है, जल्दी से जल्दी बना दीजिये। हमारी सर्विस में खतरा लग रहा है, हमारे बिजनेस में घाटा हो रहा है, हमारे बच्चों को ये तकलीफ हो रही है। राज जी से तो हम यही माँगते हैं। क्या हम राज जी से राज जी को माँगते हैं कि राज जी आप हमारे हृदय में बस जाओ, हमें माया का कुछ भी नहीं चाहिये, केवल आप चाहिये। जिस दिन यह भावना आ जायेगी, राज जी हृदय में बसने में देर नहीं करेंगे। लेकिन हम राज जी की सम्पदा से प्रेम न करें, राज जी से पहले प्रेम करें।

पतिव्रता को पति चाहिये या उसकी दौलत चाहिये? आप सांसारिक दृष्टान्त से भी समझिये। सीता ने राम से प्रेम किया, राम के राज्य से प्रेम नहीं किया। जब राम अपने राज्य को छोड़कर वन जाने लगे, तो सीता वन में

चल पड़ी। झोंपड़ी में चौदह वर्ष रहना मन्जूर किया, लेकिन अयोध्या के राजमहल में रहना मन्जूर नहीं किया। जब लक्ष्मण राम के साथ थे, तो लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला ने भी जमीन पर शयन किया, मिट्टी के बर्तनों में भोजन किया, सिर के बाल मुण्डवा डाले।

जब राजकुमार सिद्धार्थ जंगल में तप करने निकले, तो यशोधरा ने भी अपने सिर के बाल मुण्डवा डाले। कितने राजकुमार आये कि अब तो सिद्धार्थ सन्यासी हो गये हैं, मुझसे विवाह कर लो। यशोधरा ने कह दिया कि मेरा प्रियतम तो केवल एक ही होगा और यशोधरा को पता चल गया कि मेरा प्रियतम तो भिक्षा माँगकर भोजन करता है, तो मैं अब सोने-चाँदी के बर्तनों में भोजन क्यों करूँ। यशोधरा ने कभी श्रृंगार नहीं किया।

संसार की ये पत्नियाँ जो जीव सृष्टि से सम्बन्धित

हैं, परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को शर्मिन्दा कर रही हैं कि तुम तो माया में आकर अक्षरातीत से संसार की वे चीजें माँगती हो जिनको हमने पैरों से ठोकर मार दी थी। इसलिये पाठ रखिये आत्मिक कल्याण के लिये, राज जी से प्रार्थना कीजिये आत्म-जाग्रति के लिये। संसार की किसी भी चीज का कटोरा लेकर अक्षरातीत से भीख न माँगा कीजिये। यदि आप माँगोगे तो मिल जायेगा, लेकिन आप प्रियतम का प्रेम खो देंगे। प्रेम में केवल प्रेमास्पद को चाहा जाता है, संसार की कोई भी कामना नहीं की जाती।

महामति जी कह रहे हैं कि मैं तुम्हारे अन्दर इतना भर प्रेम देना चाहता हूँ कि तुम छक जाओ। किसी को स्वादिष्ट भोजन इतना खिला दिया जाये कि उठने में भी उसे परेशानी हो, तो आप पूछेंगे कि और लोगे? क्या

बोलेगा, "नहीं, हम तो छक गये।" परमधाम के प्रेम की सुगन्धि पाने के लिये हमारी आत्मा तड़प रही है। धाम धनी कहते हैं कि मैं तो तुम्हारे अन्दर प्रेम के पूर के पूर चलाकर तुम्हें तृप्त कर देना चाहता हूँ।

इश्क जिन विध उपजे।

महामति जी द्वारा धाम धनी कहलवा रहे हैं कि किस तरह से इश्क पैदा हो, मैं वही तरीका बताऊँगा। इश्क कहीं बिकता नहीं है।

प्रेम न बाणी उपजे, प्रेम न हाट बिकाए।

बिना प्रेम के मानवा, बांधे जमपुरी जाए॥

किरन्तन में कारी कामरी का प्रकरण है। धनी ने क्या कहा है—

कारी कामरी रे, मोको प्यारी लागी तूं।

सब सिनगार को सोभा देवे, मेरा दिल बांध्या तुझसों॥

और यह कामरी ऐसी नहीं है, जो बाजार में खरीदने से मिल जाए।

मोल नहीं इन कामरी को, याको ले न सके कोए।

अरबों-खरबों की दौलत से यदि आप प्रेम खरीदना चाहें, तो भी प्रेम नहीं खरीद सकते। संसार में किसी से आपको लगाव हो जायेगा, आप करोड़-दो करोड़ रुपये किसी पर लुटा देंगे, तो हो सकता है कि वह आपके ऊपर फना हो जाये। लेकिन जिसको अक्षरातीत का प्रेम कहते हैं, वह पैसे के बल पर नहीं खरीदा जा सकता। अक्षरातीत पैसे से बँधे हुए नहीं हैं, अक्षरातीत प्रेम से बँधे हुए हैं।

जब चढ़े प्रेम के रस, हुए धाम धनी बस।

प्रेमे गम अलख की करी, त्रैलोकी की खोली चख।।

जब आपके हृदय में प्रेम की रसधारा बह जायेगी, तो धाम धनी भी आपके वश में हो जायेंगे। तभी तो इन्द्रावती जी ने कहा, "धाम धनी! मैंने प्रेम के पिंजरे में आपको तोता बनाकर रखा है। जहाँ मैं चाहूँगी, वहाँ आपको आना पड़ेगा। वही करना पड़ेगा। जैसे मैं नचाऊँगी, वैसे आपको नाचना पड़ेगा।" यह दावा कौन ले सकता है? जो उस प्रेम रस में पूरी तरह से डूब गया हो। इन्द्रावती जी की आत्मा द्वारा धाम धनी कह रहे हैं कि अब तुम्हारे अन्दर प्रेम कैसे पैदा हो?

मैं सोई देऊँ जिनस।

मैं वही तरीका बता रहा हूँ। हर सुन्दरसाथ चाहता

है कि हमारे अन्दर प्रेम पैदा हो जाये, हमारे अन्दर परमधाम की छवि अंकित हो जाये, हमारे धाम-हृदय में युगल स्वरूप बस जायें, हमारी आत्मा जाग्रत हो जाये। सबकी तमन्ना होती है। लेकिन क्या कारण है कि हमारी तीस लाख की जनसंख्या में सब सुन्दरसाथ उस अवस्था में नहीं पहुँच पाते? कहीं न कहीं हमारी राह वाणी की राह से विपरीत है।

जिस क्षण हम वाणी के अनुसार चलना शुरू कर देंगे, जो धनी ने बताया है कि कैसे हमारे अन्दर प्रेम पैदा हो, कैसे हम युगल स्वरूप को दिल में बसायें, कैसे हमारी आत्मा जागनी की राह पर तेजी से कदम बढ़ाना शुरू कर दे, तो निश्चित है कि समाज की स्थिति कुछ न्यारी हो जायेगी। अब वे धाम धनी बता रहे हैं—

तब इस्क आया जानियो।

तब लक्षण समझना चाहिये कि हमारे अन्दर इश्क आ गया है। आजकल इश्क आने की व्याख्या कैसे होती है? इश्क की कुछ बातें जान जाना, जोर-जोर से नाचने-कूदने लगना, और कहना कि हमें इश्क हो गया है, हमें इश्क हो गया है। यह इश्क नहीं है। ये तो हाथ-पैरों का कूदना मात्र है। इश्क का लक्षण क्या है? यह धाम धनी बता रहे हैं—

जब इन रंग लाग्यो रस।

रंग का अर्थ होता है आनन्द। परमधाम के आनन्द में हमें रस आने लगे। संसार हमें फीका लगने लगे, और परमधाम की लीला, परमधाम की शोभा, युगल स्वरूप की शोभा और श्रृंगार को ही हमारी आत्मा पल-पल देखने लगे। तब हम कह सकते हैं कि हमारे अन्दर धनी का इश्क आ गया है। नाच-कूद से कभी इश्क नहीं

आया करता। यदि ऐसा सम्भव है, तो वृन्दावन में बहुत बड़ी-बड़ी रास की मण्डलियाँ हैं, क्या वे सारे परमहंस बन गये? लोग क्लबों में भी बहुत अधिक नाचते-कूदते हैं। इसका तात्पर्य क्या है? वाणी क्या कह रही है?

जब इन रंग लाग्यो रस।

परमधाम के आनन्द में हमारी आत्मा को रस आने लगे। अभी हमें कौन सा रस मिल रहा है? सबको मालूम है, माया का। इस संसार में सबसे मीठा रस क्या होता है? किसी को ज्ञान का रस है, किसी को भक्ति का रस है, किसी को सेवा का रस है, लेकिन ये सारे रस निन्दा रस के सामने निष्फल हो जाते हैं। यह भी ध्यान रखिये कि निन्दा करने वाले और निन्दा सुनने वाले, दोनों को कभी शान्ति नहीं मिलती है, क्योंकि यह तो तृष्णा है।

प्रेम का रस ऐसा है कि जिसके हृदय में यह आ जाता है, वह धन्य-धन्य हो जाता है। उस प्रेम की सुगन्धि से ही ज्ञान की सुगन्धि है। प्रेम की सुगन्धि से ही सेवा की सुगन्धि है। प्रेम की सुगन्धि से ही समर्पण की सुगन्धि है। यदि हृदय में प्रेम नहीं, तो सेवा, समर्पण, ज्ञान सब कुछ शुष्क हो जाते हैं, जैसे—

का वर्षा जब कृषि सुखानी।

खेत में फसल खड़ी हो, लेकिन वर्षा न हो, पानी न मिले, तो फसल सूखी रहती है। वैसे ही प्रेम के बिना सारा जीवन सूना है। महामति जी कहते हैं—

जब इन रंग लाग्यो रस।

जब हमारी आत्मा संसार से विमुख होकर केवल प्रियतम के ही प्रेम में डूब जाये, वहाँ ही सब कुछ अच्छा

लगने लगे, यह संसार श्मशान की तरह लगने लगे, तब समझ लेना चाहिये कि हमारे अन्दर अब इश्क पैदा हो गया है।

ए सुख बिसरे धनीय के।

धनी के अखण्ड सुखों को हमने माया में आकर भुला दिया है। अब विचार कीजिये, हमारी कोठी बहुत सुन्दर बन जाये, चालीस लाख की, पचास लाख की, एक करोड़ की। इसके लिये हम दिन-रात एक करके पैसा कमाते हैं, न नींद की परवाह, न भोजन की परवाह, न स्वास्थ्य की परवाह। आखिर हमारी कोठी किससे बनेगी? ईंटों से, बहुत हुआ तो संगमरमर जड़वा देंगे, और कीमती पत्थर जड़वा देंगे।

परमधाम की अनुपम शोभा है। पूरा रंगमहल,

सबको विदित है, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि दुनिया के सारे तेजोमयी रत्न वहाँ जड़े हुए हैं। यदि आपकी नजर हौज कौसर की तरफ जाती है, तो लगता है कि पूरा हौज कौसर ही हीरे के रूप में सुशोभित हो रहा है। जब नजर माणिक पहाड़ की तरफ जाती है, तो सारा माणिक पहाड़ हवेलियों के ही पहाड़ के रूप में दिखायी देता है, ऐसा लगता है कि एक माणिक के नग में है। आप अँगूठी में माणिक पहनते हैं, हीरा पहनते हैं, तो उसका कितना आदर करते हैं।

जब परमधाम की तरफ नजर जाती है, तो वहाँ कहीं कूड़े-कर्कट का ढेर नहीं दिखाई देता, कहीं शहर के गटर नहीं दिखाई देते, कहीं धूल नहीं दिखाई देती, हर वस्तु चेतन है। एक-एक कण में युगल स्वरूप की छवि अंकित नजर आयेगी। उस परमधाम की तरफ यदि

नजर चली जाये, तो इस संसार को कोई क्यों याद करेगा। आपको अपनी कोठी से, अपने मकान से, इतना लगाव होता है कि उसकी एक ईंट गिर जाती है, तो आप चिंतित हो जाते हैं, मरम्मत करवाते हैं, पहरेदार रखकर उसकी पहरेदारी करवाते हैं। जब यहाँ के मकान से इतना लगाव हो सकता है, तो जरा सोचिए, यदि आपकी नजर अपने अखण्ड घर को देखने लगे, तो इस संसार में भला कौन रहना चाहेगा? धाम धनी कहते हैं—

ए सुख विसरे धनी के।

इस संसार में आने के पश्चात् हमने परमधाम के अखण्ड सुखों को भुला दिया है।

इन सुपन भोम में आये।

यह सपने का संसार है। राजा जनक ने एक बार

सपना देखा था कि मेरे राज्य में अकाल पड़ गया है और खाने को कुछ नहीं मिला। राजा जनक ने अपना सारा धन लुटा दिया, तो स्वयं भिक्षा माँगने निकल पड़े। भिक्षा माँगकर मिट्टी के बर्तन में भोजन बना रहे थे। दो बैलों की लड़ाई हो रही थी। बैलों का जोड़ा लड़ते-लड़ते आया और मिट्टी का बर्तन, जिसमें वे खिचड़ी पका रहे थे, उलट दिया। इसी बीच उनकी नींद टूट गई। नींद टूटने के बाद सोचते हैं कि मैं तो अभी राजा बना हुआ हूँ। सपने में मैं भिखमँगा बन गया था। चाण्डाल के घर से मैंने भिक्षा भी माँगी और खिचड़ी पका रहा था। मिट्टी के बर्तन को बैलों ने उलट दिया। सच क्या है?

राजा जनक स्वप्न में चाण्डाल के घर से भिक्षा माँगते हैं, वह झूठा दृश्य है। लेकिन जब तक वह दृश्य चल रहा था, तब तक तो वे यही समझ रहे थे कि मैं

भिखमँगा बन गया हूँ। वैसे ही परमधाम की ब्रह्मसृष्टि परमधाम के आनन्द को इस सपने के संसार में आकर भुला बैठी है। अपने अनन्त आनन्द को छोड़कर वह मृगतृष्णा के अन्दर आनन्द खोज रही है।

कोई हिरण चाहे कि मुझे मृगतृष्णा के जल में स्नान करने के लिये मिल जाये, पानी पीने के लिए मिल जाये, तो कहाँ मिलेगा? कोई कोल्हू में रेत डाले और चाहे कि तेल निकल आये, तो कहाँ से निकलेगा? कीकर के पेड़ से भला कल्पवृक्ष के फूल की सुगन्धि कहाँ से मिल सकती है? जब इस संसार में शान्ति है ही नहीं, तो शान्ति कहाँ से मिलेगी? प्रेम है ही नहीं, तो प्रेम कहाँ से मिलेगा? आनन्द है ही नहीं, तो आनन्द कहाँ से मिलेगा? लेकिन अज्ञानता में भटकता हुआ मानव यहीं खोजना चाहता है। वह बालू को पेरकर तेल निकालना

चाहता है, कीकर के पेड़ से कल्पवृक्ष का फूल पाना चाहता है।

जैसे ये सम्भव नहीं, वैसे ही अपनी आकांक्षाओं का बोझ लिये हुए जीव एक योनि से दूसरी योनि में भटकता है। जिसको माँस खाने की तृष्णा है, मानव योनि में माँस की तृष्णा पूरी नहीं हो पाई, तो अगले जन्म में उसको क्या बनना पड़ेगा? या तो गीदड़ की योनि में जायेगा, या शेर की योनि में जायेगा कि जीवन भर कच्चा माँस खा-खाकर अपनी तृष्णा की पूर्ति करे। जब उससे भी तृप्ति नहीं होगी, तो किसी अन्य योनि में उसे भेज दिया जायेगा ताकि अपनी वासनाओं की पूर्ति इन योनियों में कर सके। यही समय है कि हम तृष्णा के बोझ को ज्ञान की अग्नि से, प्रेम की अग्नि से, जला दें और प्रियतम के प्रेम में डूब जायें।

धाम धनी कह रहे हैं कि इस सपने के संसार में आकर परमधाम का सुन्दरसाथ परमधाम के अनन्त आनन्द को भुलाये बैठा है।

सो फेर-फेर याद देत हों।

इसलिये मैं तुमको बार-बार याद दिला रहा हूँ कि तुम्हारे परमधाम के अनन्त सुख क्या हैं। परिक्रमा ग्रन्थ में यही बात बताई जायेगी। माणिक पहाड़ के हिण्डोलों पर झूलने का क्या आनन्द है, पुखराज की घाटी में लीला करने का क्या आनन्द है, हौज कौसर में स्नान करने का क्या सुख है, पश्चिम की चौगान में खेलने का क्या सुख है, बड़ी रांग की हवेलियों में जाने का क्या सुख है, आठों सागरों की सैर का सुख क्या है। जहाँ का हर पदार्थ चेतन है, नूरमयी है, प्रेममयी है, आनन्दमयी है, जहाँ के कण-कण में युगल स्वरूप की अनुभूति होती

है, कण-कण में ब्रह्मरूपता है, कण-कण में शान्ति है,
कण-कण में दिव्यता है, कण-कण में आनन्द है,
जिसके लिये वेदों ने कहा—

यत्र आनन्दाः च मोदाः मुदः प्रमुदास्ते।

तत्र माम् अमृतम् कृधि इन्द्राय इन्दो परिश्रव॥

हे परब्रह्म! जहाँ प्रेम ही प्रेम है, जहाँ आनन्द ही आनन्द है, मुझे वहाँ ले चल, और मेरी आत्मा का सम्बन्ध उससे जोड़। वेद की ऋचाओं में यह भावना की गई है कि हे परब्रह्म! मुझे आनन्द के सागर में ले चल, जहाँ प्रेम और आनन्द के सिवाय, प्रसन्नता के सिवाय, कुछ हो ही नहीं। और हमारे लिये तो सारा खजाना ही धाम धनी ने वाणी द्वारा दे दिया। इसलिये कह रहे हैं कि मैं बार-बार तुमको याद दिला रहा हूँ कि इधर से नाता

तोड़ो और उधर से नाता जोड़ो। जैसा कि बुल्लेशाह ने कहा था—

इदरुं पुट्टो, उत्थे लाओ।

साईं बुल्लेशाह प्याज की नर्सरी से प्याज के पौधे उखाड़कर बो रहे थे। एक व्यक्ति आया और पूछा— "रब दा की पाणा", अर्थात् परमात्मा को कैसे पाया जाता है? साईं बुल्लेशाह ने कह दिया कि जैसे मैं प्याज के पौधों को उस खेत से उखाड़कर इधर लगा रहा हूँ, वैसे ही अपने मन को संसार से हटाकर प्रियतम की तरफ कर देना है। सरल तरीका यही है।

धाम धनी यही बात बता रहे हैं कि मैं तुम्हारे दिल से संसार को निकालना चाह रहा हूँ और तुम्हारे दिल में परमधाम को बसाना चाहता हूँ। जैसे-जैसे आप

परमधाम को दिल में बसाते जायेंगे, वैसे-वैसे माया का जहर हटता जायेगा।

ज्यों ज्यों अर्स होवे नजीक, त्यों त्यों खेल होवे दूर।

जैसे-जैसे आप उस निर्विकार, प्रेम के सागर, आनन्द के सागर को दिल में बसाते जायेंगे, वैसे-वैसे माया का जहर हटता जायेगा। आग में जैसे-जैसे लोहे को गर्म करते जाते हैं, लोहे का जंग, लोहे का कालापन हटता जाता है। वैसे ही आप धैर्य बनाये रखिये।

सुन्दरसाथ १५-२० दिन चितवनि करेंगे, फिर बहीखाता लेकर बैठ जायेंगे कि राज जी! चितवनि करते-करते २० दिन हो गये, आपने दर्शन नहीं दिया। प्रेम में हिसाब-किताब क्यों रखना? आपको हिसाब-किताब रखने का अधिकार किसने दे दिया? या तो आप

व्यापारी हैं, या प्रेम के राही हैं। व्यापारी लाभ देखता है, प्रेमी तो अपना कुछ देखता ही नहीं।

जब आप महीने भर की चितवनि का हिसाब माँगने लगते हैं, इसका मतलब यह है कि आप राज जी से प्रेम करते ही नहीं हैं। महीने भर की चितवनि के बदले आप कुछ माया का माँगना चाहते हैं और फिर माया की दुनिया में रल जाना चाहते हैं। इसलिये राज जी कहते हैं तुम्हारा प्रेम कलंकित हो गया। हिसाब मत माँगिये।

जब तुम आप देखाओगे, तब देखूंगी नैन नजर जी।

उसको सब मालूम है। आप अक्षरातीत से कितना प्रेम करते हैं, उसको बताने की जरूरत नहीं है। उसकी अनन्त दृष्टि है। आप अपने बन्द कमरे में राज जी को याद कर रहे हैं या नहीं कर रहे हैं, या आपका मन संसार

में खोया है, राज जी से कुछ भी छिपा नहीं है। राज जी से गिले-शिकवे करने की आवश्यकता नहीं है कि एक महीना चितवनि करते हुए हो गया, आपने दीदार क्यों नहीं दिया?

इसलिये प्रेम वह पुनीत राह है, जिसमें सब कुछ लुटाया जाता है। जो अपना सब कुछ लुटा देता है, वह ही सब कुछ पाता है। एक गेहूँ का दाना जब अपना सब कुछ लुटा देता है, मिट्टी के अन्दर अपना अस्तित्व मिटा देता है, तो एक पौधा बन जाता है। उस एक दाने से पचास दाने पैदा हो जाते हैं। लेकिन यदि वह अकड़ू बनकर जमीन के ऊपर रहता है, तो सूख जाता है। उसी तरह, यदि धनी के प्रेम की राह पर चलना है, तो सारी कामनाओं को जला देना पड़ेगा, अपने अस्तित्व को मिटाना पड़ेगा, अपनी "मैं" (अहम्) के पर्दे से बाहर

निकलना पड़ेगा, तभी हृदय में प्रेम की रसधारा बहेगी
और धनी के चरण कमल दिल में वास करेंगे।

जो गयो तुम्हें भुलाये।

धाम धनी कह रहे हैं कि जिस परमधाम के आनन्द
को तुमने भुला दिया है, मैं बार-बार उसकी याद दिला
रहा हूँ। ताकि तुम्हारे अन्दर परमधाम बस जाये और
परमधाम के प्रेम की सुगन्धि में तुम्हारा जीवन धन्य-
धन्य हो जाये।

कीजे याद मिलाप धनीय को।

अब इश्क कैसे आयेगा? इस सम्बन्ध में थोड़ी-
थोड़ी बातें बताई जा रही हैं। परमधाम के मूल मिलावा में
हम धनी के सम्मुख बैठे हैं, इसको याद करना है। याद
करना कैसे- केवल मूल मिलावा का पाठ कर लेना याद

करना नहीं है, वह तो पाठ है। यहाँ याद का क्या तात्पर्य है? याद कैसे किया जाता है? मन से भी किया जाता है, बुद्धि से भी किया जाता है, चित्त में भी बसाया जाता है। यहाँ याद करने से तात्पर्य चितवनि से है। हम धनी के सम्मुख परमधाम के मूल मिलावा में बैठे हैं, गले बाथ लेके। जब आपको वहाँ की शोभा दिल में बसने लगेगी कि हमारे मूल तन तो वहाँ हैं, हम तो सपने के समान इस संसार को देख रहे हैं, तब आपके हृदय में प्रेम का रस आएगा।



श्रृंगार

रूह मेरी क्यों न आवे तोहे लज्जत, तोको हकें कही अर्स की।
अर्स किया तेरे दिल को, तोहे ऐसी बड़ाई हकें दर्ई॥

श्रृंगार ११/१

अब अक्षरातीत धाम के धनी महामति जी के धाम—
हृदय में विराजमान होकर अपने अंगों का खुला वर्णन का
रहे हैं। श्रृंगार का एक ही लक्ष्य है— सब तरफ से ध्यान
हटाकर केवल मूल स्वरूप में केन्द्रित कर देना। इसलिये
प्रारम्भ के प्रकरणों में ही कह दिया—

अब हुकमें द्वारा खोलिया, लिया अपने हाथ हुकम।

दिल मोमिन के आये के, अर्स कर बैठे खसम॥

इसके पूर्व के प्रकरण की अन्तिम चौपाई है—

एते दिन हक जस गाईया, लदुन्नी का बेवरा कर।

हकें हुकम हाथ अपने लिया, जो दिया था महमंद के सिर पर॥

श्रृंगार किताब के अवतरित होने से पहले स्थिति यह थी कि सब सुन्दरसाथ की हकीकत की अवस्था चल रही थी। महामति जी कह रहे हैं कि मेरे धाम धनी! आज दिन तक आपके दिये हुए तारतम ज्ञान से मैंने आपकी महिमा का बखान किया, युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का वर्णन सुन्दरसाथ के दिल में उतारा।

अब हुक्म का तात्पर्य क्या है? महामति जी के दिल को जागनी लीला की सारी शोभा दी गई थी। शोभा तो आखिर तक उसी स्वरूप को है, लेकिन अब जब सुन्दरसाथ को मारिफत के द्वार पर खड़ा करना है, तो मारिफत की उस अवस्था में श्री राज जी के सिवाय कुछ

नहीं रहेगा, न पच्चीस पक्ष रहेंगे, न श्यामा जी रहेंगी।

जब ये चीजें नहीं रहेंगी, तो इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में लीला करने वाला कोई तन भी नहीं रहेगा। सुन्दरसाथ सब कुछ भुला दें, ब्रज में क्या हुआ, रास में क्या हुआ, अरब में क्या हुआ, देवचन्द्र जी के तन से क्या हुआ, और हकी सूरत के तन से भी क्या हो रहा है। उसी तन में बैठे हैं, लेकिन जब मारिफत की अवस्था की बात की जायेगी तो सब कुछ भुलाना पड़ेगा। हम जिस श्यामा जी के अंग हैं, उधर से भी नजर हटानी पड़ती है क्योंकि उसी एक मूल स्वरूप से सब कुछ है। लीला का जब बयान होगा तो श्यामा जी भी है, सखियाँ भी हैं, महालक्ष्मी भी हैं, पच्चीस पक्ष हैं। और जब यहाँ की लीला के बारे में वर्णन होगा तो—

इन तीनों में ब्रह्मलीला भई, ब्रज रास और जागनी कही।

लेकिन जब लीला से हटकर लीला करने वाले से एकरूपता आती है, तो सब कुछ भूल जायेगा। इसलिए कहा—

हकें हुकम हाथ अपने लिया, जो दिया था महमंद के सिर पर।

क्योंकि अब केवल श्री राज जी की ही शोभा बसानी है। जब तक वह शोभा बसती नहीं, तब तक मारिफत का दरवाजा खुल नहीं सकता। अब धाम धनी महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर कह रहे हैं—

मेरी रूह क्यों न आवे तोहे लज्जत।

यह श्री महामति जी की आवाज है। सिखापन सुन्दरसाथ के लिए है, और कह रहे हैं अपना नाम लेकर। पूरी वाणी में कहीं भी सुन्दरसाथ के लिए फटकार के शब्द नहीं है। जो कुछ फटकारा है, स्वयं को फटकारा

है, ताकि सुन्दरसाथ इससे सिखापन ले लें। मातायें यहाँ बैठी हैं, सब जानती हैं, घर में जब नयी बहू आती है, बहू जब गलती करती है, तो उसको नहीं कहा जाता है, अपनी बेटी को कह दिया जाता है, ताकि बहू उससे सिखापन ले सके।

महामति जी के धाम-हृदय में परमधाम के सुन्दरसाथ के लिये इतना प्रेम है कि किसी को सीधे झिड़की न देकर हर बात अपने ऊपर लेकर कहेंगे कि मेरे अन्दर तो करोड़ों अवगुण हैं। अब यहाँ कह रहे हैं। मेरी आत्मा! इस संसार में बैठे-बैठे तुझे धाम धनी की लज्जत क्यों नहीं आ रही है। लज्जत का अर्थ है स्वाद। लज्जत और हुज्जत ये दो चीजें वाणी में आयी हैं। हुज्जत का अर्थ होता है दावा। दावा कौन करेगा? जो परमधाम से एकरूप हो सकेगा।

हक इलम ले देखिये, तो होइये अर्स माफक।

जब हम यहाँ के भावों से ऊपर उठ करके परमधाम के भावों में खो जायें। हम अधिकार के साथ कर्तव्य की भाषा भी जान जायें कि एक ब्रह्ममुनि की शोभा को धारण करने के बाद, परमहंस कहलाने के बाद, या परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाने के रूप में, हमें क्या-क्या कुर्बानियाँ करनी पड़ेंगी। हमारा जीवन अन्य संसारी जीवों जैसा नहीं होना चाहिए। मछली खारे जल में रहती है, किन्तु उसका परित्याग नहीं कर पाती, वैसे ही संसार के प्राणी भी उसका परित्याग नहीं कर पाते। उसी तरह से यदि हम भी करते हैं, तो हमारे और उनमें कोई अन्तर कहाँ रह गया।

तुम आईयां छल देखने, भिल गैयां माहें छल।

छल को छल न लागहीं, ओ लेहेरी ओ जल।।

माया के जीव तो माया से पैदा हुए ही हैं, वे इसको कैसे छोड़ सकते हैं। लेकिन परमधाम की ब्रह्मसृष्टि तो हौज कौसर के अन्दर रहने वाली है। वह इस मोह के सागर में भला कैसे रह सकती है।

इस प्रकरण की पहली चौपाई से यही बात आत्मा को उद्वेलित कर रही है कि मेरी आत्मा! इस संसार में आने के बाद, सागर की वाणी उतरने के बाद, और श्रृंगार में अब एक-एक अंग का पूरा वर्णन आया है। इससे पूर्व श्री राज जी की इजार का वर्णन है। यहाँ एक-एक अंगों का वर्णन दिया जायेगा। चरण कमल कैसे हैं, हक-मासूक के नेत्रों की शोभा कैसी आई है, माथा कैसा

है, बालों की शोभा कैसी है, कान की शोभा कैसी आई है, कानों की विशेषता क्या है, नासिका की विशेषता क्या है, दाँत आये हैं तो कैसे हैं।

जहाँ तक मैं समझता हूँ, श्रृंगार की वाणी को पत्थर जैसा दिल भी यदि चिन्तन के भाव से और भावुकता लेकर पढ़ेगा, तो मैं समझता हूँ कि वह मोम की तरह पिघल जायेगा। श्रृंगार की वाणी है ही ऐसी। यदि कमजोर हृदय वाला ज्यादा भावुक आदमी पहली बार पढ़े, तो यदि उसका दिल मजबूत नहीं है, तो हो सकता है उसको डॉक्टर के पास भी ले जाना पड़े, क्योंकि सागर-सिनगार की वाणी युगल स्वरूप को, राज जी को, बिल्कुल सामने प्रत्यक्ष खड़ा कर देती है। आवश्यकता यही होती है कि हम इस ब्रह्मवाणी को पूरी तन्मयता से अपने अन्दर आत्मसात् करें।

इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि मेरी आत्मा! तुझे इस संसार में रहने पर धनी के स्वरूप की लज्जत क्यों नहीं आ रही?

तोको हकें कही अर्स की।

तुझे धाम धनी ने तो परमधाम का सारा खजाना ही दे दिया। राज जी के दिल में क्या खजाना है? राज जी के दिल में माया के खजाने नहीं हैं। राज जी के दिल में वहदत का खजाना है, निसबत का खजाना है, इश्क का खजाना है, और इल्म का भी अनन्त खजाना है।

आप कह सकते हैं कि इश्क में इल्म नहीं होता, तो बात यह नहीं है। इल्म का प्राण इश्क है और इश्क का प्राण इल्म है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, दोनों में चोली-दामन का साथ है। यदि अक्षरातीत की बुद्धि

निजबुद्धि है, श्यामा जी की बुद्धि निजबुद्धि है, सखियों की बुद्धि निजबुद्धि है, तो क्या उनके पास ज्ञान होगा ही नहीं? हाँ, यह जरूर है कि जब इश्क की लीला होती है, तो स्वयं का अस्तित्व भुला दिया जाता है।

पुराण संहिता में वर्णन आता है कि राधा श्री कृष्ण को देखते-देखते श्री कृष्ण के प्रेम में इतनी खो गई कि राधा को पता ही नहीं रह गया कि मैं राधा हूँ और उनका स्वरूप श्री कृष्ण का बन गया। श्री कृष्ण राधा को देखते-देखते इतने भाव-विभोर हो गए कि श्री कृष्ण का तन भी परिवर्तित होकर राधा का तन बन गया। यह घटना क्या सन्देश देती है? इस घटना का तात्पर्य यही है कि जिसका चिन्तन किया जाता है, वह वैसा ही हो जाता है, और आशिक-माशूक के बीच में कोई पर्दा नहीं रह जाता। यदि योगमाया के ब्रह्माण्ड में राधा श्री कृष्ण

बन सकती है, श्री कृष्ण राधा बन सकते हैं, तो परमधाम की तो ऐसी स्वलीला अद्वैत वहदत की भूमिका है जिसमें सभी एक स्वरूप हैं।

चितवनि करते समय भाइयों को अँगना भाव धारण करने में कितनी झिझक होती है, लेकिन जहाँ प्रेम की भूमिका है वहाँ ये माया के तन समाप्त हो जाते हैं, न स्त्री न पुरुष। जैसा कि मैंने अभी पुराण संहिता की उस घटना से उदाहरण दिया कि राधा का शरीर श्री कृष्ण का पुरुष तन बन जाता है और श्री कृष्ण का पुरुष तन राधा का बन जाता है, इसका आशय क्या है? योगमाया में एक ही चेतन तत्त्व है। लीला रूप में वह अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार यह जो हमारी स्त्री-पुरुष की भावना है, यह माया की भावना है। उस प्रेम के निर्विकार धरातल पर, वहदत के धरातल पर, इस

संसार की सारी भावनायें नहीं रहेंगी, और जब हम उस राज जी की शोभा को दिल में बसाते हैं तो निश्चित है कि हमको उसका स्वाद आना चाहिए।

महामति जी यही बात कह रहे हैं कि मेरी आत्मा! राज जी ने तुझे अर्श का सारा खजाना दे दिया है, फिर भी तुम्हारे अन्दर वहाँ की लज्जत क्यों नहीं आ रही है?

अर्स किया तेरे दिल को।

तुम्हारे दिल को धाम धनी ने अर्श किया है।

अब प्रश्न यह होता है कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में किसका दिल अर्श है? क्या एक समय में एक ही दिल अर्श होता है, या कई दिल अर्श हो सकते हैं? यह ध्यान रखिये, बीतक साहब में एक प्रश्न जरूर आता है। जब श्री मिहिरराज कसनी करके चाहते हैं कि सद्गुरु महाराज की

तरह मैं भी परमधाम का वर्णन करूँ, तो सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी कहते हैं—

मोहे उठाये तुम बैठो।

उठाने का तात्पर्य है, संसार से उठाना।

यह वस्तु हुकम की, सो होवे एकै ठौर।

इसका तात्पर्य यह है कि जब तक चौथे दिन की लीला मेरे तन से हो रही है, तब तक पाँचवे दिन की लीला तुम्हारे तन से नहीं शुरू हो सकती। यह ठीक है कि चौथे, पाँचवे दिन में केवल दोनों तनों को शोभा दी, वह शोभा किसी अन्य को नहीं मिल सकती।

लेकिन महामति जी के साथ जो पाँच हजार की जमात पन्ना जी पहुँची, उसमें पाँच सौ ब्रह्मसृष्टि थी, और उन पाँच सौ ब्रह्मसृष्टियों में एक भी सुन्दरसाथ ऐसा नहीं

था जिसका दिल अर्श न हुआ हो। पन्ना जी में पहुँचने से पहले धाराभाई का प्रसंग आपने सुना होगा। किस तरह से जब धाराभाई चर्चा करते हैं, तो राज जी का आवेश उनके तन से भी दर्शन देने लगता है। इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि धाराभाई राज जी हो गये। वैसे ही, जिन सुन्दरसाथ ने अपने दिल में धनी को बसा लिया, उनका दिल अर्श हो गया।

हक इलम जित पोहोंचिया, तित अर्स हुआ दिल हक।

इसका भाव यह भी मत समझ लीजिये कि हमने केवल वाणी पढ़ ली, तो हमारा दिल अर्श हो गया। हाँ, अर्श होगा, पूर्ण रूप से नहीं। जैसे, कोई सुन्दरसाथ वाणी का गहरा जानकार है। सागर-श्रृंगार का मन्थन कर लिया, पता चल गया कि मूल मिलावा में युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार क्या है। यदि दस मिनट के लिए

भी अपने मन को एकाग्र करेगा, धनी से प्रेम करेगा, तो उसके दिल में धनी की शोभा बसने लगेगी। उसके दिल में किसी भी कीमत पर न तो हनुमान जी बसेंगे, न शंकर जी बसेंगे, और न देवी बसेंगी।

इस भावना से कहा जाता है कि सारे संसार के योगी-यति जिस पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द के धाम, स्वरूप, लीला को जानने का प्रयास करके थक गये, लेकिन जान नहीं पाये कि निराकार से परे क्या है, इस ब्रह्मवाणी द्वारा दिल अर्श हो जाता है अर्थात् उस दिल में युगल स्वरूप की शोभा झलकने लगती है।

लेकिन पूर्ण जागनी क्या है? पूर्ण जागनी का तात्पर्य यह है कि परात्म के अन्दर जैसे राज जी, श्यामा जी की शोभा नख से शिख तक बसी हुई है, वैसे ही आत्मा के दिल में भी बस जाये।

पूरन स्वरूप हक का, आये बैठा मांहेँ दिल।

तब सोई अंग आतम के, उठ खड़े सब मिल।।

यह है आत्मा की जागनी। यह है आत्मा के दिल का अर्श होना। अभी आपने किरन्तन सुना, जिसमें कहा गया है—

मेहेर करी मेहेबूब ने, लीजो रूह के अन्तस्करण।

आत्मा के अन्तःकरण में युगल स्वरूप की छवि को बसाना है।

तार्थे हृदय आतम के लीजिए, बीच साथ स्वरूप जुगल।

सुरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइये बल-बल।।

आत्मा के हृदय में धनी की शोभा को बसाना है और वह शोभा कैसे बसेगी? जब हम शरीर से परे हो जायेंगे, मन से परे हो जायेंगे, बुद्धि से परे हो जायेंगे,

संसार को बिल्कुल भुला देंगे कि हम कहाँ बैठे हैं। इसके लिए मन को एकाग्र करना पड़ेगा, मन को निर्मल करना पड़ेगा, मन के अन्दर कोमल भावनायें भरनी पड़ेंगी, अपने मन के अन्दर दूसरों को मन, वाणी, कर्म से कष्ट पहुँचाने की प्रवृत्ति समाप्त करनी होगी। तभी तो कहा है—

मोमिन दिल कोमल कहा, तो अर्स पाया खिताब।

मोमिनों के दिल को कोमल कहा है। कोमल दिल का तात्पर्य क्या है? जैसे, मैं यहाँ बैठा हूँ। यदि मैं नग्न तख्त पर बैठना चाहूँ, तो आप बैठने नहीं देंगे। मैं तो एक सीधा-सादा इन्सान हूँ। छोटा सा सुन्दरसाथ हूँ। अक्षरतीत को आप दिल में बसाना तो चाहते हैं, किन्तु यदि आपके हृदय में कठोरता है तो अक्षरतीत कैसे विराजमान होंगे? यदि आपका हृदय दूसरों के दुःख से द्रवित नहीं होता, दूसरे के प्रति प्रेम से भरता नहीं, तो

ऐसे दिल में धनी कहाँ से वास करेंगे? तभी तो श्री महामति जी ने बार-बार कहा है—

अर्स तुमारा मेरा दिल है, तुम आए करो आराम।

सेज बिछाई रूच रूच के, एही तुमारा विश्राम॥

रुचि-रुचि के सेज्या बिछाने का तात्पर्य क्या है? मेरे धाम धनी! आप मेरे धाम-हृदय में आकर विश्राम कीजिए। इसके लिए मैंने इल्म के पलंग पर विरह की सेज्या बिछाई है और विरह की उस सेज्या पर मैं बाट देख रही हूँ कि कब आपका स्वरूप आकर विराजमान होगा। इसको कहते हैं, "सेज बिछाई रूच-रूच के"। यदि हमारे हृदय में प्रेम की रसधारा नहीं, विरह से हमारा हृदय पूर्ण नहीं, तो धनी आकर वास करने वाले नहीं हैं। इसके लिए कहीं न कहीं हमें हकीकत और मारिफत की

तरफ कदम बढ़ाना पड़ेगा। वही कह रहे हैं—

अर्स किया तेरे दिल को।

मेरी आत्मा! तुम्हारे दिल में धाम धनी आकर बैठ गये हैं। अभी प्रसंग चल रहा था कि क्या पाँचवे दिन की लीला में केवल महामति जी का ही दिल अर्श था? एक घटनाक्रम है—

सुन्दरसाथ बंगला जी दरबार में बैठे थे। श्री जी ने पूछा— "लालदास! हौज कौसर की पाल ठोस है या पोली?" लालदास जी ने वहीं धरती पर मुक्का मारा, धम्म की आवाज हुई, और कहा— "धाम धनी! हौज कौसर की पाल पोली है।" कितना आत्मिक बल रहा होगा श्री लालदास जी के अन्दर कि मैं इस दुनिया में हाथ मारूँ, तो पता चल जाये कि हौज कौसर की पाल

ठोस है या पोली।

यदि लालदास जी का दिल अर्श नहीं हुआ होता, तो यह कैसे वर्णन कर सकते थे? यदि युगलदास जी का दिल अर्श नहीं हुआ होता, तो वे परमधाम का वर्णन कैसे कर सकते थे? पाँच सौ ब्रह्ममुनियों ने अपने दिल में युगल स्वरूप को साक्षात् बसा लिया, और तो और, जो ईश्वरी सृष्टि थी उसने भी अपने दिल में धनी को बसा लिया। किरन्तन में एक चौपाई आती है—

तीसैं सृष्टि विष्णु सौ बरसे, प्रेमें पीवेगा शब्दों का सार।

इसका तात्पर्य क्या है? जब हकी सूरत की अन्तर्धान लीला हो गई। अन्तर्धान लीला का तात्पर्य है कि उन्होंने अपनी लीला को छिपा लिया, क्योंकि छठे दिन की लीला में अब सुन्दरसाथ को शोभा देनी है। छठे

दिन की लीला प्रारम्भ होनी है। भिन्न-भिन्न ब्रह्ममुनियों के तन से जागनी कार्य की सेवा लेनी है, इसलिए हकी सूरत ने अपनी लीला छिपा ली। उनके विरह में अधिकतर ब्रह्ममुनियों ने शरीर छोड़ दिया।

वि.सं. १७५१ के पश्चात् जो भी ईश्वरी सृष्टि आई, उन्होंने विचार किया कि वे कैसे ब्रह्ममुनि थे जो श्री जी का अन्तर्धान एक पल के लिये भी सहन नहीं कर सके, विरह में तड़प-तड़प कर शरीर छोड़ दिए। तीस साल तक ईश्वरी सृष्टि ईमान और बन्दगी के सहारे हकी सूरत को याद करती रही, युगल स्वरूप को याद करती रही। उसके पश्चात् जीव सृष्टि आई। कहा है—

सत्तर बरस लों विरहा आग जलाये।

सत्तर बरस तक अजाजील को विरह की अग्नि में

जलाया गया। अजाजील को जलाने का तात्पर्य है, जीव सृष्टि को विरह की अग्नि में जलाया गया। जब जीव सृष्टि ने सुना कि कैसे श्री प्राणनाथ जी के रूप में पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द ने लीला की, जिनकी चर्चा के समय साक्षात् युगल स्वरूप के दर्शन हो जाया करते थे, जिनके अन्दर पाँचों शक्तियों के स्वरूप विराजमान था, हम उस पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द का इन बाह्य आँखों से प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सके। अब सत्तर साल तक जीव सृष्टि भी तड़पती रही, इसको कहते हैं—

तीसैं सृष्ट विष्णु सौ बरसे, प्रेमें पीवेगा शब्दों का सार।

जागनी लीला के १०० साल पूरे हो जाने के पश्चात्, जब १७४५ का समय था, उसके पश्चात् सौ साल तक यह घटना दर्शायी गई है। हकी सूरत के तन रहते-रहते, जिस ईश्वरी सृष्टि ने भी दिल में धनी को

बसाया होगा, तो उसका भी दिल अर्श हुआ होगा। जीव सृष्टि ने भी दिल में बसाया होगा, तो उसका दिल धनी का मन्दिर बन गया होगा। लेकिन एक बात है, जैसे पाँचों पाण्डव भाई थे, लेकिन राजमुकुट तो केवल युधिष्ठिर के ही सिर पर था। मुकुट सभी पहनते थे, राजमुकुट केवल युधिष्ठिर ही धारण कर सकते थे। उसी तरह, हकी सूरत के तन से जब लीला चल रही थी, उस समय वह शोभा केवल हकी सूरत की ही रही, लेकिन अर्श दिल होने का सौभाग्य सबको था।

वैसे ही, इस छठे दिन की लीला में हर सुन्दरसाथ को सौभाग्य है कि वह इल्म से और इश्क से अपने दिल को अर्श बनाये। इल्म द्वारा अटूट दृढ़ता हो जाये कि हमारे दिल में युगल स्वरूप को ही बसना है और इश्क द्वारा उस शोभा को अखण्ड रूप से हम बसा लें। यही

इल्म और इश्क की बन्दगी है। इसके द्वारा कोई भी सुन्दरसाथ यहाँ बैठे-बैठे परमधाम की अनुभूति कर सकता है, अपने दिल में धनी की शोभा को देख सकता है। जब आँखें खुली तो संसार दिखा, जब आँखें बन्द हुई तो अपनी आत्मा के हृदय में युगल स्वरूप दिखे, इसको कहते हैं अर्श दिल होना। जैसा कि धनी ने कह दिया—

जब पूरन स्वरूप हक का, आए बैठा माहें दिल।

आत्मा का फरामोशी से जागे का चौथा प्रकरण पूरा इसी विषय पर केन्द्रित है कि अपनी आत्मा को कैसे जाग्रत किया जाये।

जब हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए।

इसको कहते हैं जागनी और इसको कहते हैं दिल में अर्श का होना। सामान्य सा अर्थ है— आपके दिल में

संसार बसा हुआ है। संसार को हटाकर दिल में धनी को बसा लीजिए, तो आपका दिल क्या कहलायेगा? अर्श दिल। महामति जी वही बात कह रहे हैं कि मेरी आत्मा! धाम धनी ने तेरे दिल में बैठक की है।

इन गुन्हेगारों के दिल को, अर्स कर बैठे मेहेरबान।

माया का खेल माँगने के कारण परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को गुनाह जरूर लगा, लेकिन इस माया के तन के अन्दर भी धाम धनी सुन्दरसाथ के दिल में विराजमान हैं। हर सुन्दरसाथ से धनी का सम्बन्ध है, किन्तु अर्श दिल की शोभा तब मिलेगी, जब हम अपने दिल से संसार को हटा दें और दिल में युगल स्वरूप की शोभा को बसा लें। इसके लिए हमें अपने को कसौटियों से गुजारना पड़ेगा। महामति जी कहते हैं—

ए निध लई मैं कसनी कर।

कसनी का तात्पर्य हठयोग नहीं है। कसनी का तात्पर्य है— हमारी इन्द्रियाँ जो माया का सुख चाहती हैं, उससे अपने को अलग करें, और धनी के प्रेम में डुबोयें। कयामतनामा में स्पष्ट रूप से कहा है कि जब तक हिरस-हवा के बन्धन बने रहते हैं, तब तक दिल में धनी की शोभा नहीं बस पाती।

तसबी गोदड़ी करवा, छोड़ो जनेऊ हिरस हवा।

जो कुछ सांसारिक चाहनायें हैं, हमारे और धनी के बीच में बाधक हैं।

इन इंद्रियन की मैं क्या कहूं, ए तो अवगुन ही की काया।

इन से देखूं क्यों साहेब, एही भई आड़ी माया॥

हमारा मन सांसारिक सुखों में आसक्त है। जितनी

आसक्ति हमारी सांसारिक सुखों में है, उतनी आसक्ति यदि धनी के प्रेम में हो जाये, धनी की शोभा को बसाने के लिए हो जाये, तो हमारा जीवन ही धन्य-धन्य हो जायेगा। यही बात महामति जी कह रहे हैं।

तो भी ऐसी बड़ाई हकें दर्ई।

मेरी रूह! धाम धनी ने तुझे कितनी बड़ी शोभा दी है।

कल्पना कीजिए, कोई एक झोपड़ी में रहने वाला साधारण सा इन्सान है, घास-फूस की झोपड़ी में रहता है। कदाचित् उसके घर प्रधानमन्त्री आ जाये, झोंपड़े में, तो वह खुशी के मारे पागल हो जायेगा। वह सोचेगा कि सारे देश का प्रधानमन्त्री मेरे घर पर ठहरा हुआ है। वह ऐसे गर्व की अनुभूति करेगा कि मैं दिल्ली के प्रधानमन्त्री

निवास में रहने जैसा गौरव पा रहा हूँ। प्रधानमन्त्री की सान्निध्यता से ही उसको ऐसा आनन्द मिलेगा।

देश के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू का बचपन में उनकी बुआ ने ही पालन-पोषण किया था। जब वे राष्ट्रपति बन गये, तो कहा कि बुआ! कुछ समय के लिए तुम दिल्ली में राष्ट्रपति भवन आ जाओ और मेरे साथ रहो। बुआ ने वहाँ की भोजपुरी भाषा में कहा था कि तू तो बन गया है देश का राजा और मेरी तो आदत पड़ी है, तुझे रे करके बोलने की। सबके सामने मेरे मुँह से रे का शब्द निकल जायेगा। राजेन्द्र बाबू ने कहा कि बुआ! मैं तो इसी के लिए तरसता हूँ। सारा हिन्दुस्तान तो मेरे सिजदे बजा सकता है, लेकिन मुझे प्रेम से "रे" कहकर "राजेन्द्र" कहकर बोलने वाला नहीं है। मैं इसी लिए तरसता हूँ कि तुम आ करके रहो। कल्पना कीजिए, जो

अक्षरातीत का यह दावा है—

आसिक मेरा नाम, रूह अल्लाह आसिक मेरा नाम।

इश्क मेरा रूहन सों, मेरा उम्मत में आराम॥

आशिक किसको कहते हैं? जिसके रोम-रोम में माशूक की शोभा बसी हो। जिसका यह दावा है कि मैं आशिक हूँ, तो यह याद रखिये कि आप जितना राज जी को याद करते हैं, उससे ज्यादा राज जी आपको याद करते हैं।

आप तो क्या करेंगे— एक घण्टा वाणी पढ़ लेंगे, पाँच घण्टे पढ़ लेंगे, छह घण्टे पढ़ लेंगे। फिर ६-७ घण्टे तो आप सोयेंगे, और कुछ नहीं तो आप ध्यान करेंगे— एक घण्टे, दो घण्टे, चार घण्टे। मान लीजिये कि आप चौबीस घण्टे में पन्द्रह घण्टे भी ध्यान करते हैं, सौलह

घण्टे भी ध्यान करते हैं। कुछ समय तो आप सोयेंगे अवश्य, क्योंकि शरीर की प्रवृत्ति है सोना।

आपके बगल में भयानक सर्प घूम रहा है, बिच्छू घूम रहा है, या आप ट्रेन से कहीं यात्रा पर जा रहे हैं। आप तो गहरी निद्रा में सोये हैं और एक ऐसा आशिक है, जो पल-पल देख रहा है कि मेरी आत्मा का तन कहीं खतरे में तो नहीं है। वह आपकी पहरेदारी कर रहा है कि आपके आने वाले समय में क्या घटित होना है, जिसका आपको कुछ भी पता नहीं। आप तो औपचारिकता पूरी कर लेते हैं। जब काम पर जाना होता है, जल्दी-जल्दी राज जी को प्रणाम करके चरणामृत-प्रसाद लेते हैं और भागते हैं। इसलिए धनी ने कहा है—

जो तुम पीछे दोस्ती करो, तो भी मेरे सच्चे यार।

हम चौबीस घण्टे में कुछ पल भी यदि राज जी को इस तरह से याद करें, उनके सामने सब भूल जायें, उसको कहते हैं साद। कुरआन में बारह हरफे—मुक्तेआत हैं। उसमें ऐन है, गैन है, कैफ है, साद है, अलिफ, लाम, और मीम भी है। साद का क्या अर्थ होता है— रिझाना। रिझाना कैसे होता है? रिझाने का तात्पर्य है— केवल "तू" रह जाए।

एक भक्त भगवान के मन्दिर में जाता है और हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाकर काँपते स्वरों से प्रार्थना करता है— हे परमात्मा! मेरे अवगुणों को क्षमा कर देना। मुझे मुक्ति दे देना। यह हो गयी भय के कारण की गई प्रार्थना। एक होता है अधिकार के साथ, अपनेपन की भावना से कुछ कहना।

कल्पना कीजिये, इतनी मातायें—बहनें बैठी हैं।

उनको किसी वस्तु की आवश्यकता हो, तो क्या वे अपने पति के आगे हाथ जोड़कर, प्रार्थना पत्र लेकर, प्रार्थना करती हैं। उनका अधिकार होता है पति से कह देना कि यह चीज ला देना। लेकिन अधिकार के साथ वह कर्तव्य की भाषा भी जानती हैं। एक दासी अपने मालिक से हाथ जोड़कर प्रार्थना करेगी, लेकिन एक अर्धांगिनी जिस प्रकार की कुर्बानी कर सकती है, वैसा दासी नहीं कर सकती। दासी को यदि समय पर वेतन नहीं मिलेगा, तो वह छोड़कर चली जायेगी। लेकिन यदि पति की तबीयत खराब हो, उसके कपड़े गन्दे हों, तो उसकी सेवा करने में पत्नी को घृणा नहीं आयेगी, जबकि दासी को आ सकती है।

इसी तरह, इस माया के संसार में आत्मा का प्रियतम है— एक अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द। यदि

उसके प्रति अपने कर्तव्य का अहसास हो जाये कि जो अक्षरातीत पल-पल हमारे ऊपर नजर रख रहा है, हमारा भी उत्तरदायित्व होता है कि उसको—

खाते पीते उठते बैठते, सोवत सुपन जाग्रत।

दम न छोड़े मासूक को, जाकी असल हक निसबत।।

संसार में, लहर कभी सागर से जुदा नहीं हो सकती। तभी तो कहा है—

आसिक इन चरन की।

ब्रह्मसृष्टि धनी के चरणों की आशिक है।

और आशिक की रूह चरन।

धनी के चरण ही रूह के जीवन के आधार हैं। यानि धनी के चरणों के बिना, ब्रह्मसृष्टि इस संसार में रहना पसन्द नहीं करेगी, जिसकी आत्मा जाग्रत हो, सबके

लिये यह बात नहीं है।

"साद" करने का तात्पर्य ही यह है कि हम खुद को भूल जायें। हम अपने रिश्ते-नातों की खुशियों को भूल जायें। सुन्दरसाथ के सामने समस्या रहती है कि राज जी से न कहें तो किससे कहें? राज जी से कहिए, आप अपना दुख-दर्द कहिये, आपको पूरा अधिकार है। आपकी जो मन्नत होगी, वह भी पूरी हो जायेगी, लेकिन प्रेम का अखण्ड आनन्द आप खो बैठेंगे।

यदि आप राष्ट्रपति के पास जाकर कहेंगे कि एक कप चाय दे दीजिये, राष्ट्रपति के लिये एक कप चाय पिलाना कौन सा मुश्किल है। राष्ट्रपति तो चाय पिला देंगे, लेकिन राष्ट्रपति की सान्निध्यता का लाभ एक चाय के लिये खो देना बहुत बड़ी भूल होती है।

आपको कौन मिला है? अनन्त ब्रह्माण्डों के स्वामी अक्षर ब्रह्म का भी प्रियतम मिला है, जिसके सत् अंग से करोड़ों ब्रह्माण्ड एक पल में बनते हैं और लय को प्राप्त होते हैं। यदि हम उसके प्रति अपने प्रेम का कर्त्तव्य पूरा कर दें, तो हमारी कोई भी आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी।

कल्पना कीजिए, आप अपने कार्यालय में कोई नौकर रखते हैं। आपको इस बात की पूरी सावधानी रखनी पड़ती है कि जिस स्तर पर महंगाई बढ़ रही है, उसी स्तर पर उसका वेतन भी बढ़ाते जाना है। उसको कोई कष्ट तो नहीं। आप उसको छुट्टी देते हैं, सारी सुख-सुविधा का ध्यान रखते हैं। जैसे आप अपनी पत्नी और बच्चों का ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार अपने नौकर का भी ध्यान रखते हैं। तो क्या अक्षरातीत से हमें यह

कहना पड़ेगा कि राज जी! हम बहुत कष्ट में हैं, आप हमारी प्रार्थना क्यों नहीं सुन रहे हैं? हमारा कर्तव्य है उनसे प्रेम करना। प्रेम में कुछ न माँगे, वे बिना माँगे सब कुछ देते हैं। यदि वे नहीं देते, तो अक्षरातीत कहलाने का उन्हें कोई अधिकार ही नहीं है।

आसिक न्हारे नजरोँ, मासूक बैठो रोए।

हेडी कडे उल्टी, आसिक से न होए॥

यदि वे आशिक हैं, जैसा कि उनका दावा है—

रूहों रे मेरे मैं रे तुमारा आसिक, मैं सुख सदा तुमें चाहों।

मैंने तुम्हें माशूक करके लिखा है।

मासूक कर लिखे तुमको, सो भी लिए ना तुम कौल।

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ यदि सुन लें, समझ जायें कि—

मासूक तुमारी अंगना, तुम अंगना के मासूक।

ए हुकमें इलम दृढ़ किया, अजूं रूह क्यों न होत टूक-टूक॥

इस चौथे चरण पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है कि आपका कौन है? क्या आप राज जी के दरबार के भिखारी हैं, जो बार-बार भीख माँगेगे। इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे धाम धनी! मैं आपकी अँगना हूँ, आपकी माशूक हूँ। तुम अँगना के माशूक, यानि अँगना भी आपकी आशिक है और उनके माशूक आप हैं। दोनों एक स्वरूप हैं। आपकी वाणी ने मेरे अन्दर दृढ़ता करा दी है कि मैं आपकी आशिक भी हूँ और आपकी माशूक भी हूँ।

कल्पना कीजिए, उस भाव में खो जाने के बाद क्या कोई राज जी के आगे चादर फैलाकर, कटोरा लेकर

भीख माँगेगा। मैं कभी यह नहीं कह रहा हूँ कि सुन्दरसाथ मन्नत माँगना बन्द कर दें। हाँ, शरीयत में माँगेगा, तरीकत में माँगेगा। जब उसको धनी के स्वरूप की पहचान हो जायेगी, तो कभी भी गिड़गिड़ाकर भीख नहीं माँगेगा।

माँगने वाला अपनी माँग पूरी होने के बाद माया में खो जाता है। चलो राज जी ने हमको दिया, बहुत बड़ी मेहेर कर दी। लेकिन वह वैसे ही खुश हो रहा है, जैसे उसने हीरे को छोड़कर काँच का टुकड़ा पा लिया हो और खुश हो रहा है। उस प्रियतम को अपने हृदय में बसा लीजिये, तो सब कुछ आ जायेगा। इल्म भी आ जायेगा, जोश भी आ जायेगा, हुक्म भी आ जायेगा, सहूर भी आ जायेगा, कुछ भी बाकी नहीं रह जायेगा। लेकिन आप यदि छोटी-छोटी चीजें माँगेगे, तो वह भी हँसता है कि

मुझसे मुझको कोई नहीं माँग रहा है। ये छोटे-छोटे खिलौने माँगकर परमधाम के ये ब्रह्ममुनि खुश हो रहे हैं। इस प्रकार हमारे ऊपर सबसे बड़ी हँसी होती है।

सीता ने राम से क्या माँगा था? केवल राम का सहचर्य माँगा था। कभी अयोध्या के राज्य की तरफ आँख उठाकर देखा भी नहीं। सीता राम के साथ वन में झोंपड़ी में रह रही हैं। घास-फूस की झोंपड़ी है। वन के कन्द-मूल जो मिलते हैं, वही खाना है। और आजकल तो घरों की स्थिति यह है कि यदि प्रतिदिन अलग-अलग व्यञ्जन न बनें, तो हो सकता है महाभारत ही छिड़ जाये। लेकिन सीता ने कभी उफ नहीं की कि आज सब्जी अच्छी नहीं है, आज ये अच्छा नहीं है।

कल्पना कीजिये, चौदह वर्ष में बारह वर्ष सीता ने केवल चित्रकूट में गुजारे हैं। सीता जी के लिये साड़ी

कहाँ से आती होगी? सीता जी कोई वस्त्रों के ढेर तो उठाकर ले नहीं गई थीं। रावण द्वारा अपहरण किये जाने के बाद सीता को केवल राम का ध्यान है। सीता को अपना श्रृंगार भी भूल गया है। वे प्रातः और संध्या समय केवल परमात्मा का ध्यान करती हैं और अपने मर्यादा पुरुषोत्तम को अपने दिल में बसाये रखती हैं। न सीता को सोने की लंका चाहिए, न सारे ब्रह्माण्ड का राज्य चाहिए। विचार कीजिए कि आज हम किस धरातल पर खड़े हैं?

अक्षरातीत हमारे धाम-हृदय में बसे हैं। यदि उनसे भी हम छोटी-छोटी चीजों के लिए प्रार्थना करेंगे, तो इसका तात्पर्य यह है कि हमें निसबत के अधिकार पर पूरा विश्वास नहीं है। हमारे अन्दर प्रेम की वह रसधारा नहीं है। प्रेम किसको कहते हैं? जिसमें अपनी कुछ भी

चाह न हो। यदि आपको राज जी से सच्चा प्रेम है, तो आप क्यों माँगते हैं? यदि राज जी से आप प्रेम करते रहेंगे, तो बिन माँगे सब कुछ मिलेगा। एक कहावत कही जाती है—

बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख।

लेकिन राज जी के साथ यह बात घटती नहीं है। राज जी से लौकिक सुख माँगने पर जरूर मिलेगा, लेकिन जो प्रेम की मारिफत की अवस्था है, वह तो कदापि नहीं मिल पायेगी।

पाठ का समाप्ति पूजन होता है, तो यह चौपाई जरूर कही जाती है—

दर्ई प्रदक्षिणा अति घणी, करुं दण्डवत प्रणाम।

सब साथना मनोरथ पूरजो, मारा धनी श्री धाम॥

मनना मनोरथ पूरण कीधा, मारा अनेक बार।

वारणे जाये श्री इन्द्रावती, मारा आतमना आधार॥

मेरे धाम धनी! आप सब सुन्दरसाथ की इच्छा पूरी कीजिये। मेरी इच्छाओं को आपने कई बार पूरा किया। लेकिन इन्द्रावती जी की इच्छा क्या होगी? क्या धन की या संसार की या प्रतिष्ठा की? इन्द्रावती जी ने तो स्पष्ट कह दिया—

ना चाहूँ मैं बुजरकी, न चाहूँ खिताब खुदाए।

खुदा का खिताब भी मुझे नहीं चाहिए। आप इस दुनिया में मुझे अक्षरातीत बना रहे हैं, मुझे यह भी कहलाना पसन्द नहीं। यदि सुन्दरसाथ के सामने राज जी प्रकट हो जायें, तो सुन्दरसाथ क्या माँगेगा? मैं समझता हूँ, बहुत कम सुन्दरसाथ राज जी को माँगेगे।

सांसारिक इच्छाएँ बहुत बड़ी होती हैं और इन इच्छाओं के पीछे भागने पर कभी सन्तोष मिलेगा नहीं।

कल्पना कीजिये, यदि आपको सारी पृथ्वी का राज्य भी मिल जाये, तो भी सन्तोष नहीं आयेगा। स्वर्ग का राज्य मिल जाये, वैकुण्ठ का राज्य मिल जाये, तो भी शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिए राज जी के आगे कभी भी छोटी चीज नहीं माँगनी चाहिए। आपको जितनी आवश्यकता है, बिन माँगे मिल जाया करेगी। आप राज जी से केवल पवित्र प्रेम का निर्वाह कीजिये। आप अपने दिल में उनको बसाया कीजिये। दुनिया में जो जीव सृष्टि के भक्त हुए हैं, उन्होंने भी कभी परमात्मा से कुछ नहीं माँगा।

ऐसी कहावत कही जाती है कि एक बार राधा-कृष्ण ने देखा कि सूरदास मस्ती में होकर गा रहे हैं।

राधा जी ने दबाव दिया कि प्रभो! आपका भक्त इतनी तन्मयता से गा रहा है, क्या आप उसको नेत्र नहीं दे सकते? श्री कृष्ण जी ने समझाया कि देखो! नेत्र क्या, जो माँगेगा दे दूँगा, लेकिन वह माँगेगा ही नहीं। अन्त में, राधा के दबाव से सूरदास जी की आँखों में ज्योति आ गई। सूरदास जी ने देखा कि मेरे सामने युगल स्वरूप खड़े हैं। श्री कृष्ण जी ने पूछा कि बोलो तुम्हें क्या चाहिये? सूरदास जी ने तत्काल कहा कि मैं पुनः अन्धा हो जाऊँ। जिन आँखों से उस युगल स्वरूप को देख लिया, उन आँखों से अब संसार दिखाई न पड़े। यह संसार के भक्तों का हाल है। हम तो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाते हैं। वाणी क्या कहती है—

विरहा नहीं ब्रह्माण्ड में, बिना सोहागिन नार।

सुहागिन आतम पिउ की, वतन पार के पार॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के सिवाय किसी को भी विरहिणी कहलाने का अधिकार ही नहीं है। ब्रह्मसृष्टियों का निवास कहाँ है? "वतन पार के पार", निराकार के पार के पार है, और हम सुन्दरसाथ जानते हैं कि हमारे पास कितना विरह है। विरह किसको कहते हैं?

विरहा गत रे जाने सोई, जो मिल के बिछुड़ी होए।

या मीन बिछुरी जल थें, या गत जाने सोए॥

मछली को पानी से बाहर निकाल दीजिये, वह तड़प-तड़पकर प्राण छोड़ देती है। उसी तरह, हमारे अन्दर केवल धनी को पाने की तमन्ना होनी चाहिये। जब आप राज जी के आगे मत्था टेकते हैं, तो कभी भी मत कहिये कि राज जी! हमारे बेटे की नौकरी लगा दीजिये, इस साल मुनाफा दिला दीजिये, हमें कोठी-बँगला दे

दीजिये।

आज से दस साल पुरानी बात है। जब गुजरात के शिविरों में जाना पड़ता था, तो कुछ सुन्दरसाथ आया करते थे। उनकी प्रार्थना क्या होती थी कि क्या करें? हमारी भैंस पहले दस लीटर दूध दिया करती थी, अब उसका दूध कम हो गया है। तो क्या राज जी से उनके लिये प्रार्थना की जाये कि भैंस का दूध बढ़ जाये? क्योंकि उन सुन्दरसाथ को कभी वाणी के ज्ञान का प्रकाश मिला ही नहीं था। राज जी से माँगना भी है, तो ऐसी छोटी चीजें न माँगें जिनका कोई भी महत्व नहीं। इसलिये प्रियतम से प्रियतम के प्रेम के सिवाय कुछ भी नहीं माँगना चाहिये। माँगेंगे तो मिलेगा जरूर, लेकिन आपके प्रेम की सफेद चादर पर कालिमा अवश्य आ जायेगी।

जो कदाचित् आयी नहीं।

श्री इन्द्रावती जी की आत्मा कह रही हैं कि मेरी आत्मा! तेरा मूल तन तो मूल मिलावा में बैठा है। यदि मान भी लिया जाये कि कदाचित् तू वहाँ से नहीं आयी तो—

तोए हक का है हुक्म।

फिर भी तुम्हारे अन्दर हक का हुक्म है। जैसे हम कह सकते हैं कि मूल मिलावा में हम धाम धनी के चरणों में बैठे हैं। बेशक बैठे हैं। हम वहाँ से बैठे-बैठे राज जी के दिल के पर्दे से इस संसार को देख रहे हैं। किस तरह से? इसको एक दृष्टान्त से समझेंगे, तो बहुत जल्दी समझ में आ जायेगा।

राजा जन्मेजय से व्यास जी ने कहा— "जन्मेजय!

तुम्हारा विवाह स्वर्ग की अप्सरा से होने वाला है और उस अप्सरा से विवाह के पश्चात् तुम ब्राह्मणों को भोज दोगे, जिसमें ब्राह्मणों के श्राप से तुम्हें कोढ़ी होना पड़ेगा।" व्यास जी त्रिकालदर्शी थे। उनके दिल में यह सारा दृश्य बसा हुआ है कि आगे क्या-क्या घटना होनी है?

उसी तरह, अक्षरातीत सर्वज्ञ हैं। अक्षरातीत ने कहा— "रूहों! मेरी तरफ देखो। मैं तुमको माया का खेल दिखा रहा हूँ।" रूहें राज जी के दिल रूपी पर्दे पर सारे खेल को देख रही हैं।

जैसा कि मैंने दृष्टान्त भी दिया था। आप टी.वी. के पर्दे पर देख रहे हैं कि लन्दन में खेल हो रहा है। बैठे तो हैं आप अपने कमरे में, लेकिन लन्दन के मैदान पर क्या-क्या हो रहा है, आप पर्दे पर देखते -देखते वहाँ

का सारा दृश्य देखने लगते हैं। वहाँ की आवाज भी आपके कानों में सुनाई पड़ती है। कोई जीत की बात होती है, तो आपका चेहरा खिल उठता है। हारने की बात होती है, तो चेहरा मुरझा जाता है।

इसी तरह, राज जी के दिल रूपी पर्दे पर सारा दृश्य अंकित है। भविष्य में क्या-क्या होना है, किस आत्मा के साथ क्या होना है, राज जी के दिल में सब चल रहा है, और रूहों की नजर इस दुनिया में जीवों के ऊपर पड़ गई है। वे खेल को देख रही है। यहाँ जो नजर आई है, उसको आत्मा कहते हैं। महामति जी यही बात कह रहे हैं। कदाचित् यह माना जाये कि तू परमधाम से नहीं आयी, लेकिन जिस तन को तूने धारण किया है, परात्म की नजर ने धारण किया है, उसमें हक का हुक्म है। यानि राज जी के हुक्म से सुरता के रूप में दिल की

शक्ति आयी है, जो इस ब्रह्माण्ड की लीला को देख रही है।

हुज्रत दर्ई तोको अर्स की।

अन्दर बैठी हुई चेतना जीव के ऊपर बैठकर खेल को देख रही है। उसने अर्स की हुज्रत ले रखी है। अर्स का दावा ले रखा है कि हमारा घर कहाँ है? निराकार के पार के पार, मैं परमधाम की रहने वाली हूँ। मेरा यह संसार नहीं है। क्या कहा है—

जो कोई आत्म धाम की, इत हुई होए जाग्रत।

सो इन स्वरूप के चरन लेय के, चलिये अपने घर॥

यह बात किस प्रसंग में कही जा रही है कि जो कोई आत्मा परमधाम की हो और वाणी के ज्ञान से जाग्रत हो गई हो, वह अपने दिल में युगल स्वरूप के चरणों को

बसाकर अपने निज घर चले। प्रश्न तो यह है कि परात्म के तन यहाँ आ नहीं सकते क्योंकि—

कंकरी उड़ावे अर्स की, ए जो चौदे तबक।

लेकिन जो नजर यहाँ आयी है, जब तक वह अपने परात्म के तन में नहीं पहुँचेगी, तब तक वहाँ भी परमधाम की लीला शुरु नहीं हो सकती। वैसे वहाँ एक क्षण भी नहीं बीता है, सोई साइत, सोई पल, सोई घड़ी है। फिर भी जैसे आप निद्रा में सो गये हैं। सोते समय कल्पना कीजिए आप दिल्ली पहुँच गये। अब आपका सपना चल रहा है। जब तक यह सपना नहीं टूटेगा, तब तक आप जाग्रत होकर अपने पलंग पर बैठ नहीं सकते, किसी से बातें नहीं कर सकते। आपका सारा ध्यान दिल्ली में बना रहेगा।

उसी तरह, तब तक जागनी ब्रह्माण्ड की लीला चल रही है, जब तक जीवों के ऊपर परात्म की नजर पड़ी हुई है और परात्म की नजर साक्षात् नहीं पड़ेगी, क्योंकि परात्म का तन इश्क का स्वरूप है। इश्क के स्वरूप की साक्षात् नजर जीव पर पड़ जाये, तो जीव उसको सहन भी नहीं करेगा। राज जी ने अपने दिल रूपी पर्दे में हमारी नजर करके फरामोशी के ब्रह्माण्ड को दिखाया।

जिन-जिन जीवों पर परात्म की नजर राज जी के दिल से होकर पड़ी है, वे जीव इस संसार में अपने को सबसे अलग पा रहे हैं, क्योंकि परात्म की वासना (सुरता) आने के कारण उनकी प्रवृत्ति संसार के अन्य प्राणियों से अलग है। जैसे कहा है—

यामें सुरत आई श्यामाजी की सार, मत्तू मेहता घर अवतार।

यानि देवचन्द्र जी के अन्दर किसकी सुरता आई, श्यामा जी की। परात्म के प्रतिबिम्ब को सुरता, वासना, या आत्मा कहते हैं।

जैसे आप यहाँ हैं, सो रहे हैं। सोते समय आपका एक सपने का स्वरूप दिल्ली चला गया। आपके शरीर से कुछ भी गया नहीं है, लेकिन आपका हूबहू रूप दिल्ली में काम कर रहा है। शरीर तो जैसा का तैसा यहाँ है। आपका वजन भी उतना ही रहा, आपके शरीर, आपके कपड़ों का एक कण भी दिल्ली नहीं पहुँचा। लेकिन जैसा कपड़ा आप पहने हुए हैं, जैसा आपका रूप-रंग है, जैसी आवाज आप यहाँ बोलते हैं, दिल्ली में हूबहू वही लीला कर रहा है। यही खेल चल रहा है।

राज जी ने अपने दिल के पर्दे पर सारे खेल को दिखा रखा है। महामति जी कह रहे हैं कि मेरी आत्मा!

कदाचित् यह माना जाये कि तू अपने मूल तन से नहीं आयी, लेकिन तुम्हारे यहाँ के तन में हक का हुक्म तो है। और तुझे अर्श की लज्जत भी मिल गई है कि तू यह दावे से कह सकती है कि मैं परमधाम की आत्मा हूँ।

दिया बेशक अपना इलम।

और धाम धनी ने तुझे अपना बेशकी का इल्म भी दे दिया है। यह इल्म क्या है?

ऐसा इलम हकें दिया, हुआ इस्क चौदे तबक।

मूल डाल पात पसरया, नजरों आया सबन।।

यह इल्म की महत्ता है कि जिस प्रेम के बारे में दुनिया केवल कहती रहती थी, उसके विषय में जान भी गयी।

प्रेम नाम दुनियां मिने, ब्रह्मसृष्टि ल्याई इत।

ऐ प्रेम इनों जाहिर किया, ना तो प्रेम दुनी में कित।।

आज परमधाम की अष्ट प्रहर की लीला संसार में जाहिर हो गई। युगल स्वरूप का शोभा-श्रृंगार संसार में उजागर हो गया। हकीकत मारिफत की बन्दगी जाहिर हो गई। जिसके दिल में ये चीजें बस जायेंगी, वह प्रेम की वास्तविक राह पर चल पड़ेगा।

सूफी फकीर इश्के-मजाजी से इश्के-हकीकत की तरफ बढ़ने का प्रयास करते हैं। कितने सूफी फकीर हुए, जिन्होंने सारी-सारी रात खुदा की बन्दगी में गुजार दी, कभी नमाज नहीं पढ़ी, रोजा नहीं रखा, हज करने नहीं गये, लेकिन पूरी रात में उन्होंने निद्रा का कुछ भी सेवन नहीं किया। हाँ, दिन में सोते रहे, ताकि दुनिया यह

जानती रहे कि ये तो कुछ नहीं करते। उन्होंने तरीकत की बन्दगी की राह अपनायी, जिसको वे इश्क की राह मानते हैं। उन्होंने अल्लाह तआला को माशूक माना। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों की राह तो इनसे भी परे है।

कल्पना कीजिये, हमें अपनी मन्जिल को कितनी ऊँचाइयों की तरफ ले चलना पड़ेगा। यदि सुन्दरसाथ अपनी आत्मा को जाग्रत करना चाहते हैं, तो वर्तमान स्वरूप में काफी कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है। हमें शरीयत की चादर हटाकर हकीकत और मारिफत की राह पकड़नी पड़ेगी, जिससे हम अपने दिल में युगल स्वरूप की छवि को अखण्ड रूप से बसा लें।

संसार के बड़े-बड़े योगी दिन-रात लगे हुए हैं कि हमें परमात्मा का दर्शन हो जाये, लेकिन निराकार से परे उनकी सुरता पहुँच ही नहीं पा रही। उनका शरीर हड्डियों

का ढाँचा बन जाता है। आसन जमाये-जमाये छह-छह दिन, सात-सात दिन बीत जाते हैं। और तो और, कितने योगी ऐसे हैं जिनकी आँखों की पलकें कई-कई इंच लम्बी हो गई हैं। एक बार की समाधि लगी, तो कितने महीने-कितने बरस के बाद टूटेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता।

हम सुन्दरसाथ के पास सारा ज्ञान है, लेकिन हमारी हालत वैसी है, जैसे हमारी तिजोरी में भले ही हजारों हीरे भरे पड़े हैं किन्तु हम भूख के कारण तड़प रहे हैं। हमें उस तिजोरी को खोलना नहीं आया और उन हीरों को बेच करके भोजन खरीदना नहीं आया। इसी कारण हम अतृप्त हैं। तात्पर्य यह है कि जो परमधाम का ज्ञान धाम धनी ने ब्रह्मवाणी में दिया है, उसके आधार पर हम चौबीस घण्टे में कुछ समय अवश्य निकालें उस

प्राणवल्लभ को दिल में बसाने के लिये। हम साद करें, साद करने का तात्पर्य? हम सबको भुला दें और उनकी छवि को अपने हृदय में अखण्ड रूप से स्थिर कर लें। यदि हम ऐसा कर लेते हैं, तो—

इत ही बैठे घर जागे धाम, पूरन मनोरथ हुए सब काम।

की स्थिति प्राप्त हो जायेगी।

यह खुले अंग श्रृंगार में जो हृदय कमल का वर्णन हुआ है, सब सुन्दरसाथ की आत्मा को जाग्रत करने के लिये विशेष रूप से हुआ है। सुन्दरसाथ के विशेष आग्रह पर इस प्रकरण की चर्चा की गई। यदि अपनी अन्तरात्मा की प्यास बुझानी है, तो मैं आशा करता हूँ कि सुन्दरसाथ सागर-श्रृंगार को अधिक से अधिक आत्मसात् करेंगे, तब लगेगा कि युगल स्वरूप हमसे एक

पल के लिए भी जुदा नहीं है।

युगल स्वरूप को हम सांसारिक भावना से न देखें। यदि अनन्त प्रेम के सागर, आनन्द के सागर को हम दिल में बसा लेते हैं, तो हमारे चेहरे पर कभी शिकन नहीं झलक सकता। जिस तरह से वह आनन्द का सागर है, हमारे हृदय में भी आनन्द का सागर लहराता रहेगा। सांसारिक कष्ट जरूर आते रहेंगे, लेकिन हृदय में अवश्य अनुभूति होती रहेगी कि आनन्द का सागर तो मेरे अन्दर बसा हुआ है, शान्ति का सागर मेरे दिल में बसा हुआ है। यह कब होगा? जब आपका दिल अर्श होगा। दिल को अर्श बनाने के लिये ही बार-बार राज जी ने कहा है—

हक नजीक सेहेरग से।

मैं तुम्हारी प्राणनली शाहरग से भी नजदीक हूँ, लेकिन

तुम मुझे पहचान नहीं पा रहे हो।

सेहेरग से नजीक, आड़ो पट न द्वार।

खोली आंखें समझ की, देखती न देखे भरतार।।

जो शाहरग अर्थात् हमारी प्राण की नली से भी नजदीक है, उसको हम दूर से दूर मानते हैं, और जो रिश्ते बिन जाने बिन पहचाने बन जाते हैं, उसको हम सबसे ज्यादा नजदीक मानते हैं।

पति-पत्नी का रिश्ता कैसे होता है? पूर्व जन्मों के कर्मों का फल भुगतने के लिये। पिता-पुत्र का रिश्ता, भाई-भाई का रिश्ता, मित्र-मित्र का रिश्ता, सब लेन-देन का हिसाब पूरा करने के लिये होता है। लेकिन यदि इन रिश्तों को हम पहली प्राथमिकता दें और राज जी को बाद में रखें, तो यह निश्चित है कि हम धनी को साद नहीं

कर रहे हैं, बल्कि एक झूठी औपचारिकता पूरी कर रहे हैं। राज जी की बन्दगी की इस अवस्था में रहते-रहते कभी भी आत्मा की पूरी जागनी नहीं हो सकती। आपके मन में संशय होगा कि क्या परिवार के रिश्तों को तोड़ दिया जाये? मैं यह नहीं कहता कि परिवार के रिश्तों को तोड़ दीजिये।

आप ट्रेन में यात्रा करते हैं। जब आपका स्टेशन आ जाता है, तो क्या आप रोने लगेंगे कि ट्रेन तो मुझे छोड़कर जा रही है। जब स्टेशन आ गया, तब आप हँसते हुए गाड़ी से उतर जाते हैं और अपनी मन्जिल की तरफ चल देते हैं। गाड़ी का आपने उतना ही प्रयोग किया, जहाँ तक स्टेशन का आना था।

आप रात को धर्मशाला में ठहरते हैं। धर्मशाला के लोगों से आप झगड़ा नहीं करते। धर्मशाला में पूरी रात

काटनी है और सवेरे आप अपने गन्तव्य की तरफ चल देते हैं। उसी तरह, परिवार में रहते हुए परिवार के कर्त्तव्यों को पूरा कीजिये, समाज के उत्तरदायित्वों को पूरा कीजिये, लेकिन इसमें लिप्त न होइए। जैसे कमल का फूल पानी में उगता तो है, लेकिन पानी में लिप्त नहीं होता। आपकी अन्तरात्मा का प्रेम अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत के लिये पहले नम्बर पर होना चाहिये, उसके बाद सांसारिक उत्तरदायित्वों को पूरा कीजिये। इसमें कुछ भी दोष नहीं लगेगा।

महाराजा छत्रसाल सिंहासन पर बैठे हुए राज-काज चलाते थे। अपने पुत्र के प्रति भी कर्त्तव्य पूरा करते थे। राज्य के हर विभाग की देख-रेख करते थे। महारानियों के प्रति भी अपने कर्त्तव्यों का पूरा ध्यान रखते थे। किन्तु अष्ट प्रहर की लीला के वर्णन में छः प्रहर तक की

लीला में कहीं न कहीं महाराजा छत्रसाल जी का नाम अवश्य आता है। अमीरूल मोमिनीन, अर्थात् ब्रह्ममुनियों में सर्वश्रेष्ठ, की शोभा महाराजा छत्रसाल को मिली, क्योंकि उन्होंने धाम धनी के स्वरूप को पहचान कर सच्चे हृदय से सेवा की थी। यदि हम इसको जीवन में चरितार्थ करें कि महाराजा छत्रसाल जी ने संसार में रहते हुए भी धनी के प्रेम में अपने को लगाए रखा और श्री जी की अन्तर्धान-लीला के समय उन्होंने स्वयं तलवार उठा ली थी कि श्री जी के बिना मैं संसार में कैसे रहूँगा। उसी तरह, यदि हम धनी से सच्चा प्रेम करेंगे, तो कहलाने के लिये हम संसार में रहेंगे और अन्दर से हमारी सुरता परमधाम में विचरण किया करेगी।

लगी वाली कछु और न देखे, पिंड ब्रह्माण्ड वाको है री नहीं।

ओ खेलत प्रेमें पार पिया सों, देखन को तन सागर माहीं॥

सागर-श्रृंगार की वाणी को आत्मसात् करके, आप प्रतिदिन अपने जीवन में चौबीस घण्टे में आधे घण्टे से लेकर दो घण्टे निकालिए, जिसमें सबको भुलाकर राज जी की शोभा में अपने को लगा दीजिए। ध्यान रखिए, सौ काम छोड़कर भोजन कीजिए, हजार काम छोड़कर स्नान कीजिये, लाख काम छोड़कर वाणी पढ़िए, और करोड़ काम छोड़कर युगल स्वरूप की चितवनि कीजिए। संसार के सारे काम बन्द हो जायें, लेकिन चितवनि के लिये चौबीस घण्टे में से आपको समय निकालना ही पड़ेगा। तभी आपकी आत्मा जाग्रत होगी।



कयामतनामा

कदी केहेनी कहे मुख से, बिन रेहेनी न होवे काम।
रेहेनी रूह पोहोंचावहीं, केहेनी लग रहे चाम॥

छोटा कयामतनामा १/५५

मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत! तूने महामति जी के धाम-हृदय में विराजमान होकर जो इल्म के सागर का यह रस उड़ेला है, उसकी बूँदें यदि किसी के हृदय में प्रवेश कर जायें तो उसका जीवन धन्य-धन्य हो जायेगा। संसार में हर कोई चाहता है कि उसकी रहनी, उसका आचरण सर्वश्रेष्ठ हो, लेकिन कुछ ऐसे कारण हैं जिससे उसका आचरण सर्वश्रेष्ठ नहीं बन पाता।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम और रावण की विद्वता को देखा जाये, तो रावण की विद्वता निःसन्देह राम से श्रेष्ठ

थी। इसलिये रावण के दस सिरों की कल्पना की गई, लेकिन आचरण में दोनों एक-दूसरे के विपरीत हैं। रावण वेदों का महापण्डित है, किन्तु आचरण वेदों से सब कुछ उल्टा।

सुन्दरसाथ के सामने एक समस्या खड़ी होती है कि वाणी में रास से लेकर कियामतनामा तक इश्क और ईमान की बातें हैं।

ईमान का तात्पर्य क्या है? हमारे दिल में एक अक्षरातीत सच्चिदानन्द के प्रति अनन्य निष्ठा हो, संसार की कोई भी चाहत उनसे बढ़कर न हो, इसको कहते हैं ईमान। माया कितना भी जोर क्यों न लगाये, माया के सुख कितना भी हमें आकर्षित क्यों न कर रहे हों, लेकिन प्रियतम का प्रेम हमारे और धनी के बीच में बाधक न बनने पाये, यह कहलाती है निष्ठा या ईमान।

दूसरी जो आवश्यकता हमारे लिये है, वह है इश्क या अनन्य प्रेम। जिसके हृदय में प्रेम का रस प्रवाहित हो गया, वह धन्य-धन्य है।

सारा संसार उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को खोजता है। खोजते-खोजते यह स्थिति बन गयी-

शिव सनकादिक आदि के इच्छित, शेष न पावे पार।

लेकिन कबीर जी कहते हैं कि पहले एक ऐसी स्थिति थी कि मैं हरि के पीछे-पीछे चला करता था। अब ऐसी अवस्था बन गई है कि मैं आगे-आगे चलता हूँ और मेरा हरि पीछे-पीछे चलता है। धनी ने यही बात कही है-

जब चढ़े प्रेम के रस, तब हुए धाम धनी बस।

जब उपजे प्रेम के तरंग, तब हुआ धाम धनी सों संग॥

हर सुन्दरसाथ जब इस बात को पढ़ता है, सुनता है, चिन्तन करता है, तो उसके मन में स्वाभाविक आकांक्षा होती है कि कदाचित् मेरा जीवन भी परमहंसों की तरह क्यों नहीं बन जाता, जिन्होंने अपने धाम-हृदय में प्रियतम को बसा लिया, जिन्होंने सारी आकांक्षाओं को ठोकर मार दी, जिनके लिये माया की तृष्णायें भस्मीभूत हो गयी थीं? इसका कारण यह है कि जो जिसका चिन्तन करता है, वैसा ही हो जाता है। यदि हम भौतिक धरातल पर ब्रह्मवाणी को देखेंगे, इसके शब्दों को, इसकी चौपाइयों को कण्ठस्थ करेंगे, तो केवल पढ़ सकते हैं, सुन सकते हैं, सुना सकते हैं। प्रसंग यही चल रहा है—

कदी केहेनी कहे मुख से।

मुख से तो हर कोई कह सकता है।

कल्पना कीजिए, यदि आप चौबीस घण्टे शक्कर-
शक्कर कहते रहिए, तो क्या आपका मुख मीठा हो
जायेगा? उसी तरह, महामति जी ने कहा है—

हक खिलवत गाए से, जान्या हमको देसी जगाए।
इस्क पूरा आवसी, पर हकें हांसी करी उलटाय।।

हम वाणी पढ़ते हैं, वाणी सुनते हैं, वाणी सुनाते हैं।
जब वाणी के इन शब्दों में इश्क की बात आती है, तो
लगता है कि हमारे हृदय में भी इश्क आ गया, किन्तु यह
सम्भव नहीं है। हमारी बुद्धि उन शब्दों को ग्रहण कर लेती
है। चित्त से चिन्तन होता है, मन से मनन होता है, बुद्धि
से विवेचना होती है, अहंकार से अहंपना होता है। जीव
के अन्तःकरण द्वारा ज्ञान की वह धारा हृदय में
आत्मसात् हो जाती है और वाणी द्वारा उसको व्यक्त कर

दिया जाता है। इसको कहते हैं—

कदी कहनी कहे मुख से।

अब प्रश्न यह होता है कि आचरण में कैसे उतारें? आप जानते हैं, जैसा कि मैंने पहले ही कहा, जो जिसका चिन्तन करता है वैसा ही हो जाता है। कार्य किससे होगा— मन से, मन के संकल्प—विकल्प चित् के अनुसार होंगे। यदि आपके चिन्तन में योग की भावना है, तो आप योगी बनेंगे। यदि आपके चिन्तन में भोग का चिन्तन होगा, तो आप भोगी बनेंगे। यदि आप निर्विकार ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, तो ब्रह्म की तरह निर्विकार बनेंगे। यह अन्तःकरण की बात है, लेकिन हमारी स्थिति कुछ अलग सी है।

अन्तःकरण आतम के, जब ए रहयो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए।

परात्म क्या है? क्या परात्म में काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार, तृष्णा है? हम एक स्वर से कह देंगे कि नहीं है। अक्षरातीत का साक्षात् तन है, साक्षात् अंग है। परमधाम त्रिगुणातीत है। अक्षरातीत भी त्रिगुणातीत है, शब्दातीत है, तो परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा ने इन विकारों को अपने ऊपर कैसे ओढ़ लिया? ये विकार वस्तुतः जीव के हैं।

जीव के अन्तःकरण में जन्म-जन्मान्तरों की वासनायें उसका पीछा कर रही होती हैं। उसके चित्त ने न जाने कितने माता-पिता को देखा है, कितने जन्म देखे हैं, कितने भाई-बन्धु देखे हैं। काम, क्रोध, मद,

लोभ में उसका अन्तःकरण ग्रसित रहा है और वासना उसका पीछा करती रही है। उस वासना की पूर्ति के लिये ही तो वह चौरासी लाख योनियों में भटकता रहा है। आत्मा जीव पर बैठकर इस खेल को देख रही है। हम सुन्दरसाथ जब तक वाणी को केवल पढ़ने का विषय बनायेंगे, चिन्तन का विषय नहीं बनायेंगे, तब तक हमारे हृदय-मन्दिर में उसका रस पूरी तरह से प्रवाहित नहीं होगा।

एक सन्त जी थे। गीता का बहुत अच्छा पाठ करते थे। एक विद्वान उधर से गुजरा। उसने देखा कि महात्मा जी बहुत अच्छे स्वरों में गीता का पाठ कर रहे हैं। वह उनसे मिलने के लिये गये, तो देखा कि महात्मा जी के पाँव हाथी की तरह मोटे हो गये हैं। उस विद्वान ने महात्मा जी से कहा— "महात्मा जी! आप इतने अच्छे

स्वरों में गीता का पाठ कर रहे हैं। आप इसको बैठकर क्यों नहीं पढ़ लेते?" ये सुनते ही महात्मा जी की आँखें लाल हो गयीं। उन्होंने कहा कि तुम मुझे सिखापन देते हो। मुझे चौदह साल हो गये हैं, खड़े-खड़े ऐसे पाठ करते हुए। मैं कभी बैठता ही नहीं, कभी लेटता भी नहीं।

उस विद्वान ने कहा कि गीता में तीन तरह के तप बताये गये हैं— मन का तप, वाणी का तप, और शरीर का तप। इन तीनों तपों में सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण के भाव से तीन तरह के तप होते हैं। आपका जो तप है, वह तामस तप के अन्तर्गत आयेगा, जिसका कारण है अज्ञान। इससे आपको कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं। जब उन्होंने गीता के श्लोकों को पढ़ करके बताया तो महात्मा जी की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे कि चौदह साल हो गये, गीता के इन श्लोकों का मैं

प्रतिदिन पाठ करता रहा हूँ, लेकिन मैंने तो कभी ध्यान दिया ही नहीं था कि इनका आशय क्या है।

इसी तरह, यदि हम रास से लेकर कयामतनामा तक की वाणी का प्रतिदिन पाठ करते हैं, लेकिन वाणी के कथनों में क्या रहस्य छिपा है, यदि इसे जानने के लिये चिन्तन की गहराइयों में नहीं जाते हैं, तो हमारा अन्तःकरण उस सत्य को पूरी तरह से आत्मसात् नहीं करेगा। कदाचित् अन्तःकरण में ज्ञान की धारा आ भी जायेगी, तो जब तक आपकी आत्मा के धाम-हृदय में प्रियतम की छवि नहीं बसेगी, तब तक जीव का अन्तःकरण कभी भी पवित्र नहीं हो पायेगा।

दुर्योधन बार-बार कहता था कि मैं जानता हूँ कि धर्म किसको कहते हैं, लेकिन धर्म का आचरण करने की मेरी इच्छा ही नहीं होती। मैं यह भी जानता हूँ कि अधर्म

किसको कहते हैं, लेकिन अधर्म छोड़ने का मेरा मन नहीं करता। दुर्योधन भी वेद का स्नातक था, लेकिन सारा आचरण वेद के उल्टा करता था। इसी तरह, यदि हम ब्रह्मवाणी को केवल कण्ठ का विषय बना लें, बुद्धि का विषय बना लें, तो हम कह तो सकते हैं कि ऐसा करना चाहिये, ऐसा करना चाहिये। किन्तु जब तक आत्मा के हृदय में प्रेम का सागर नहीं बस जाता, आनन्द का सागर नहीं बस जाता, निर्विकारिता का वह सागर नहीं बस जाता, तब तक कभी भी हमारे जीव का हृदय पवित्र नहीं होगा और हमारा आचरण भी कभी नहीं सुधरेगा।

आज यहाँ जितने सुन्दरसाथ बैठे हैं, पहले के सभी परमहंसों से ज्यादा पढ़े-लिखे हैं। उस समय मुझे नहीं लगता कि कोई भी परमहंस एम.ए., बी.ए., या बड़ी-बड़ी डिग्रियों को लिये होगा। लेकिन उन्होंने अपने को

साधना की कसौटी पर कसा। आप जो सुन्दरसाथ जितने पाठ कर रहे हैं, पहले के परमहंस इतने पाठ भी नहीं कर पाते थे, क्योंकि उस समय वाणी हस्तलिखित थी। लेकिन सारे ज्ञान के सागर को उन लोगों ने दिल में बसा रखा था।

तुम आए सब आईया, दुख गया सब दूर।

जब प्रेम के सागर को ही बसा लेंगे, ज्ञान के सागर को ही बसा लेंगे, तो बाकी क्या रहता है। यही कारण है कि परमहंसों का जीवन हमारे लिए आदर्श है। हम उन बातों को पढ़ते हुए, सुनते हुए, कहते हुए भी उसको आचरण में नहीं उतार पाते हैं। इसीलिये वाणी बार-बार कह रही है—

बिन रेहेनी न होवे काम।

कहते हैं कि बिना रहनी के कोई भी काम होने वाला नहीं है, लाभ नहीं होने वाला। जैसा कि मैंने अभी कहा, शक्कर-शक्कर का जप करने से कभी भी मुख मीठा नहीं हो सकता, उसी तरह से यदि हम अक्षरातीत का केवल वर्णन करें कि हमारे धाम धनी ऐसे हैं, हमारे धाम धनी प्रेम के सागर हैं, खिलवत में प्रेम भरा है, खिलवत में आनन्द भरा है, तो यह केवल मुख से प्रकट होने वाला विलास है। कोई भी ऐसा पढ़ करके कह सकता है। लेकिन जिसकी हम व्याख्या कर रहे हैं, जिसकी वाणी हम प्रतिदिन पाठ के रूप में पढ़ रहे हैं, जब तक वह हृदय में नहीं बैठता, तब तक किसी भी कीमत पर रहनी में वह चीज़ नहीं आ सकती।

जैसे घर में एक कक्ष को देखिये। कक्ष में घनघोर अन्धेरा छाया होता है। बल्ब जला देते हैं, तो कमरा

प्रकाश से भर जाता है। हृदय में माया का अन्धकार भरा पड़ा है। काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार का अन्धकार कितने जन्मों से जीव के हृदय में पीछा कर रहा है, और यह कब समाप्त होगा? उस अन्धकार की जगह प्रियतम की छवि प्रतिष्ठित कर दीजिये। जब अक्षरातीत की नूरी शोभा दिल में विराजमान हो जायेगी, तो काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार वैसे ही छू-मन्तर हो जायेंगे, जैसे कि अग्नि में जंग लगे लोहे को डालने पर लोहा अपने कालापन और जंग को हमेशा-हमेशा के लिये छोड़ देता है। इस प्रकार, एक ही रास्ता है कि हम आँख मूँदकर हकीकत-मारिफत की राह पकड़ें और उस प्रियतम की छवि को दिल में बसायें।

सुन्दरसाथ की एक समस्या यह होती है कि एक घण्टे भी चर्चा में बैठने पर हमें पैर इधर-उधर करने

पड़ते हैं, ऐसी स्थिति में भला ध्यान कहाँ से होगा? मैं जहाँ तक अनुमान करता हूँ, यहाँ जितने सुन्दरसाथ बैठे हैं, सबके घरों में टी.वी. होगी। यदि टी.वी. के पर्दे पर कोई अच्छी चीज दिख रही हो, तो कितने भी वयोवृद्ध होंगे, दो-तीन घण्टे सरलतापूर्वक बैठे रह जाते हैं। योग दर्शन कहता है—

स्थिर सुखम् आसनम्।

स्थिरतापूर्वक जिसमें सुख से बैठा जाये, वही आसन है। आसन कैसे होगा? जब मन कहीं लग जाता है, तो आसन अपने आप स्थिर हो जाता है। योगदर्शन का कथन है—

अनन्ते वास मापन्नम चित्तं आसनं निवर्त्तयत्ति।

यदि परब्रह्म के प्रेम में चित्त लग गया, तो आसन

अपने आप स्थिर हो जाता है। जैसे टी.वी. के पर्दे पर कोई आकर्षक दृश्य दिख रहा हो, तो पता ही नहीं चलता कि दो-तीन घण्टे कैसे बीत गये। वैसे ही यदि हमारे हृदय में प्रियतम का प्रेम प्रवाहित हो जाये, तो आसन जमाने में कोई भी समस्या नहीं होगी। एक बात, यदि कोई सोचता है कि मेरा शरीर बहुत मोटा-ताजा होगा, तभी हम स्थिर होकर बैठ सकेंगे, तो यह भी सम्भव नहीं है।

यदि आपका भोजन काफी उत्तेजक है, यदि आप तीखी-तीखी लाल मिर्चे खाते हैं, खूब लहसून खाते हैं, दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह कप कॉफी-चाय के उड़ेलते हैं, तो आप आँखें बन्द करके तो बैठे रहेंगे, लेकिन आपके हाथ-पैर हिलते-डुलते रहेंगे। इस समय तो पैरों की बीमारी चल गई है। मैं नहीं कहता कि हर कोई आसन

मारकर ही बैठे। जो बैठ नहीं सकते हैं, वे कम-से-कम सोफे पर तो पैर लटकाकर बैठ ही सकते हैं।

आप अपने भोजन को इतना सात्विक बनाइये कि बैठ गये तो बैठ गये। आप किसी आकर्षक दृश्य, जैसे हिमालय की बर्फीली चोटियों, को मग्न होकर देखते हैं। जब सूर्योदय हो रहा होता है और सूर्य की धूप उस पर पड़ती है, तो कितना सुन्दर दृश्य होगा। या बद्रीनाथ के पास फूलों की घाटी में यदि आपको ले जाया जाये, तो वहाँ आप खड़े के खड़े ही रह जायेंगे। ऐसा लगेगा कि पृथ्वी पर इससे अधिक सौन्दर्य कहाँ होगा। यदि उस सौन्दर्य को देखते-देखते आप हतप्रभ रह जाते हैं, खड़े के खड़े रह जाते हैं, तो अक्षरातीत से ज्यादा सुन्दर तो कोई नहीं होगा।

यदि आपके अन्दर सागर-श्रृंगार की वाणी

आत्मसात् हो गयी, नख से शिख तक उस प्रियतम की छवि का आपने बौद्धिक रूप से अवलोकन कर लिया, और एकाग्र मन से बैठ जाते हैं, तो ठीक है, अन्यथा अस्वस्थता की स्थिति में लेटे-लेटे भी आप कर सकते हैं। यदि आप बैठने की सामर्थ्य नहीं रख सकते, तो सोफे पर पैर लटकाकर भी बैठ सकते हैं। कदाचित् सोफे पर पैर लटकाने की स्थिति में न हों, लेटे-लेटे ही यदि आपको निद्रा नहीं आ रही है, तो आप अपने हृदय-मन्दिर में उस प्रियतम को देख ही सकते हैं। हाँ, इसके लिये मन को शान्त बनाना पड़ेगा।

एक सन्त ने कहा है—

मन पंछी तब लग उड़े, विषय वासना माहें।

प्रेम बाज की झपट में, जब लग आया नाहें॥

जिसके हृदय में प्रेम आ जायेगा, उसका मन कभी भी इधर-उधर भागेगा नहीं। माया के सारे हथियार एक तरफ और प्रेम का हथियार एक तरफ, क्योंकि प्रेम ही परब्रह्म का स्वरूप है। यदि आपके हृदय में उस अक्षरातीत के लिये प्रेम की रसधारा बहने लगेगी, तो कभी आप गिले-शिकवे नहीं करेंगे कि मेरा मन तो भागता रहता है।

ध्यान रखिये, इस जिह्वा को कभी तृप्त नहीं किया जा सकता। इन्द्रियों की तृष्णा को भोग के द्वारा कभी भी समाप्त नहीं किया जा सकता। इसके निर्मूलन का एक ही उपाय है कि हमारी आत्मा अनन्त आनन्द के सागर को ही दिल में बसा ले। वृक्ष की जड़ में पानी दे देने पर एक-एक डाली और एक-एक पत्ते को पानी देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। संसार यही गलती कर रहा है।

संसार डालियों और पत्तों में पानी देता फिरता है। परिणाम क्या होता है? उसके आनन्द का वृक्ष सूखा ही रहता है। आत्मा के अन्दर जब तक उसके प्रियतम की छवि नहीं अंकित होगी, तब तक शाश्वत् आनन्द का प्रवाह उसके अन्दर कभी भी प्रवाहित नहीं हो सकता।

क्या आज तक किसी हिरण ने मृगतृष्णा के जल में स्नान किया है? क्या किसी ने खरगोश के सींग देखे हैं? क्या किसी ने आकाश के फूल का दर्शन किया है? जैसे बन्ध्या के पुत्र का विवाह होने जैसी बातें सम्भव नहीं, तो इस संसार में किसी को भी भोगों से शाश्वत शान्ति की आशा करना व्यर्थ है। मनुष्य पढ़ता है, सुनता है, जानता है, लेकिन छोड़ना उसके लिये सम्भव इसलिये नहीं होता, क्योंकि उसके हृदय में आनन्द का सागर प्रवाहित नहीं हो रहा होता।

गौतम बुद्ध को अपना राज-काज छोड़ने की क्या आवश्यकता थी? भर्तृहरि को क्या जरूरत थी? वे भारत के चक्रवर्ती सम्राट थे। एक मिनट की देर नहीं किया और सब कुछ फेंक दिया, अपने सिंहासन को छोड़ दिया। बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट प्राचीन काल में अपने राजसिंहासन को छोड़कर वृक्षों की छाया के नीचे अपना जीवन यापन करने लगे। किस शान्ति की खोज में? यदि राजमहलों में रहने से वह सुख प्राप्त हो सकता था, तो उन्हें वन की शरण लेने की कोई जरूरत नहीं थी।

स्पष्ट है कि यदि हम आनन्द से अपने को जोड़ना चाहते हैं, अपनी आत्मा की डोर उस आनन्द के सागर से बाँधना चाहते हैं, तो अपने धाम-हृदय में उसको बसाना ही पड़ेगा। इसी को कह रहे हैं—

कदी केहेनी कहे मुख से, बिन रहेनी न होवे काम।

जब तक ज्ञान को आचरण में नहीं उतारा जाता, तब तक केवल मुख से कहने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता।

रहेनी रूह पोहोंचावहीं।

रहनी का तात्पर्य क्या है? कौल, फैल, और हाल क्रमशः कथनी, करनी, और रहनी को कहते हैं। कथनी का तात्पर्य क्या है? हम शब्द बोलते हैं, ये है कथनी। करनी किसको कहेंगे? कथन को कार्य में परिणित करना करनी है। रहनी का तात्पर्य क्या है? हम मन से, वाणी से, कर्म से कभी भी झूठ का आश्रय नहीं ले सकते। हम जिसकी बात करते थे, उसमें एकरस हो जायें। जिस तरह से शक्कर को पानी में घोल देने के बाद शक्कर

दिखाई नहीं पड़ती, इसी तरह से जिस आचरण की बात हम कह रहे हैं, उसमें हम एकरूप हो जायें, उसको कहते हैं रहनी। जैसे, गौतम बुद्ध के बारे में यह बात प्रचलित है कि बुद्ध करुणा के मूर्ति थे। करुणा की मूर्ति दिखाई नहीं देती, लेकिन बुद्ध को देखने से ऐसा लगता था कि बुद्ध के शरीर के एक-एक अंग के परमाणु में साक्षात् करुणा बैठी हो। उसी तरह, रहनी का तात्पर्य है, जो बातें हम मुख से कहते हैं, उसमें स्थित हो जाना।

बढ़त बढ़त प्रीत, जाये लई धाम की रीत।

इन बिध हुई है इत, साथ की जीत॥

माया के साथ सुन्दरसाथ का संघर्ष चल रहा है। हमारी रहनी क्या होनी चाहिए? धाम की रीति है प्रेम। परात्म के तन क्या हैं? प्रेम के स्वरूप हैं, इश्क के

स्वरूप हैं। यदि हमारे हृदय-मन्दिर में प्रेम का सागर बस जाये, हमारे अन्तःकरण से काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार की सारी दीवारें ध्वस्त हो जायें, तब यह कहा जायेगा कि हमने रहनी को पूरी तरह से आत्मसात् कर लिया है।

एक संशय सुन्दरसाथ के मन में यह आता है कि व्यवहारिक जीवन में, गृहस्थ जीवन में, अनेक प्रसंग ऐसे आते हैं जिसमें हम रहनी को पूरी तरह से चरितार्थ नहीं कर सकते। ध्यान रखिये, जो घोड़े पर चढ़ने का प्रयास करता है, वही तो गिरता है। यदि कोई गिरने के भय से चढ़े ही नहीं, तो मन्जिल तक कैसे पहुँचेगा? कबीर जी ने इस सम्बन्ध में एक बात कही है—

जिन खोजा तिन पाईया, गहरे पानी पैठि।

मैं बपूरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि॥

कबीर जी ने दुनिया के लोगों को सिखापन देने के लिये कहा है। मैं से तात्पर्य यहाँ कबीर जी से नहीं होगा। उन्होंने तो अपने ऊपर लेकर कहा है कि मैं डूबने के डर से बैठा रह गया, और जिन्होंने गोता लगाया, उन्होंने मोतियों के ढेर इकट्ठे कर लिये। जो प्रयास करता है, वह एक दिन सफल अवश्य होता है।

आप यह मत सोचिए कि मुझसे सफलता प्राप्त नहीं होगी। यदि आप अपने पूनर्जन्मों का अवलोकन करेंगे, तो आपके जीव ने पूर्व जन्म में न जाने कितने गुनाह किये होंगे। उसको देखने से कुछ लाभ नहीं है। आने वाले समय में हमें तुरन्त तत्पर हो जाना चाहिये। जब

लोहा गर्म होता है, तभी हथौड़ा मारने से कोई सार्थक परिणाम निकलता है। उसी तरह, अब आपको ब्रह्मवाणी मिली है।

ब्रह्मवाणी पुकार-पुकार कर कह रही है कि यदि माया से परे होना है, तो आपको अक्षरातीत युगल स्वरूप को दिल में बसाना पड़ेगा। जब आप इस प्रक्रिया को शुरू कर देंगे तो जन्म-मन्मान्तरों की संचित वासनायें आपके हृदय से घुट-घुटकर बहना शुरू हो जायेंगी। एक समय ऐसा आयेगा कि आपका हृदय भी निर्विकार हो जायेगा। जैसा परात्म का दिल है, वैसा ही आपकी आत्मा का दिल भी हो जायेगा, और बहुत कुछ जीव का दिल भी वैसा हो जायेगा। उस समय शक्कर खोजने से भी नहीं मिलेगी। वह तो पानी में मिलकर एक हो गई होगी। जिस तरह से लोहे को अग्नि में डाल देने के

बाद लोहा अग्नि की तरह दहकना शुरू कर देता है, उस तरह से आपका जीवन भी उसी तरह से पवित्र हो जायेगा। इसको कहेंगे, कहनी को रहनी में उतारना।

भले ही आप कितना भी पढ़ते रहें, पूजा-पाठ करते रहें, कितनी भी परिक्रमा करते रहें, किन्तु यदि आपने उस प्रियतम की छवि को दिल में नहीं बसाया, तो किसी भी कीमत पर आपको रहनी की मन्जिल पर पहुँचने का सुख नहीं मिलेगा। यदि आप वास्तविक आनन्द को लेना चाहते हैं, तो जो सागर में कहा है, श्रृंगार में कहा है, सागर-श्रृंगार तो क्या रास से लेकर कयामतनामा तक में कहा है, उसे रहनी में उतारिए। कयामतनामा में, जिसकी यह चर्चा हो रही है, एक बहुत बड़ी बात कही गई है—

जोलों कछु देखे आप, तोलों साहेब सो नहीं मिलाप।

कल भी मैंने कहा था। आज सवेरे भी मैंने कहा।

सारी तृष्णाओं का शमन कब होगा? जब प्रियतम को अपने दिल में बसा लेंगे। अध्यात्म कथन का विषय नहीं होता। कथन का विषय केवल उतना ही होता है, जितना हमारी बुद्धि में आ जाये। बुद्धि में आ जाने के पश्चात्, वह व्यवहार में, आचरण में उतारने के लिये होता है, और जिसने क्रियात्मक जीवन जिया नहीं, वह सत्य को कैसे पा सकता है। अन्यथा संसार में तो एक से एक बड़े-बड़े विद्वान पैदा होते हैं।

केवल वेदों को पढ़ने मात्र से कोई ऋषि नहीं बन सकता हैं। ऋषि बनने के लिये समाधि अवस्था में उतरना पड़ेगा। दर्शन शास्त्र को पढ़ने से कोई दार्शनिक नहीं हो सकता। दार्शनिक होने के लिये उस सत्य का दर्शन करना होगा। उसी तरह, केवल ब्रह्मवाणी के पाठ

मात्र से कोई परमहंस नहीं हो सकता। परमहंस होने के लिये, उसे अपने दिल में युगल स्वरूप को बसाना ही पड़ेगा। इसके लिये अपनी तृष्णाओं के जाल को तोड़ना पड़ेगा। धाम धनी रास से लेकर कयामतनामा तक बार-बार एक ही पुकार करते हैं—

मोमिन होए सो देखियो, मेरी तो निसां भई।

कहनी केवल चमड़े तक ही सीमित रहती है, चमड़ा मतलब मुख।

रेहेनी रूह पोहोंचावहीं, केहेनी लग रहे चाम।

यदि हम आचरण में उतारते हैं, तो हमारी आत्मा अपने प्रियतम से मिलन कर लेती है, और यदि केवल कहनी का विषय बनाए रखेंगे, तो वह बातें केवल हमारे मुख तक ही सीमित हो जायेंगी।

ज्ञान केवल कण्ठ में शोभा देने के लिये नहीं होता। ज्ञान का उद्देश्य होता है, आचरण में उतारना। जैसा कि मैंने अभी दृष्टान्त दिया कि रावण ने वेद को कण्ठ में रखा था। राम ने वेद को आचरण में उतारा। राम मर्यादा पुरुषोत्तम बन गये और रावण राक्षसों का राजा बन गया। पण्डित होते हुए भी रावण कहलाया। आज कोई रावण का सम्मान नहीं करता क्योंकि उसका आचरण उसके कथन के विपरीत था। सुन्दरसाथ से यही अपेक्षा की जाती है कि ब्रह्मवाणी धाम धनी की अपार मेहेर से मिली है और इस ब्रह्मवाणी के एक-एक शब्द में अक्षरातीत के प्रेम का आवेश कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है।

ए वानी सुनते जिनको, आवेश न आया अंग।

सो नहीं नेहेचे वासना, ताको करुं जीव भेले संग॥

धाम धनी ने स्पष्ट कह दिया है कि यदि ब्रह्मवाणी के रस की एक बूँद भी हमारे हृदय में आ जाती है, तो निश्चित है कि हमारे अन्दर प्रेम का आवेश आना चाहिये। बेहद के बारे में कहा है—

किन एक बूँद न पाइया, रसना भी वचन।

ब्रह्माण्ड धनीयों देखिया, जो कहावें त्रैगुन॥

किसी को बेहद की वाणी के रस की एक बूँद भी नहीं मिली।

बहुत पुकार करुं किस खातिर, ए सब सुपन स्वरूप।

बेहद बनज का होणा साथी, सो एक लवे होसी टूक-टूक॥

वाणी का ज्ञान हमें फिदायगी की तरफ ले जा रहा है। किस पर फिदा होना है, युगल स्वरूप पर। उस युगल स्वरूप की छवि को हमें अपने दिल पर अंकित करना ही

पड़ेगा। यदि ऐसा हम नहीं कर सकते, तो हमारी सारी शरीयत और तरीकत यहीं की यहीं रह जायेगी। यह जरूर है कि शरीयत और तरीकत आपके जीव को सातवीं बहिश्त तक पहुँचा देगी। यह आपके चिन्तन करने का विषय नहीं है कि मेरे अन्दर ब्रह्मसृष्टि है या नहीं, ईश्वरी सृष्टि है या नहीं। यदि आप कोरे से कोरे जीव भी हैं, तो चिन्ता न कीजिए। ब्रह्मसृष्टि का जीव तो सत्स्वरूप में जायेगा और आत्मा परात्म में परमधाम जायेगी। चितवनि द्वारा कोरा से कोरा जीव भी वहीं पहुँचेगा, जहाँ ब्रह्मसृष्टि का जीव जायेगा।

जो किन जीवे संग किया, ताको करुं न मेलो अंग।

सो रंगे भेलू वासना, वासना सत को अंग॥

जीव को केवल अपने जीवन में ब्रह्ममुनियों का

आचरण उतारना होगा। जीव यदि प्रेम की राह अपना लेता है, शरीयत-तरीकत से पिण्ड छुड़ाकर धनी की शोभा अपने दिल में बसाता है, तो स्थिति यह बन जायेगी। जिसके दिल में धाम धनी बस जायेंगे, निश्चित है कि वह जीव भी ब्रह्मसृष्टि के जीव के साथ सत्स्वरूप की पहली बहिश्त का अधिकारी बनेगा। इसलिये यह तीव्र आवश्यकता है कि सब सुन्दरसाथ वाणी का प्रकाश सर्वत्र फैलायें।

आप बड़े-बड़े भण्डारे करते हैं, सुन्दरसाथ को बड़े अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट व्यञ्जन खिलाते हैं। और ये स्वादिष्ट व्यञ्जन कुछ क्षणों के लिये ही जिह्वा को आनन्द देते हैं, बाद में पचकर मल-मूत्र के रूप में ही निकलते हैं। जीव को ज्ञान का अमृत बाँटिए। कितने जन्मों से वह जीव चौरासी लाख योनियों में भटक रहा है, कितनी

भयानक-भयानक योनियों का दुःख उसने देखा है। यदि उस जीव को ब्रह्मज्ञान का प्रकाश मिल गया, तो अखण्ड आनन्द का भोक्ता होगा। इससे बड़ा पुण्य कार्य और कुछ भी नहीं। हमारे सारे समाज में, सारे देश में यही हो रहा है। सारा ध्यान किस पर है? या तो दीवारों को चमकाने में या अच्छे-अच्छे भोजन खिलाने में। इससे किसी की आत्मा न जाग्रत होगी, न किसी जीव का कल्याण होगा।

होना क्या चाहिये? ज्ञान का प्रकाश हर मानव तक फैलाइये। ये न देखिये कि वह किस वर्ग का है, किस प्रान्त का है। सूर्य सारे ब्रह्माण्ड के लिये उगता है। चन्द्रमा अपनी चाँदनी फैलाता है, सारी पृथ्वी के लिये। हवा बहती है सबके लिये। ब्रह्मवाणी का प्रकाश किसी सम्प्रदाय, किसी वर्ग विशेष, या किसी स्थान विशेष के लिये नहीं है। वेद ने कहा है—

शत हस्त समाहर, सहस्र हस्त संकिर।

सौ हाथों से बटोरिये, हजार हाथों से लुटाइये।

यदि आपके अन्तःकरण में यह ज्ञान है, तो इस ज्ञान को दूसरों के कल्याण की भावना से आपको बाँटना होगा। इस ज्ञान-दान से बढ़कर अन्य कोई भी दान नहीं है। जब आप किसी को भोजन देते हैं, तो वह भोजन छह घण्टों के लिये काम करेगा। वस्त्र देते हैं, तो साल भर या छः महीने के बाद वह भी फट जायेगा। कुछ रुपये देते हैं, वे रुपये कितने दिनों तक काम में आयेंगे। लेकिन यदि आपने ब्रह्मज्ञान का दान दिया, तो ज्ञान का अमृत उसके जीव को भवसागर से पार कर देगा। इसलिये सुन्दरसाथ को अपनी रूढ़िवादी विचारधारा बदलनी होगी।

यदि हम चाहते हैं कि परमधाम में उठने के बाद

धनी के सम्मुख हम अपने शिर को सामने रख सकें, शिर नीचा न करना पड़े, तो ब्रह्मवाणी के ज्ञान को फैलाने में हमें तन-मन से पूरी तरह समर्पित होना पड़ेगा। जो सबसे मुख्य कार्य है, वह है अपने दिल में युगल स्वरूप की छवि को बसाना।

बादल बरसते जाते हैं, आगे बढ़ते जाते हैं, एक जगह नहीं बरसते। उसी तरह, संसार से यह आशा मत कीजिये कि संसार आपके बारे में क्या कह रहा है। बादल की तरह हर जगह बरसते हुए आपको विचरण करना पड़ेगा। संसार में ज्ञान का प्रकाश लेकर और अपनी अन्तरात्मा के अन्दर उस प्रियतम की छवि को लेकर विचरण करना पड़ेगा। हवा के झोकों से बादल चारों तरफ घूमते रहते हैं। उन बादलों में जल भरा रहता है और वे गरजते कम बरसते ज्यादा हैं। वैसे ही आपको

अपनी जीवनशैली बनानी पड़ेगी।

जो सत्य का प्रकाश करते हैं, संसार उनके ऊपर पत्थरों से प्रहार करता है और यह आपको भी सहना पड़ेगा। किन्तु यदि आपने सांसारिक कष्टों की परवाह न करते हुए ब्रह्मज्ञान का अमृत संसार में फैला दिया, तो वे जीव अनन्त काल तक आपको धन्यवाद देते रहेंगे कि आपकी ज्ञानधारा का अमृत मेरे हृदय में पहुँचा और मैंने अखण्ड, शाश्वत आनन्द को प्राप्त कर लिया।

यदि समाज अपने चिन्तन की धारा मोड़े और आत्म-निरीक्षण करे कि हमें ज्ञान के फैलाव के विषय में क्या करना चाहिये, तो निश्चित है कि चारों तरफ से हमें युग और परिस्थितियों के अनुसार सत्य को फैलाने में एकरूप होना पड़ेगा। संकुचित विचारधाराओं के टकराव से कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है।

ब्रह्मवाणी की अजस्र धारा हर मानव के अन्दर प्रवाहित हो, इसी में संसार का कल्याण है, इसमें ही हमारी श्रेष्ठता है। जो परमधाम के ब्रह्ममुनि कहलाते हैं, उनका तो ये नैतिक उत्तरदायित्व होता है कि ब्रह्मवाणी के ज्ञान और हृदय में प्रियतम के प्रेम की धारा से सारे संसार को तृप्त करें। महामति जी ने कहा है—

त्रैलोकी छाक छकाऊँ।

हम त्रैलोकी को तो क्या, हम किसी एक प्रान्त को क्या, किसी नगर को भी पूरी तरह से तृप्त नहीं कर पा रहे हैं। सम्भव है जीव सृष्टि नहीं सुनना चाहती है, तो न सुने, लेकिन हमें तो अपने कर्त्तव्य की कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध करना पड़ेगा। यही है वास्तविक रहनी, जिसके लिये धाम धनी ने बार-बार कहा है कि हमारी सामाजिक रहनी कैसी होनी चाहिये, आध्यात्मिक रहनी

क्या होनी चाहिये। धाम धनी का एक ही आशय है कि उस युगल स्वरूप को अपने हृदय में बसा लीजिये, तो फिर आगे की चिन्ता समाप्त। हमारे अन्दर काम की चिन्गारी हो सकती है, क्रोध की चिन्गारी हो सकती है, लोभ, मोह, और अहंकार की चिन्गारी हो सकती है, लेकिन ये सारी चिन्गारियाँ उस प्रियतम के प्रेम की वर्षा से समाप्त हो जायेंगी, और कोई चारा भी नहीं।

हमारा आहार सात्विक हो, हमारे अन्दर ज्ञान का प्रकाश हो। सबसे पहली आवश्यकता युगल स्वरूप को दिल में बसाने की है। जब वे बस जायेंगे, तो आगे क्या होना है, आपका शरीर तो मात्र एक कठपुतली की तरह कार्य करता रहेगा। आपको न कुछ सोचना पड़ेगा, न चिन्तन करना पड़ेगा। उसकी प्रेरणा आपको कठपुतली की तरह से सब कुछ करवाती रहेगी।

संसार कौन सी राह अपनाता है, वह प्रायः शरीर की बन्दगी पर निर्भर रहता है। लखनऊ के पास एक हनुमान जी का मन्दिर है। उसमें जो हनुमान जी के भक्त आते हैं, लेट-लेट कर कई किलोमीटर से परिक्रमा करके आते हैं। अभी परम्परा चल पड़ी है, सावन के महीने में, भगवान शिव पर जल चढ़ाने की। बेचारे पन्द्रह-पन्द्रह साल के बच्चे, महिलायें कितने कष्ट झेलकर पानी भर-भर कर लाते हैं। उनके पाँव सूज जाते हैं। उनकी भक्ति यहीं तक सीमित रहती है। उस जल को लाकर शिवलिंग पर चढ़ा देते हैं। भक्ति क्या है? भक्ति आत्मा से होती है। "नारद भक्ति सूत्र" में भक्ति की व्याख्या की गई है—

सातू परमा प्रेम स्वरूपा।

भक्ति क्या है? परम प्रेम का स्वरूप है।

दुनी चले चाल वजूद की।

लेकिन संसार के प्राणियों के हृदय में प्रेम नहीं होता, वे तो शरीर से बन्दगी करते हैं। मैंने एक दिन की चर्चा में कहा था कि छः तरह की बन्दगी होती है— दो शरीरगत, एक तरीकत, एक हकीकत, और दो बका मारिफत। पहली बन्दगी शरीर से जिस्मनी, दूसरी बन्दगी नफ्सानी इन्द्रियों से, तीसरी बन्दगी मन के धरातल पर, चौथी बन्दगी जीव के धरातल पर, और दो बका मारिफत की बन्दगी। परमधाम की आत्मा अपने प्रियतम को इस तरह से देखे कि वह स्वयं का अस्तित्व भूल जाय। शरीर से और इन्द्रियों से जो भक्ति होती है, वह मात्र शरीरगत कहलाती है और वह कर्मकाण्ड है।

पुलसरात कही खांडे की धार, गिरे कटे नहीं पावे पार।

किसी भी पन्थ में जो विकृति होती है, केवल कर्मकाण्ड से होती है। एक बार वल्लभाचार्य मत में शास्त्रार्थ हो रहा था कि श्री कृष्ण जी का मोर पंख का मुकुट बायीं तरफ झुका है या दायीं तरफ झुका हुआ है? इसमें गोलियाँ चल गयीं। बायीं तरफ झुक जाये या दायीं तरफ झुक जाये, तो क्या अन्तर पड़ता है, लेकिन शरीर (कर्मकाण्ड) जहाँ है वहाँ ज्ञान का प्रकाश नहीं है। शरीर और इन्द्रियों की भक्ति कभी भी हृदय को पवित्र नहीं कर सकती। यदि गंगा में नहाने मात्र से हृदय पवित्र हो जाता, तो मेंढक और कछुए पहले पवित्र हो जायें।

एक बार हरिद्वार में कुम्भ लगा था। साधू-महात्माओं में झगड़ा हो गया। एक अखाड़े वाला कहता था कि पहले हम स्नान करेंगे। व्यवस्था में कुछ ऐसी चूक हो गयी कि दूसरे अखाड़े वालों ने स्नान कर लिया। फिर

महात्माओं ने महात्माओं को मारना शुरू कर दिया। पुलिस ने हस्तक्षेप किया, तो उन नागे महात्माओं ने कितने ही पुलिस वालों को उठा-उठा कर गंगा में फेंक दिया। फिर पुलिस ने गोलियाँ चलाई, कितने ही महात्मा मारे गये। आखिर क्या है? कितने अन्धकार की लीला चल रही है। क्या जो इसी दिन डुबकी लगायेगा, वही मोक्ष को प्राप्त होगा? गंगा में स्नान करने मात्र से मोक्ष को प्राप्त नहीं हुआ जा सकता। गंगा के किनारे रहने वाले ऋषि-मुनियों के ज्ञान के अमृत में जो स्नान करेगा, परमात्मा की भक्ति में जो स्नान करेगा, वह मोक्ष को प्राप्त करेगा।

गंगा का जल प्राचीन काल में इतना शुद्ध था कि यदि कोई व्यक्ति एक या दो लीटर पानी पी ले तो उसको भूख नहीं लगा करती थी, उसका शरीर पूर्णतया स्वस्थ

रहता था, क्योंकि हिमालय की दिव्य औषधियों से छन-छनकर वह जल प्रवाहित होता था। इसलिये गंगा जल की महत्ता बतायी गई है। गंगा का जल शरीर शुद्धि की दृष्टि से ठीक है, बौद्धिक दृष्टि से ठीक है, हृदय को पवित्र करने वाला है, लेकिन केवल स्नान मात्र से मोक्ष मिल जाये, यह तो केवल भ्रम मात्र है।

ऋते ज्ञानात् न मुक्ति।

जब तक उस सच्चिदानन्द परमात्मा का वास्तविक बोध न हो, तब तक किसी को भी मुक्ति नहीं होगी। आप इलाहाबाद में देखते हैं या जब भी कुम्भ लगता है, क्या होता है? केवल इस विश्वास पर लाखों की भीड़ इकट्ठी होती है कि आज के दिन डुबकी लगाने मात्र से हमें मोक्ष मिल जायेगा। कभी भगदड़ मचती है, तो कितने लोग मारे जाते हैं।

अभी हज यात्रा आ रही है। देखिए शैतान को पत्थर मारने के नाम पर कितने लोग मारे जाते हैं। यह क्या है? शैतान क्या है? मन के अन्दर बैठा हुआ है। शैतान को पत्थर मारने का तात्पर्य क्या है? अपने मन की तृष्णाओं को मारना, लेकिन दुनिया कर्मकाण्ड में पागल है। शैतान का कोई रूप मान लेंगे और उस पर पत्थर मारेंगे। हिन्दू भी भटके हैं, मुस्लिम भी भटके हैं, क्रिश्चियन भी भटके हैं। सारा संसार भटका हुआ है। इसलिये श्री महामति जी कह रहे हैं—

उम्मत चले रूह चाल।

और ब्रह्मसृष्टि कौन सा आचरण करेगी? रूह की चाल। ब्रह्मसृष्टि की बन्दगी आत्मा से होगी, शरीर के धरातल पर नहीं।

अग्यारहीं जोलों रही, तोलों बोहोत चाह धरे।

फेर ठंडे पड़ते गये, लाल कहे अंग ठरे॥

जब तक हकी सूरत के तन से लीला चलती रही, तब तक सुन्दरसाथ केवल दिन-रात चर्चा और चितवनि में लगे रहे। परमधाम की चर्चा, युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार को दिल में आत्मसात् करते रहे। जैसे-जैसे समय बीतता गया, तीस साल ईश्वरी सृष्टि के रहे और सत्तर साल तक जीव सृष्टि का राज्य रहा। उसमें केवल कर्मकाण्ड का ही बोलबाला हो गया, और जहाँ कर्मकाण्ड है, वहाँ प्रेम और ज्ञान समाप्त हो जाता है।

ब्रह्मसृष्टि की राह प्रेम और ईमान की है। ईश्वरी सृष्टि की राह ईमान और बन्दगी की है। जीव न ईमान पर चल पाते हैं, न इश्क पर चल पाते हैं, और न हकीकत की

बन्दगी कर पाते हैं, मात्र शरीयत और तरीकत को लेकर चलते हैं। कदाचित् किसी का जीव बहुत पवित्र हो गया, निर्विकार हो गया, तो निश्चित है कि वह भी प्रेम की राह अपना लेगा।

रसखान क्या थे? रसखान तो ब्रह्मसृष्टि नहीं थे, लेकिन उनके अन्दर कितना प्रेम भरा था। उन्होंने प्रार्थना की थी—

मानुस हों तो वही रसखानि, बसो ब्रज गोकुल गांव के ग्वालिन।

जो खग हो तो बसेर करुं, मीलि कालिं कूल कदंब की डालन॥

उनमें इतना प्रेम है कि तीन-तीन दिन तक पागल होकर वृन्दावन की गलियों में घूम रहे हैं, कन्हैया—कन्हैया की पुकार कर रहे हैं। मीरा की प्रेम भक्ति देखिये। विष का प्याला आता है, फिर भी प्रेम में मग्न है कि मेरे

कन्हैया ने यह उपहार भिजवाया है। उसको कुछ भी परवाह नहीं है। सूरदास जी को कोई परवाह नहीं है। ये हैं तो जीव, लेकिन इनका हृदय इतना पवित्र है कि वे ब्रह्मसृष्टियों को भी शर्मिंदा कर रहे हैं। ऐसे उत्तम जीव यदि वाणी के ज्ञान का प्रकाश पा जाते हैं और प्रेम की राह अपना लेते हैं, तो ब्रह्मसृष्टि के जीव की तरह उनका जीव भी सत् स्वरूप की पहली बहिश्त का अधिकारी बनेगा।

इसलिये चिन्तन का विषय यह नहीं है कि हम ब्रह्मसृष्टि हैं या नहीं। वहाँ इतनी संख्या हो गयी, तो क्या होगा? सब तक वाणी का प्रकाश फैलाइये। यह आपका कर्त्तव्य है। बहीखाता लेकर बैठना आपका कर्त्तव्य नहीं है। इसकी जिम्मेदारी किसी और के पास है। इसी कारण, हम ब्रह्मवाणी को आत्मसात् करें और आत्मा

द्वारा बन्दगी करें, जिसमें किसी चीज की आवश्यकता नहीं है।

यदि आप परिक्रमा करते हैं, तो क्या होगा? दो घण्टे के बाद थक जायेंगे, फिर गहरी निद्रा में सो जायेंगे। आप ध्यान में बैठ जाइये और दो घण्टे के बदले दस घण्टे बैठे रहिये, छः घण्टे बैठे रहिये, कौन देखता है। आप पैरों से परिक्रमा करेंगे, तो सारी दुनिया में शोर हो जायेगा कि देखो, वे तो रात को दो-दो घण्टे परिक्रमा करते हैं, चार-चार घण्टे परिक्रमा करते हैं। आप अपने बन्द कमरे में क्या कर रहे हैं, यह किसको पता है।

सिन्धी में स्पष्ट कहा है कि विरहनी के विरह की आवाज तो पड़ोसी को भी पता नहीं चलना चाहिये। यानि उसका जो सबसे नजदीकी हो, उसको भी पता नहीं चल पाये कि आप रात में कर क्या रहे हैं। यह है

आत्मा से की गयी प्रेममयी भक्ति। इसमें शरीर से कोई लेना-देना नहीं, मन से कोई लेना-देना नहीं, चित्त, बुद्धि, अहंकार, सब अपने मूल में समाप्त हो जायेंगे, और केवल आत्मा अपने प्रियतम के प्रेम में लग जायेगी। यह है रूह की बन्दगी।

लिख्या एता फरक कुरआन में।

कुरआन के अन्दर यह बात स्पष्ट रूप से लिखी गई है। वेद द्वारा भी यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है, लेकिन दुनिया इन ग्रन्थों को पढ़ती है, आचरण में नहीं उतारती। वेद का एक मन्त्र है—

यद् अग्रे स्याम अहम्, त्वम् त्वम् घा स्याम अहम्।

सत्याः स्युः ते इहाशिवः॥

हे परब्रह्म! जो तू है वह मैं हो जाऊँ, और जो मैं हूँ

वह तू हो जाये। क्या सुन्दरसाथ में इस तरह की बात करने की शक्ति है कि राज जी आप नीचे बैठ जाइये, मैं आपके सिंहासन पर बैठ जाऊँ? क्योंकि हमारे पास अभी वह प्रेम नहीं है। हम वेद वालों को जरूर सपने की बुद्धि का अनुयायी कहकर हँसी उड़ाया करते हैं, लेकिन वेद के इस कथन को देखिये, जिसमें उसने कहा है कि हे परब्रह्म! तेरी जगह मैं हो जाऊँ और मेरी जगह तू हो जाये। इसका तात्पर्य क्या है?

मासूक तुमारी अंगना, तुम अंगना के मासूक।

ए हुकमें इलम दृढ़ किया, अजूं रूह क्यों न होत टूक-टूक॥

हम मन्दिर में डर के मारे जाते हैं कि हम नहीं जायेंगे, तो कुछ हमारा अनिष्ट हो जायेगा। हाथ जोड़कर साष्टांग प्रणाम इसलिये करते हैं कि राज जी कहीं नाराज होकर

हमारा कुछ अहित न कर दें। यदि कुछ गुनाह हुआ होगा तो माफी मिल जायेगी। जीव को डरना चाहिये। जीव साष्टांग प्रणाम करेगा तो हो सकता है, उसके अन्दर विनम्रता आये, कुछ अहंकार जायेगा। यह बात तो ठीक है, लेकिन अपनी आत्मा के अन्दर भय की दीवार न खड़ी कीजिये। जब तक उससे एकरूपता नहीं होगी, आपकी सुरता कभी भी परमधाम में विहार नहीं करेगी।

आप अपनी आत्मा का प्रियतम मानकर पल-पल उनको अपने पास तो क्या, अपनी आत्मा के धाम-हृदय में महसूस कीजिये कि एक पल भी न आप उससे जुदा, न वे आपसे जुदा हैं। लेकिन यह बात केवल कथनी का विषय नहीं होना चाहिये। उठते-बैठते, सोते-जागते आपके धाम-हृदय में उसकी छवि अंकित हो जाये, तब समझना चाहिये कि आप रूह की बन्दगी कर रहे हैं,

अन्यथा यह दिखावे की बन्दगी तो कोई भी कर सकता है।

दुनी उमत इन मिसाल।

दुनिया और ब्रह्मसृष्टि की बन्दगी ऐसी ही बतायी गई है। मुहम्मद साहब ने अरब के लोगों को केवल शरीयत सिखायी क्योंकि वहाँ के लोगों का खान-पान ऐसा था कि उनसे बैठकर ध्यान हो ही नहीं सकता था। जो माँसाहारी लोग हैं, उनसे ध्यान कहाँ से हो सकेगा। केवल अली को तरीकत की बन्दगी सिखाई और अली के अनुयायियों से सूफी मत चला। सूफी फकीर कभी भी न रोजा रखते हैं, न नमाज पढ़ते हैं, न जकात करते हैं, न हज करते हैं। औरंगजेब के जमाने में जब कई सूफी फकीरों को फाँसी पर चढ़ा दिया गया, तो डर के मारे दिखावे के लिए उन्होंने भी नमाज पढ़ना शुरू कर दिया।

लेकिन आज भी जो सूफी फकीर होगा, वह सच्चे दिल से कभी भी नमाज नहीं पढ़ेगा।

जहाँ तरीकत है, वहाँ शरीयत नहीं रह सकती। जहाँ हकीकत है, वहाँ शरीयत और तरीकत नहीं रहेगी। और मारिफत की अवस्था में तो कुछ कहना ही क्या? परमधाम की ब्रह्मसृष्टि सबसे न्यायी प्रेम लक्षणा भक्ति की राह पर चलने वाली है। किन्तु हम सुन्दरसाथ का, हमारे समाज का दुर्भाग्य है कि हर जगह शरीयत और तरीकत का ही बोलबाला है।

कई जगह पर तो सुन्दरसाथ से ऐसा भी पूछा जाता है कि आपके गले में तुलसी की कण्ठी है या नहीं? यह चौपाई में कहाँ लिखा है कि आप तुलसी की कण्ठी पहनें? क्या गले में लकड़ी बाँधने से आत्मा परमधाम जायेगी? गले से जब तक ब्रह्मवाणी न निकले, हृदय में

प्रेम की रसधारा नहीं है, तो कण्ठी, तिलक, माला से कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है।

यह तो वैष्णवपन्थी कहा करते हैं कि उनके गले में तुलसी की कण्ठी हो, माथे पर तिलक लगा हो, कोई विशेष वेश-भूषा हो। यह तो संसार की अज्ञानता का सूचक है। क्या वेद के किसी मन्त्र में लिखा है कि गले में तुलसी की कण्ठी होनी चाहिये या माथे में तिलक होना चाहिये? किसी वेशभूषा को धारण करने से आत्मा जाग्रत नहीं होती। ये सब कर्मकाण्ड है।

आत्मा के अन्दर प्रियतम का प्रेम भरना होगा, उस प्रियतम की ब्रह्मवाणी का प्रकाश भरना होगा, और जहाँ तक सम्भव है हमें अपने जीवन में प्रतिदिन एक घण्टे का समय देना होगा ब्रह्मवाणी के प्रकाश को फैलाने के लिए। यदि आपके माध्यम से कुछ भी प्रकाश फैला, तो याद

रखिये आपने जीवन में सबसे बड़ा पुण्य किया। ब्रह्मज्ञान के दान से बड़ा अन्य पुण्य कार्य न कोई था, न है, और न कभी होगा।

इसलिये मैं विशेष आग्रह करूँगा कि समाज के कार्यक्रमों में जो फिजूलखर्ची होती है, उसमें कटौती करें। व्यञ्जनों को न बनाकर सीधा-सादा भोजन बनायें और अधिक से अधिक साहित्य बाँटे। किसी को भी, जो ज्ञान का जिज्ञासु हो, मुफ्त में साहित्य दीजिये। यह आशा मत कीजिये कि वह नियमित रूप से पढ़ता है। किसी के पास तो ज्ञान की धारा पहुँचेगी और ज्ञान का भोजन आप जिसको बाँटेंगे, वही मानवता का कल्याण करेगा। स्वादिष्ट भोजनों से आज तक न किसी की तृप्ति हुई है और न कभी हो सकेगी।

॥ समाप्त ॥